ओस के आँसू

रघुवीर शरण 'मित्र'

ओस के आँसू

(उपन्यास)

रघुवीर शरण 'मित्र'

कला भवन पुलिस रोड
हापुड़ मे०

भारतीय साहित्य प्रकाशन
मेरठ

प्रकाशक :

भारतीय साहित्य प्रकाशन

२०४-ए, वेस्ट एण्ड रोड

मेरठ

प्रथम संस्करण

१९६४

मूल्य : रु० ६·००

मुद्रक :

निष्काम प्रेस,

मेरठ

जो इस उपन्यास की जननी और
मेरे आँसुओं की गोद थीं, उन
स्वर्गीया कलावती देवी
की स्मृति में

१
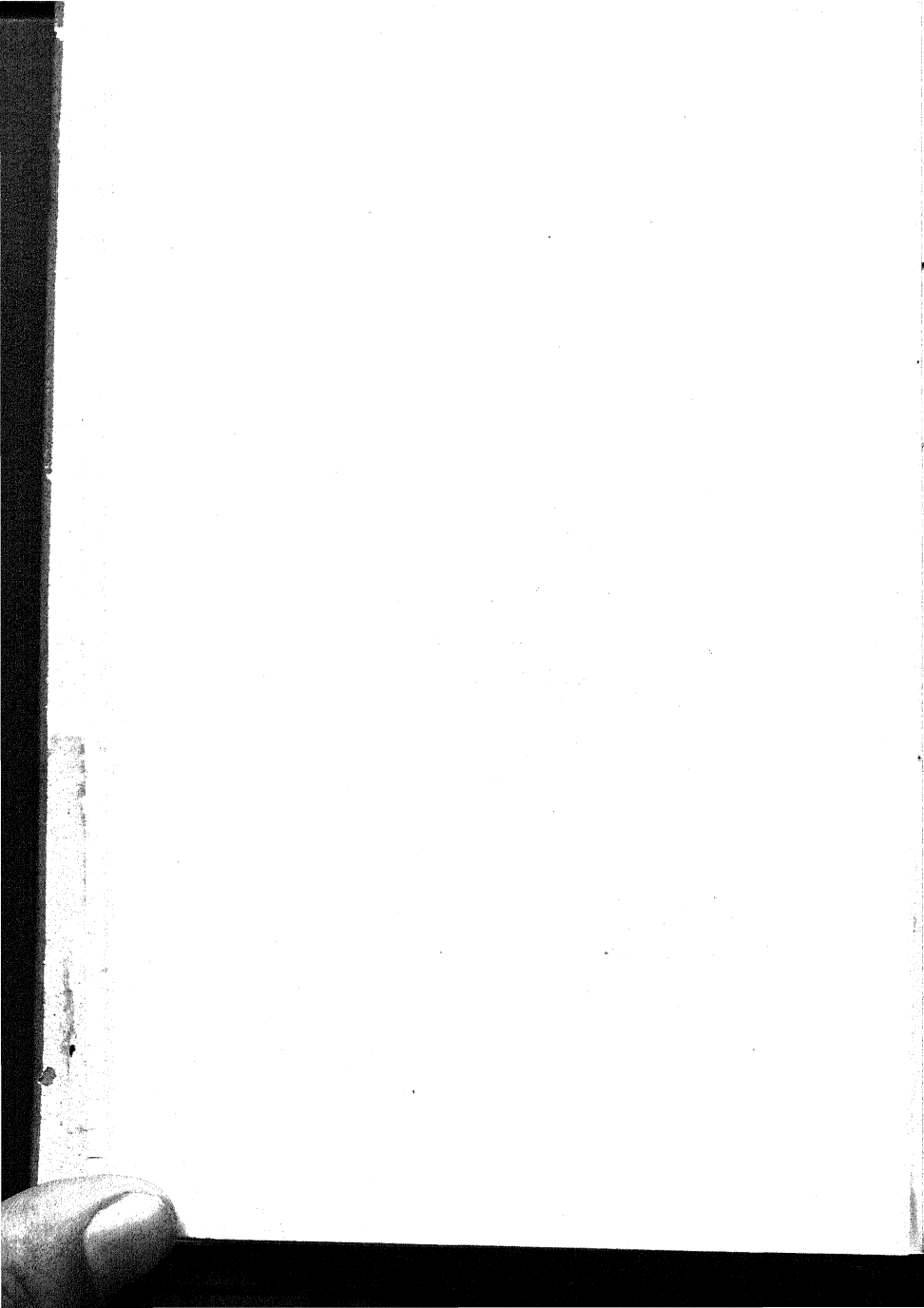
"रोते क्यों हो ?"

"कौन है वह जो रोता नहीं !"

"मैं पूछता हूँ तुम क्यों रोते हो ?"

"और क्या करूँ ?"

"हँसो !"

"हँसी नहीं आती।"

"हँसी नहीं आती या हँसना नहीं चाहते ?"

"रोना कौन चाहता है ?"

"क्या तुम जानते हो लोग तुम्हारी रोनी सूरत देख कर हँसते हैं ?"

"इसलिये हँसते हैं कि उनके दुःख मैंने ले लिये हैं।"

"सभी तो नहीं हँसते, बहुत से रोते भी तो हैं।"

"जिनकी आँखों में दूसरों की आँखों का पानी छलक उठता है उन पर अर्घ्य चढ़ाने वाले धन्य हैं।"

"तुम दुखी हो, सुखी हो, या सन्त ?"

"अभी अभी तो तुम कह रहे थे, तुम्हारी सूरत देख कर लोग हँसते हैं, रोते हैं। मुझसे शायद दूसरों को दुःख मिलता है।"

"हँसो प्यारे, रोतों को हँसाने के लिये हँसो !"

"हँसाते हँसाते थक गया।"

"तो थक कर रो रहे हो ?"

"रो नहीं रहा हूँ, रुलाया जा रहा हूँ।"

"तुम होश में तो हो ?"

"यही तो ज़िन्दगी ने मुझ पर ज़ुल्म कर रखा है।"

"बेहोश होना चाहते हो ?"

"ऐसा बेहोश कि होश की सारी बातें भूल जाऊँ। भूल जाऊँ धर्म कर्म की बातें। पुण्यों के परिणाम देख लिये, अब पापों में रह कर देख लूँ।"

"विवेकशून्य होना चाहते हो ?"

"मनुष्य कुछ भी होना नहीं चाहता, उसे जैसा बना दिया जाता है बन जाता है। कोई भला या बुरा माँ के पेट से पैदा नहीं होता, अच्छे बुरे व्यवहारों से भला बुरा बनता है।"

"औरों के व्यवहारों से शिकायत है ?"

"किसी को दोष देना नहीं चाहता।"

"किसी को दोष देना इतना बुरा नहीं जितना बुरा किसी के प्रति मन में शिकायत का भाव रखना है।"

"मुझे किसी से शिकायत नहीं।"

"यह शिकायतों की पराकाष्ठा बोल रही है।"

"शिकायतों की पराकाष्ठा नहीं, भावनाओं का चरम कहो तो अच्छा है।"

"यही तो मैं कहता हूँ। भावनाओं के चरम पर मत चढ़ो, कर्त्तव्यों की भूमि पर चलो। काल्पनिक नहीं, व्यावहारिक बनो! भावुकता मनुष्य को कायर बनाती है।"

"भावना न हो तो कर्त्तव्य का निर्वाह ही कौन करे, भावनाओं से ही कर्त्तव्य भावना जागती है।"

"पर सन्तुलन छोड़ कर न भावना रहती है, न कर्त्तव्य। केवल हृदय के दास न बनो दीपक!"

"दीपक की ज़िन्दगी भी क्या है, रात भर जलता है और सुबह बुझ जाता है। जलना और बुझना ही तो दीपक का जीवन है। अपने घर के उजाले के लिये सब उसे जलाते हैं। कब तक औरों के घर का उजाला बनने के लिये जीवन जलाता रहूँ?"

"यही तो मैं कहता हूँ। होश में आओ, संसार को समझो, खोओ मत, रोओ मत, हँसो, जैसे भी हँस सकते हो हँसो! तुम सोचते हो कोई तुम्हें हँसाने आयेगा। तुम चाहे रो रो कर मर जाओ पर कोई यह नहीं कहेगा तुम क्यों रोते हो। जब तक तुम में रस है भौंरे आते रहेंगे। जब तक तुम्हारे पास धन है सब तुम्हारे रहेंगे। जब तक तुम्हारा मन जीवित है तब तक दुनिया तुम्हारी है। संसार में सुख भोगो, धन पैदा करो, यश बढ़ाओ, शक्ति जुटाओ! दुनिया दम की दास है। खुद को इतना सम्पन्न करो कि तेरा अभीष्ट तेरी आज्ञा का सेवक रहे। मन-चाहा याचना से नहीं शक्ति से प्राप्त करो!"

"मनुष्य पाने के लिये पिसता रहे फिर खाली हाथ चला जाये, क्या इसीलिये पाऊँ? धोखा, गर्व, पराजय, हार गया हूँ, इन सब से। इन सब ने मुझे बहुत बहकाया है, बहुत छला गया हूँ मैं स्वयं से, ऊब गया हूँ अब इस मज़ाक़ से। आग लगा दो उन बागों में जो मुझे देख कर हँसते हैं। फूँक दो उन महलों को जो मन की ऊँचाई को धमकाते हैं। नहीं चाहता वे शक्लें जो सोने के घटों में गरल रूप हैं। यहाँ मुँह में राम और बगल में छुरी छिपी पड़ी है। अब धोखे की दुनिया में रहने को जी नहीं करता।"

"तो फिर कहाँ रहोगे ?"

"जहाँ दुनिया नहीं होगी।"

"दुनिया कहाँ नहीं है ?"

"जहाँ सन्तोष है, जहाँ अपनी इच्छा नहीं है।"

"जड़ बनना चाहते हो ?"

"ज़मीन, पेड़, फूल, क्या जड़ होते हैं ?"

"शायद जड़ ही हैं, जो चेतन के हाथों पिसते रहते हैं, कटते रहते हैं, टूटते रहते हैं। अपने लिये क्या हैं वे ?"

"पर दूसरों के लिये तो हैं। तुम तो न अपने लिये रहना चाहते हो, न दूसरों के लिये।"

"ग़लत है, मैं अपने लिये भी रहना चाहता हूँ और औरों के लिये भी पर कोई रहने ही नहीं देता।"

"कायर कहीं का! रास्ता रोकने वालों से रुक गया ?"

"नहीं, अपनी कमजोरियों से, अपनी इच्छाओं से।"

"कमजोरियाँ किस में नहीं होतीं, इच्छाएँ कहाँ नहीं हैं ?"

"कमजोरियाँ और इच्छाएँ तभी तक रास्ता रोकती हैं जब तक उनमें यश या अपयश का भाव रहता है। उस सामने के चबूतरे पर पड़े कलजुग को देखो, मस्त है, मरघट में चिता की आँच पर चाय बना कर पी लेता है, घूमघाम कर पैसे ले आता है, शराब, अफीम, सुलफा, भाँग, गाँजा, जो मिला चढ़ा जाता है और धुन में बहकता रहता है। सोने के लिये जमीन, सिरहाने के लिये पत्थर, ओढ़ने के लिये लावारिश लाश का चीथड़ा काफी है इसे। चलूँ, जरा इसी से बातें करूँ।"

स्वयम् से बातें करता करता दीपक कलजुग के पास जाकर बोला—

"कहो कलजुग, क्या हाल है?"

कलजुग ने बैठे ही बैठे झूम कर नाक में कहा— "मौज आ रही है, दीपक बाबू!"

दीपक ने देखा कि कलजुग वास्तव में बहुत खुश है। उसकी बड़ी बड़ी लटें मस्ती में झूम रही हैं। कभी वह गाता है और कभी बैड़ देने लगता है। कुछ देर खड़े खड़े दीपक कलजुग की लीला देखते रहे, फिर पत्थर पर ऊकड़ू बैठते हुए बोले— "आज सारे दिन क्या क्या किया कलजुग?"

कलजुग ने उत्तर देने से पहले काग़ज़ के दो थैले अपने बराबर से उठाये। उनमें से एक में मिठाई थी और दूसरे में नमकीन। दीपक को देखते हुए उसने कहा— "लो, खाओ दीपक बाबू!"

दीपक ने भावना से कलजुग को देखते हुए कहा— "तुम खाओ कलजुग, मेरी इच्छा नहीं है। मुझे तो अपनी आज की कहानी सुनादो।"

कलजुग ने तरकून मुँह में रखते हुए कहा— "एक क्या हजार कहानियाँ सुनाऊँगा दीपक बाबू! मुझे ऐसी ऐसी कहानियाँ आती हैं जो सारी सारी ज़िन्दगी सुनाते सुनाते भी पूरी नहीं होंगी।"

कलजुग की बात सुनते ही दीपक कलजुग की वाणी में भरे भावों को गम्भीरता से पढ़ते रह गये और फिर सोकर जागते हुए से बोले— "पहले अपनी आज की कहानी सुनाओ, फिर और कहानी किसी और दिन सुनूँगा।"

कलजुग ने चिलम में लम्बा दम खींचते हुए कहा— "मेरी आज की और कल की कहानी दो नहीं हैं। जिस दिन से पैदा हुआ हूँ और जिस दिन मरूँगा, उस दिन तक हर दिन की एक ही कहानी है और एक ही रहेगी।"

"वह एक कहानी ही तो मैं सुनना चाहता हूँ।"

कलजुग ने चिलम में एक दम खींचा और खाँसता हुआ बोला—"आज और कल में कोई फर्क नहीं है, सिर्फ शब्द का धोखा है। मनुष्य भ्रम में भटकता फिरता है।"

"उपदेश नहीं, कहानी सुनाओ कलजुग! कोई अच्छी सी कहानी कहो, जिससे मन बहले। मैं बहुत परेशान हूँ कलजुग! बहुत परेशान।"

"अच्छा! क्यों, क्या बात है?"

"बात कुछ भी नहीं, मुझे इस दुनिया से नफरत होने लगी है।"

"नफरत क्यों होने लगी?"

"धोखा ही धोखा मिला यहाँ।"

"यह संसार धोखा नहीं तो क्या है। पर मूर्ख तो वह है जो धोखे में फँसे। जीना चाहते हो तो धोखे में फँसो मत, धोखा दो।"

"तुम तो फिर उपदेश देने लगे, कोई कहानी सुनादो न?"

"अच्छा तो सुनो! एक दिन मैं मर गया, सचमुच नहीं झूठ मूठ को। मैंने देखा कि मेरी मृत्यु पर कोई भी रोने नहीं आया। एक दो आये भी तो एक ने मेरी जेब टटोल कर जो दो चार पैसे थे वे कब्जे में किये और दूसरे ने मेरा पानी पीने का डिब्बा उठाया। मैं सुबह का मरा मरा शाम तक पड़ा रहा पर कोई मुझे मरघट तक पहुँचाने नहीं आया। आखिर मैं ही उठा और अब मरघट में रहने लगा हूँ। यहाँ अब अन्त तक के लिये बेफिक्र हूँ। बस, यही कहानी है आज और कल की। मैं आज यहाँ रस लेता हूँ, कल मुझे वहाँ जाना होगा जहाँ जाकर आने न आने का कुछ पता नहीं।"

दीपक कहानी सुनते जा रहे थे और देखते जा रहे थे कलजुग का

मुँह। उसके मुँह पर जैसे कोई कथानक लिखा हो अथवा जैसे कोई आवारा बनकर चिलम में अपना दर्द फूँक रहा हो। कलजुग को कौतूहल से देखते देखते उसने कहा— "तुम दुखी हो या सुखी कलजुग!"

कलजुग खाँसता हुआ हँसा और बोला— "दुःख को तो मैं पास तक फटकने नहीं देता, डर कर दूर भागा रहता है। मैं बहुत सुखी हूँ दीपक बाबू!"

दीपक— "तुम्हारे और कौन कौन हैं कलजुग?"

कलजुग— "फकत दम किवाड़ों की जोड़ी हूँ।"

दीपक— "क्या तुम्हारे और कोई नहीं?"

कलजुग— "सभी मेरे हैं और कोई भी अपना नहीं।"

दीपक— "भाई बहिन, चाचा ताऊ, माँ बाप कोई तो होंगे न?"

कलजुग— "अपने लिये तो सब मर गये और सब के लिये हम मर गये।"

दीपक— "और अगर तुम कभी बीमार पड़ जाओ तो?"

कलजुग— "तो क्या हुआ, तकलीफ सहन नहीं हुई तो डूबने के लिये तालाब दूर नहीं है। और फिर हम तो औरों के लिये बीमारी हैं, हमें बीमारी क्या होगी? और हाँ दीपक बाबू, तुमने तो अपनी परेशानी बताई ही नहीं।"

दीपक— "क्या करोगे सुनकर?"

कलजुग— "कष्ट दूर कर दूँगा।"

दीपक— "कौन किसके कष्ट दूर करता है?"

कलजुग— "तुम्हें अभी दुनिया में जीना नहीं आता। लो, यह थोड़ी सी भांग की गोली खाओ!"

दीपक— "मैं भांग नहीं खाता कलजुग !"

कलजुग— "शराब पियोगे ?"

दीपक— "नहीं ।"

कलजुग— "चरस ?"

दीपक— "नहीं ।"

कलजुग— "संखिया खाओगे ?"

दीपक— "हाँ, मैं मरना चाहता हूँ ।"

कलजुग— "संख्या खा कर क्या मरना ज़रूरी है ? हम तो जीने के लिये संखिया खाते हैं, शंकर के चेले हैं ।"

दीपक— "मुझे कोई ऐसी चीज़ दो जिससे मौत आ जाये ।"

कलजुग— "अरे बाबू साहब, मरने के लिये तो एक से एक ज़रिये हरेक के पास हैं, चाहे जिससे मर जाओ। रेल से कट जाओ, नदी में डूब मरो, बिजली का करन्ट छुवालो, पैट्रोल छिड़को और दियासलाई लगाओ। पर दोस्त, मरने के जितने भी कौतुक तुम्हें करने हैं वे सब यहाँ मत करना। किसी दूसरी जगह ज़हर खाना। हमारे पास तो जीने का काम है, मरने का नहीं। ऐसा मत करना कहीं खुद तो मरो और कलजुग को पुलिस के हवाले करादो ।"

दीपक— "डरो मत कलजुग, मैंने कभी किसी को दुःख नहीं दिया। तुम्हें फँसाने के लिये नहीं मरूँगा, मरूँगा तो ऐसे मरूँगा कि पुलिस तो क्या ज़मीन को भी मेरे मरने की गन्ध नहीं मिलेगी ।"

कलजुग— "अच्छा, मरो या जियो, अब यहाँ से चलते बनो। हम तो नशे पानी के ग्राहक हैं, कुछ खिलाओ पिलाओ तो दिमाग चाटो, नहीं तो रास्ता नापो ।"

दीपक समझ गये कि अब कलजुग को गुस्सा आने वाला है, ज़रा और झक की तो वह चिमटा उठा कर दौड़ पड़ेगा। अब तक जो इज़्ज़त उसके मन में है वह सब खाक में मिल जायेगी।

कलजुग का नशा बढ़ते देख दीपक एक दूसरी टूटी फूटी तिदरी में आये। यह तिदरी एक भजनानन्दी की थी। एक लोटा, एक छोटी बाल्टी, दो चार टाट के टुकड़े, एक दो आसन तिदरी में अवश्य पड़े थे।

दीपक ने तिदरी में प्रवेश कर ढूले पर बैठे सन्त को नमस्कार किया। सन्त ने आसन की ओर संकेत करते हुए कहा— "आसन ले लो!"

आसन बिछा कर दीपक बैठ गया। थोड़ी देर महात्मा जी चुप बैठे रहे, फिर जाने क्या सूझी एकदम कह उठे, "अब जाओ, हम भजन करेंगे।"

दीपक को महात्मा का इस प्रकार जाने को कहना अच्छा नहीं लगा, कुछ चोट सी लगी, पर क्या करता, हठ करके बैठा भी रहता तो परमहंस नाराज हो जाते, गुस्से में कोई अशुभ बात कह देते तो साधुवाणी फले बिना नहीं रहती। इसलिये चुपचाप सामने के तालाब के किनारे आकर बैठ गया। यह जलाशय कमलों की पंक्तियों से खिलखिला रहा था। कमलों को देख कर दीपक को कुछ शान्ति सी मिली। वह आप ही आप कहने लगा— "कमल के फूल भी क्या ही अनोखे होते हैं। जल में रहकर भी जल से एकदम न्यारे। कितने प्यारे हैं ये फूल! इसी प्रकार बहुतों की ज़िन्दगी भी बहुत खूबसूरत और प्यारी होती है। पर उनका पंक से स्पर्श देख अज्ञानी उनको पतित कहते हैं। संसार में न जाने कितने ऐसे पुण्य हैं जो पाप समझे जाते हैं और कितने ऐसे पाप हैं जो पुण्य कहे जाते हैं।"

दीपक के मन में बड़े बड़े विचित्र संकल्प उठ रहे थे। कभी वह

सोचता था साधु हो जाऊँ, कभी सोचता था तालाब में डूब मरूँ, कभी विचार करता कि कलजुग की तरह बन जाऊँ और खो दूँ स्वयम् को नशे में।

सोचते सोचते दीपक को काफी देर हो गई। रात के लगभग दस बज गये, परमहंस भी भजन करके निवृत्त हो गये, पर दीपक के मन को शान्ति नहीं थी।

परमहंस समझ गये कि दीपक कुछ विशेष परेशानियों में है, उन्होंने मधुरता से कहा— "घर जाओ भैया, बहुत रात हो गई। ग्यारह बजने वाले हैं।"

"आपको कोई कष्ट तो नहीं दे रहा, आपके भजन में भी बाधा नहीं डाल रहा, चला जाऊँगा।"

"मुझे दुःख नहीं दे रहे पर तुम्हें तो दुःख है भाई! यह स्थान ख़तरनाक है, धधकता हुआ श्मशान, भयानक रात, और जहाँ तुम बैठे हो वहाँ तो साँपों का घर है, वहाँ मत बैठो!"

"साँप कहाँ नहीं, दुनिया में तो हर जगह साँप, बिच्छू, कानखजूरे, ततैये, कुत्ते भरे पड़े हैं, काटते हैं, डसते हैं, दुःख देते हैं। मनुष्य साँप बिच्छुओं के काटने से नहीं मरता, मनुष्य मरता है आदमी के काटने से, मनुष्य तड़पता है आदमी के डंक के ज़हर से।"

दीपक की बात सुनकर परमहंस ऐसे हो गये जैसे कोई मास्टर किसी विद्यार्थी के प्रश्न का उत्तर न दे पाने की स्थिति में हो जाता है।

वे मन ही मन में सोचने लगे— "दीपक की बात गूढ़ है। यही तो वह रहस्य है जिससे संन्यस्त का जन्म हुआ है। यही तो वह दर्शन है जिससे मनुष्य संसार से मुक्त होता है। दुःखों की पराकाष्ठा ही सत्य को दिखाती है।

"पर क्षणिक भावुकता में पल भर के लिये कौन वैरागी नहीं होता ! दुःखातिरेक से घबराकर बाबाजी बनने वालों की कमी नहीं। भावावेश में मनुष्य पागल हो जाता है। जब तक सोचने की शक्ति है तभी तक मनुष्य मनुष्य है, अधिक परेशानियों में जब कोई उचित अनुचित का विचार करने में असमर्थ हो जाता है तब उसका विवेक नष्ट हो जाता है। वह पागल हो जाता है। जान पड़ता है इस नौजवान को कोई बड़ा दुःख है। देखने से विचारवान् लगता है, भावनाओं से भावुक जान पड़ता है। स्वभाव से सीधा है, टेढ़ा होता तो तकलीफ न उठाता, भटकता नहीं। टेढ़े चन्द्रमा को क्या राहु ग्रस सकता है !

"तो इससे क्या कहूँ ? क्या इससे कहूँ कि तू साधू होजा, या इसे शिष्य बना लूँ ? कौन सा रास्ता ठीक है इसके लिये ? मैं समझता हूँ इसे संसार ही में रहना चाहिये। इसका जीवन बनों के लिये नहीं नगरों के लिये ही उपयुक्त है। यह एक श्रेष्ठ नागरिक हो सकता है, और अच्छा नागरिक किसी महात्मा से कम नहीं होता।"

मन ही मन में काफी विचार करने के बाद परमहंस ने कहा— "घर जाओ बेटा ! अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है, यहाँ पिछत्तर साल की आयु के बाद आना। अभी जाओ, दुनिया के आनन्द भोगो !"

दीपक— "दुनिया के आनन्द मेरे भाग्य में नहीं हैं, सहृदय ! हर फूल काँटा बन जाता है।"

परमहंस— "ऐसा ही होता है, निराश न होओ ! दुनिया में बुरे हैं तो भले भी हैं। जाओ, घर जाओ !"

दीपक— "आप विश्राम करें, मैं चला जाऊँगा।"

परमहंस अपनी गुहा जैसी कोठरी में चले गये। थोड़ी ही देर में बादल गर्जने लगे, बिजली कड़क उठी और वर्षा कसम खाकर टूट पड़ी।

ऐसी वर्षा हुई, ऐसी वर्षा हुई कि पानी ही पानी नज़र आने लगा।

परमहंस चले तो गये पर उन्हें नींद नहीं आई। वे फिर भीषण वर्षा में बाहर आये, दीपक से अन्दर आने को कहा। मानो विवेक मन को आवाज़ दे रहा था।

दीपक ने भीगते हुए ही आवाज़ का उत्तर दिया— "सामने तालाब में कमल के फूलों पर छाया नहीं है। पानी में वे किस शान से खिल रहे हैं। आकाश से उन पर जितना पानी बरसता है उतने ही वे और अधिक खिल जाते हैं। संसार में छाया की चाह मनुष्य को दीन बना देती है, उसके व्यक्तित्व को खिलने नहीं देती, उसके विकास को रोक लेती है। शायद तालाब में खिलने वाले ये कमल सुखी हैं। मुक्त डाल पर आराम करने वाले पक्षी क्या सुनहरी छाया में रहने वाले मनुष्यों से अधिक सुखी नहीं हैं ?"

तभी परमहंस की एक आवाज़ और सुनाई दी— "बात तो तब है जब जल में रह कर जल से अलग रहो। कमल के फूलों को देखो, वे पंक में रह कर पंक से ऊपर हैं। तुम संसार से भागना चाहते हो, भागो नहीं उसमें कमल के फूल की तरह रहो !"

२

"अरी, वह आया नहीं अभी तक। दो बजे के घण्टे बोल लिये, वर्षा भी बड़ी तेज़ है, बिजली चमक रही है। न जाने कहाँ भटक रहा होगा। जा, तू ही देख कर ला नीरजा!"

नीरजा— "इतनी रात में कहाँ जाऊँ, और वर्षा भी बड़ी भयानक है, दूर दूर तक अँधेरा है।"

देवकी देवी अपने बिस्तर से उठीं, दरवाज़ा खोलकर छज्जे पर आईं और एकदम कह उठीं, "ओले भी पड़ रहे हैं। ला, कम्बल और छाता दे, मैं ही जाती हूँ देखने।"

"ऐसी भयानक रात में तुम कहाँ जाओगी माँ!"

देवकी— "नहीं जाऊँगी तो क्या करूँ, उसे यह ख्याल कहाँ है कि हम परेशान होंगे!"

नीरजा— "तो फिर आप उन पर नाराज़ क्यों हो गई थीं?"

देवकी— "नाराज़ कहाँ हुई थी, यही तो कहा था, इतने भले न बनो कि लोग तुम्हें बुरा कहने लगें।"

नीरजा— "उन्होंने समझा आप यह कह रही हैं कि 'तुम्हारे कारण मुझे तकलीफ होती है'। तभी वे यह कह कर चले गये, 'अब मैं तुम्हें कष्ट नहीं दूँगा'।"

देवकी— "उसे तो ज़रा सी बात हुई कि भागने की सूझी, जैसे

यह घर उसका है ही नहीं। हम ग़ैर जो ठहरे न !"

नीरजा— "वे हमें ग़ैर तो नहीं समझते।"

देवकी— "उसका यह प्रेम ही तो मुझे मारे डाल रहा है। पता नहीं कहाँ धक्के खा रहा होगा! ला छाता और कम्बल दे, मैं जाती हूँ।"

नीरजा— "मैं भी चलूँ ?"

देवकी— "नहीं, तू यहीं रह, मैं उसे देख कर लाती हूँ। गया कहाँ होगा, यहीं कहीं मैदान में बैठा होगा, या मन्दिर की मुँडेर पर पड़ा होगा।"

नीरजा— "सूरजकुंड भी तो जा सकते हैं, जब वे बहुत दुखी होते हैं वहीं चले जाया करते हैं।"

देवकी— "वह तो चला जाता है, और हमें श्वांस लेना भारी हो जाता है। न कुछ खाया है, न ढंग से कपड़ा ही पहने है। उसे तो अपनी सुधि ही नहीं है। अच्छा, दरवाज़ा बन्द कर ले, मैं जाती हूँ।"

देवकी ने कम्बल ओढ़ा और दरवाज़ा खोल कर भीषण वर्षा में घर से बाहर निकलीं। सड़कों पर पानी भरा हुआ था। अँधेरी विकराल रूप धर कर छाई हुई थी। कभी कभी बिजली ऐसे चमकती थी जैसे श्मशान में चिता धधक धधक कर जलती हो।

देवकी आगे बढ़ीं। बिचारी वृद्धा थीं, ठंड के मारे उनकी किड़किड़ी बँध गई। "पर दीपक भटक रहा होगा" इस चाह में वे चली जा रही थीं। जब वे एक बड़े मैदान के निकट पहुँचीं तो आवाज़ दी, "दीपक!" पर आवाज़ मैदानों से टकरा कर खो गई।

देवकी ने कई आवाज़ें दीं, पर दीपक तो कहीं था ही नहीं, बोलता कौन! दूर से एक चौकीदार ने देवकी को देखा, उसने वहीं से कहा— "आज तो दीपक बाबू को हमने शाम से इधर नहीं देखा।"

देवकी देवी बिल्कुल भीग गई थीं, पर दीपक को खोजने की धुन में वे मौहल्ले के उस सिरे पर मन्दिर में पहुँचीं। 'इस हनुमान जी के मन्दिर में दीपक कभी कभी आया करता है। दीपक यहीं मिलेगा।' इस आशा से देवकी ने हनुमान जी के मन्दिर में आवाज़ दी, "दीपक !"

पहली आवाज़ में कोई नहीं बोला। दूसरी आवाज़ में मन्दिर में सोया हुआ पुजारी जागा। उसने कहा, "कौन ?"

देवकी— "मैं हूँ देवकी, पुजारी जी ! दीपक तो इधर नहीं आये ?"

पुजारी— "नहीं माता जी, इधर तो नहीं आये। पर रात नौ बजे जब मैं गाँव से लौट रहा था तो सूरजकुंड पर मैंने उन्हें देखा था।"

देवकी— "कहाँ देखा था उन्हें, सूरजकुंड पर ?"

पुजारी— "कलजुग के सामने वाले मन्दिर में गुरुजी के पास बैठे थे।"

"अच्छा तो मैं वहीं जाती हूँ," कहती हुई देवकी ने लम्बे लम्बे डग भरे। सूरजकुंड उस जगह से लगभग तीन मील था, पर बेचारी समर्थ न होते हुए भी चली जा रही थीं। हाँफती हुई, काँपती हुई, कहीं कहीं गिरती-पड़ती, जैसे तैसे वे सूरजकुंड पहुँचीं।

मन्दिर की तिदरी से ही उन्होंने आवाज़ दी, "दीपक ! दीपक ! ! दीपक ! ! !"

उत्तर में दीपक तो न बोला, गुरु जी कुटी से बाहर निकले। इस भीषण वर्षा में देवकी देवी को सामने देख उन्होंने एक ही श्वास में कहा, "अरे, ऐसी वर्षा में इतनी रात गये आप !"

"हाँ, मैं। दीपक आये थे क्या इधर ?"

गुरु जी— "हाँ, आया था। बड़ी मुश्किल से अभी अभी घर भेजा है, इधर से गया है। आप किधर से आ रही हैं ?"

देवकी— "मैं तो हनुमान मन्दिर वाली सड़क से आ रही हूँ ।"

गुरुजी— "और वह कचहरी वाली सड़क से गया है। बोलिये, कितना नासमझ है! यह भी नहीं सोचा कि आप रात भर परेशान होंगी ।"

देवकी— "वह सोचता तो बहुत है, पर सोच कर ही रह जाता है। यह बात नहीं है गुरुजी कि उसे मेरा ध्यान नहीं। मैं बुलाने न आती तो भी वह घर पहुँचता ही। जैसे मछली जल के बाहर नहीं रह सकती वैसे ही वह मेरे बिना नहीं रह सकता ।"

गुरुजी— "आप बिल्कुल भीग गई हैं, अब यहीं विश्राम कर लीजिये। मैं दूसरा कम्बल दिये देता हूँ ।"

देवकी— "नहीं, मैं जाती हूँ। वह मुझे घर पर नहीं देखेगा तो सीधा इधर ही आयेगा। कल उसकी तबियत भी ठीक नहीं थी, बुखार सा था। पर कुछ सोचता ही नहीं है ।"

गुरुजी— "वह बहुत सोचता है देवकी जी! और वह वह सोचता है जो मनुष्य को सोचना चाहिए। वह सोचता है सबका भला। उसकी आँखों में अपने आँसू बहुत कम होते हैं। क्या तुमने उसकी आँखों से दूसरों के आँसू बरसते हुए देखे हैं? वह तो साधारण मनुष्यों से बहुत परे है। वह अपने लिये नहीं जीता औरों के लिये जीता है ।"

देवकी— "और तभी उसे सब बुरा कहते हैं। मुझे तो जो भी मिलता है यही कहता है, दीपक अच्छा आदमी नहीं है।"

गुरुजी— "किसी के कहने से कोई अच्छा बुरा नहीं होता, मनुष्य अच्छा बुरा कर्मों से होता है। दीपक के कर्म खराब नहीं हैं। यह बात अलग है कि कोई अपने हित में अच्छा समझता है, कोई सब के हित में अपने को तपाता है। दीपक के सोचने और करने का तरीका दुनिया से

कुछ अलग है। वह यह नहीं जानता कि कहने में 'नहीं' होनी चाहिये और करने में 'हाँ' होनी चाहिये। वह करनी और कथनी में एक है।"

देवकी— "पर क्या आवश्यकता है इस बात की कि वह सत्य का ढिंढोरा पीटता फिरे? मनुष्य को रहस्यमय होना चाहिए।"

गुरुजी— "मेरे विचार में तो मनुष्य जैसा अन्दर से हो वैसा ही बाहर रहे। जो अपने को धोखा देता है वह दूसरे को भी धोखा दे सकता है।"

देवकी— "सच्चा मनुष्य दूसरे को धोखा दे या न दे, पग पग पर आग होती है उसके लिये।"

गुरुजी— "अग्नि में तप तप कर ही तो सोना कुन्दन कहलाता है देवकी देवी!"

कहते कहते गुरुजी ने देखा कि देवकी देवी कुछ मूर्च्छा सी महसूस कर रही हैं। उन्होंने कहा— "क्या बात है देवकी!" पहली बार में कोई उत्तर नहीं मिला। उन्होंने दूसरी बार कहा, फिर भी मौन। पास जाकर नब्ज़ देखी, धीमी चल रही थी। गुरुजी ने पानी मुँह में डाला और कलजुग को आवाज़ देते हुए बोले— "जा, जल्दी दीपक को बुलाके ला, वह घर गया है।"

गुरुजी देवकी को मूर्च्छा से जगाने में लग गये और कलजुग अपना डंडा उठा दीपक को बुलाने चल दिया।

रास्ते में वह बड़बड़ाता जा रहा था— "तंग कर दिया इसने, न नशा करने देता है, न सोने देता है, जैसे मैं इसके बाप का नौकर हूँ। वह तो गुरुजी की आज्ञा थी, मैं बुलाने जा रहा हूँ, नहीं तो अपने बाप को भी इस समय बुलाने न जाता। जी तो यह चाहता है कि जाते ही उसके चार पाँच डंडे लगाऊँ, पर दया आ जाती है। जाने दया क्यों आ जाती है!

जब मुझे उस पर दया आती है तो अवश्य ही उसमें कुछ बात है। मैं उसे कुछ भी कह देता हूँ पर वह हँसता ही रहता है। क्या मैं पागल हूँ जो वह मेरी बात पर हँसता है ? वह मुझसे कहता है कि तुम नशा करते हो और नशा करने वाले पागल होते हैं। तुम्हें किसी दिन पुलिस पकड़ लेगी और जेल में बन्द कर देगी। सचमुच उस दिन तो मुझे पुलिस पकड़ ही लेती, पर दीपक बाबू ने मेरी हिमायत ली तो दारोगा जी कान दबा कर चले गये।"

कलजुग और भी न जाने क्या क्या सोचता चला जा रहा था, उसकी चाल भी हिरण जैसी थी। बात की बात में वह देवकी देवी के घर दीपक के सामने जा धमका। उस समय करीब करीब सुबह होने को थी।

दीपक को देखते ही कलजुग ने अकड़ कर कहा— "ऐ बाबू साहब, चलिये जल्दी। देवकी देवी तुम्हें ढूँढ ढूँढ कर सूरजकुण्ड पर पहुँच गईं। जल्दी चलिये, वे मूर्च्छित हो गई हैं, कहीं कोई बुरी बात न हो जाये।"

सुनते ही नीरजा घबरा गई। दीपक के भी होश उड़ गये। उसने कहा— "मैं जाता हूँ नीरजा!"

नीरजा ने तुरन्त चप्पल पहनते हुए कहा— "मैं भी तो चल रही हूँ। माँ मूर्च्छित हों और मैं घर बैठी रहूँ, यह कैसे हो सकता है!"

कलजुग के साथ दीपक और नीरजा चल दिये। रास्ते में नीरजा कहती हुई चल रही थी, "आपने तंग कर दिया है माँ को। बेचारी ऐसी वर्षा में तुम्हें ढूँढने गईं। एक तुम हो, उनकी कोई चिन्ता ही नहीं।"

कहती हुई नीरजा ने देखा कि दीपक मौन है, पर कभी कभी उसकी आँखों से आँसू निकल रहे थे, जैसे आँसू ही उसका उत्तर हों।

पर कलजुग से शान्त न रहा गया। उसे जैसे मौका मिल गया, तपाक से बोला— "बड़ी भली हैं बेचारी देवकी देवी। मैं जब भी कभी घर

पहुँच जाता हूँ, कुछ खिलाये पिलाये बिना वापिस नहीं आने देतीं। दीपक पर तो वे जान देती हैं, दीपक की ही चर्चा करती हैं और एक यह बाबू साहब हैं। कल शाम मुझसे झक मार रहे थे और रात हुई तो गुरु जी के प्राण पीने लगे, जैसे हम दोनों इनके लिये फालतू हैं।"

कलजुग के उत्तर में दीपक ने एक हिचकी भरी।

इस हिचकी में न जाने क्या था, नीरजा कुछ भावुक हो गई। उसने कहा—"रोइये नहीं, नहीं तो माँ और रोयेंगी। वे आपके आँसू नहीं देख पातीं।"

और साथ ही कलजुग ने भी कहा—"हाँ, हाँ, रोते क्यों हो भाई! रोने से दुःख दूर थोड़े ही हो जाता है। प्रायश्चित्त करना चाहते हो तो इन्सान बन जाओ। अरे ठीक ढंग से रहो और देवकी जी की सेवा करो। पर तुम्हें तो सेवा करनी कहाँ आती है, सेवा लेने के मर्द हो।"

अब दीपक का मौन टूट गया, उसने कहा—"एक काम करो कलजुग! मुझे नशा करने की आदत डाल दो। मैं भाँग पिया करूँगा, सुलफा पिया करूँगा, चरस पिया करूँगा, शराब पिया करूँगा।"

कलजुग ने ज़ोर से हँसते हुए कहा—"वाह बेटा! यही तो कमी थी, जो अब पूरी कर लोगे। मुझे उपदेश देते थे—शराब मत पिया करो, चरस मत पिया करो।"

दीपक ने गम्भीर होकर कहा—"और अब खुद पीने को कह रहा हूँ। इसलिये कह रहा हूँ कि शायद इसी तरह गम ग़लत हो जाये।"

बातें और भी होतीं पर सूरजकुंड आ गया। देवकी देवी होश में आ गई थीं। दीपक को देखते ही उनकी चेतना और भी सजग हो गई, मन में प्रेम उमड़ आया। पर अहम् नाराज़ ही रहा। वे दीपक से कुछ भी न बोलीं।

पर दीपक उनके पास जा बैठा। धीरे से कहा, "कैसी तबियत है?" जवाब में देवकी देवी रो पड़ीं। दीपक उनके आँसू पोंछने लगा, पर उन्होंने उसका हाथ हटा दिया।

हाथ हटाने से दीपक ने हाथ नहीं रोका, वह आँसू पोंछता ही रहा। जब देवकी देवी के आँसू निकल चुके और वह शान्त हुई तो दीपक ने कहा— "मुझे माफ कर दो!" अब देवकी देवी से न रहा गया, उन्होंने अपना हाथ दीपक की पीठ पर रख दिया।

गुरुजी भी शोक और करुणा के इस वातावरण में गम्भीर हो गये, उन्होंने कहा— "दीपक! देखा तूने, देवकी तेरे लिये मान अपमान सब कुछ भूल गई हैं। तेरे प्रेम में अपने सुखों की बलि दे रही हैं। इतना कष्ट तुझसे कैसे देखा जाता है? देख इन्हें बुखार हो गया है, जा अब घर ले जा, फिर कभी ऐसा मत करियो कि ये वृद्धा अवस्था में मारी मारी तुझे ढूंढने सूरजकुंड पर आयें।"

दीपक ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसकी आँखों में कुछ नमी अवश्य आ गई, मानो उसने वाणी से नहीं गीली आँखों से अपनी वेदना प्रकट कर दी। उठ कर उसने गुरुजी को नमस्कार किया, कलजुग की ओर देखा और फिर तीनों चल पड़े।

थोड़ी दूर चलने के बाद एक रिक्शा में बैठ वे घर आये। पर वे भीगे हुए थे। देवकी देवी बुखार से पीड़ित थीं। पड़ौसियों ने उन्हें इस दशा में देखा और आपस में चर्चाएँ करने लगे।

"कहाँ से आ रहे हैं ये आज सुबह सुबह सर्दी में? रात को कहाँ गये थे? जान पड़ता है इन में कोई झगड़ा हुआ था। देवकी ने न जाने क्यों अपने सिर मुसीबत ले रखी है?"

दूसरे पड़ौसी ने कहा— "अजी तुम नहीं जानते, देवकी कहाँ की

भली है, अकेली रहती है, लड़की पास है, और एक दीपक को रख लिया।"

तीसरे ने कहा— "जी, कौन किसी के पास रहता है, ज़रूर कोई मतलब होगा, बिना मतलब भला दीपक बाबू क्या घर छोड़ यहाँ रहते!"

और फिर सभी ने कुछ न कुछ कहा। किसी ने दीपक की भलाई की और किसी ने बुराई। गंजू ने तमक कर कहा— "अजी, दीपक बाबू बड़े चलते हुए हैं। देखने में भोले दीखते हैं।"

तभी चाट बेचते हुए चतरू ने कहा— "आप गलत कहते हैं। दीपक बाबू बड़े भले हैं।"

चतरू की बात काटते हुए गंजू ने कहा— "अरे तू भला नहीं कहेगा तो कौन कहेगा, तुझसे इकन्नी की चाट लेते हैं और चवन्नी दे जाते हैं न?"

चतरू चाट ज़रूर बेचता था पर क्या मजाल जो उसे कोई कड़वी बात बोल जाये। तपाक से बोला— "और एक तुम हो जो इकन्नी की चाट खाये हुए महीना हो गया, आज तक इकन्नी नहीं दी। बड़े आये दीपक बाबू को बुरा कहने वाले। पढ़े लिखे होते तो उनको समझते। चार पैसे क्या हो गये हैं तुम्हारे पास कि आदमी को आदमी नहीं समझते। ख़बरदार जो दीपक बाबू को कुछ कहा।"

गंजू लाला को चतरू की फटकार बहुत बुरी लगी। वह सोचने लगा कि अभी इसको और इसके खोमचे को मिट्टी में मिला दूँ, पर चतरू पैसे से कमज़ोर था, शरीर से कमज़ोर नहीं था।

दुनिया में काम बनाने वाले कम होते हैं, बिगाड़ने वाले बहुत। भलाई का साथी कोई बिरला ही होता है और बुराई के साथी एक ढूंढो तो हज़ार मिल जाते हैं। यह बात चल ही रही थी कि छावनी बोर्ड का

डॉक्टर उधर आ निकला। गंजू ने ज़ोर ज़ोर से कहना शुरू किया—
"सड़ी हुई चाट बेच रहा है, पकौड़ी और लड्डुओं पर मक्खियाँ भिनक रही हैं, अरे देख चटनी में मच्छर पड़े हैं।"

शोर सुन कर डॉक्टर के कान खड़े हो गये। वह चतरू के पास आया, आव देखा न ताव एकदम कहा—"उघड़ा खोमचा क्यों रखा है?" और फिर ठोकर मार दी खोमचे में।

बेचारे ग़रीब का खोमचा बिखर गया। चतरू ने चिल्लाकर कहा—
"अभी ताज़ा खोमचा बना कर लाया था, आपने मेरा सामान क्यों फेंक दिया डॉक्टर साहब?"

डॉक्टर ने ग़ुस्से से कहा— "अभी तो खोमचा ही फेंका है। चालान करूँगा तेरा, जुर्माना होगा तुझ पर, लाइसेंस ज़ब्त कर लिया जायेगा।" गंजू ने डॉक्टर की हाँ में हाँ मिलाई, कहा— "अजी यह रोज़ सड़ी हुई चीज़ खिलाता है। उस दिन लाला मोहनलाल को उल्टियाँ लग गई थीं।"

चतरू को डॉक्टर से जितनी शिकायत थी उससे अधिक गंजू पर ग़ुस्सा था। बिगड़ते हुए बोला— "और तुम जो सट्टा लगाते हो। उस दिन तुम्हारे हाथ में सट्टे की पर्चियाँ थीं, पुलिस आ गई और मैंने कुछ नहीं कहा। अगर ज़रा सा इशारा करता पुलिस को तो जेल में सड़ते। और एक तुम हो कि मेरा ताज़ा खोमचा फिंकवा दिया।"

छावनी बोर्ड के अधिकारी ने अकड़ कर कहा— "जबान मत चला, नाम बता!"

चतरू ने भी उसी ढंग से कहा— "चतरू है मेरा नाम, लिख लो।"

शोर काफी बढ़ गया था और भीड़ भी इकट्ठी हो गई थी। दीपक ने खिड़की से देखा कि बाहर कोई झगड़ा है। वे बाहर आये, पास

जाकर चतरू का खोमचा बिखरा देखा तो सीधा प्रश्न किया— "क्यों फेंक दिया इसका खोमचा डॉक्टर साहब !"

डॉक्टर— "इसका खोमचा उघड़ा था ।"

दीपक— "ढक कर केवल पाप रखा जाता है। उघड़ा था तो क्या था ? मैं जानता हूँ चतरू कभी गंदा सामान नहीं रखता ।"

डॉक्टर— "कहीं आपको मुफ्त चाट तो नहीं खिलाता यह ?"

दीपक— "और कहीं आपको इससे महावारी न मिलने के कारण तो आप इसका चालान नहीं कर रहे ? होश में बात कीजिए डॉक्टर साहब ! आपने चार आदमियों में कहा है कि मैं मुफ्त की चाट खाता हूँ। मैं आप पर मान-हानि का दावा करूँगा और दूसरा दावा करेगा चतरू जिसका स्वच्छ खोमचा आपने इसलिये फेंका कि आपको रिश्वत नहीं मिलती ।"

दीपक के कहने में ऐसा दम था कि डॉक्टर सन्नाटे में आ गया। कुछ क्षणों तक उससे कोई उत्तर नहीं बना, जैसे वह उत्तर सोच रहा हो।

पर इतनी देर में दीपक का मन कुछ और सोचने लगा था। डॉक्टर के चेहरे को पढ़ते हुए उसने कहा— "किसी गरीब को सताना अच्छा नहीं होता डॉक्टर ! चतरू बालबच्चेदार आदमी है। आप जरा सोचिये तो, रुपया दो रुपया सारा दिन मर पच कर पैदा करता है। उसका दस रुपये का खोमचा आपने फेंक दिया, क्या मिला आपको ? बिचारा सारा दिन आपके बालबच्चों को कोसेगा ।"

दीपक की बातों से डॉक्टर का मन पिघल गया। उसने कहा— "मुझसे ग़लती हो गई। लो ये दस रुपये खोमचा फेंकने के बदले चतरू ! मैं शर्मिन्दा हूँ ।"

चतरू डॉक्टर को दस रुपया वापिस करता हुआ बोला— नहीं

डॉक्टर साहब! ये रुपये आप ले जाइये। आपने मुझे पहचान लिया, यही आपकी कृपा बहुत है।"

पर डॉक्टर ने रुपये वापिस नहीं लिये। वह चला गया, ऐसे जैसे कोई अपराध से मुक्त होकर चला जाता है।

कभी कभी मनुष्य न चाहते हुए भी वह कर बैठता है जो अपराध कहा जाता है। बहुत से अपराधी पुण्यात्मा भी होते हैं। क्षणिक आवेश या भावुकता में किसी से कोई ग़लती भी हो जाये तो उससे उसके पूरे जीवन के प्रति धारणा नहीं बना लेनी चाहिये। झूंझल में किया हुआ पाप, पाप नहीं होता। किसी किसी का स्वभाव चन्द्रकांत मणि की तरह होता है, कोई गुलाब के फूल की तरह होता है और कोई कमल के फूल की तरह।

३

"संसार में न निर्धन सुखी है, न धनवान। सुखी वह है जो हर हाल में खुश रहता है। चाहे कोई कितना भी मालदार हो अगर वह मन का कंगाल है तो वह अपने और दूसरों के लिए भार है। धन तो दान, भोग अथवा नाश होने के लिए है। जो धन दान और भोग के काम नहीं आता वह नाश को प्राप्त होता है। क्या धन इसलिए है कि हम उस पर नाग की तरह कुंडली मारकर बैठ जायें! क्या धन इसलिए है कि दूसरों के उपयोग में व्यय न करें! क्या धन इसलिए है कि हम उसे अपने सुखों में न लगायें! धन जोड़ने के लिए नहीं, जीवन के लिए सही सही उपयोग का साधन है, सुखों का माध्यम है।

"लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि जिसके पास पैसा नहीं उसे समाज में सम्मान से जीने का ही अधिकार नहीं। मानवता के नाते संसार में सब समान हैं। धरती और आकाश सबके माता पिता हैं। आज मेरे पास पैसा नहीं है तो किसी को मुझे छोटा समझने का क्या अधिकार है? मैं किसी से छोटा नहीं, जब मेरा चरित्र बड़ा है तो मैं बड़ा हूँ। मेरे पास पैसा इसलिए नहीं है कि मैं बेईमानी नहीं करता, किसी को सताता नहीं, किसी का हक नहीं छीनता; झूठ, बेईमानी, अनाचार यह सब मुझसे नहीं होता।"

दीपक ने अपने मित्र अमोलक बाबू से अपने मन की बात कही। पर अमोलक बाबू को दीपक की यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने रईसी

की हँसी में कहा— "पैसा ही सब कुछ है। ईश्वर बाद में, पैसा पहले। साहित्य! साहित्य! साहित्य! एक बेहूदी रट लगा रखी है। क्या रखा है इसमें? मेरे साथ आओ!"

दीपक— "कहाँ?"

अमोलक— "लक्ष्मी के मन्दिर में। छनन! छनन! छनन! अरे पैसे से जो चाहें कर सकते हैं। जिस विद्वान को चाहो नौकर रख सकते हो। जिससे चाहो पैर पुजवा सकते हो। बिना पैसे क्या है? कुछ भी नहीं, कौन पूछता है तुम्हें? मैं जिस कवि को चाहूँ पैसा देकर गाने को बुला सकता हूँ। देखो दोस्त! अगर मेरी मानो तो पहले पैसा पैदा करो, बाद में यह चिल्लाना, साहित्य! साहित्य! साहित्य! काव्य, संगीत, कला सब पैसे के गुलाम हैं। सरस्वती लक्ष्मी की दया चाहती है। कलाकार का मान लक्ष्मी के दान से बढ़ता है। सबके मूल में अर्थ ही विशेष है। अर्थ से ही सिद्धि मिलती है। आओ, बम्बई चलें, वहाँ व्यापार करके बहुत सा धन लायेंगे।"

दीपक— "लेकिन आवश्यकता से अधिक धन संग्रह करके क्या करेंगे? क्या जितना मैं अब खाता हूँ उससे अधिक खा सकूँगा? क्या जितना मैं अब पहनता हूँ उससे अधिक पहन सकूँगा? जो अपनी आवश्यकताओं से अधिक धन जोड़ता है वह समाज पर अभिशाप है। चोर है वह जो दूसरों का भाग खाता है।"

अमोलक— "और मूर्ख है वह जो हँसने वालों के सामने तड़प तड़प कर जीता है। तुम पागल हो दीपक! जो महलों की ऊँचाई छोड़ झोंपड़ी की तपन में जीना चाहते हो। अरे यह ज़िन्दगी खाने, पहनने और मौज उड़ाने के लिये है। दुनिया में आये हो तो दुनिया के आनन्द लो। क्या यह साधुओं वाला रूप बना रखा है। बम्बई चलो मेरे साथ,
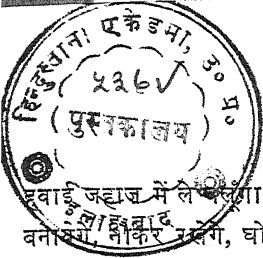
हवाई जहाज में ले चलूँगा। वहाँ कार खरीदेंगे, बहुत बड़ी बड़ी कोठियाँ बनायेंगे, नौकर रखेंगे, घोड़ा-गाड़ी होगी। वह मज़ा आयेगा दीपक बाबू कि कवितायें भूल जाओगे। दुनिया तुम्हारे सामने सिर झुकायेगी, अप्सरायें तुम्हारे चरण छुवेंगी। ज़िन्दगी के लुत्फ़ लेने हैं तो धनवान बनो!"

दीपक— "धनवान बनने की जितनी इच्छा मनुष्य करता है, उससे बहुत कम यदि वह इन्सान बनने की इच्छा करे तो वह अपना और संसार दोनों का भला कर सकता है। मुझे धनवान नहीं, इन्सान बनने की इच्छा है अमोलक बाबू!"

अमोलक— "क्या जो धनवान होते हैं वे इन्सान नहीं होते? इन्सान तो हम सबको भगवान ने ही बनाया है। धनवान होकर कोई हम जानवर नहीं हो जाते।"

दीपक— "धन मनुष्य की बुद्धि हरण कर लेता है, अमोलक बाबू! धन की दमक में मनुष्य जानवर तो नहीं बनता पर स्वयं को साधारण मनुष्य से अलग ज़रूर समझने लगता है। वह समझने लगता है कि मैं बड़ा हूँ। उसके चलने, उठने, बैठने, बोलने में अहंकार आ जाता है।"

अमोलक— "अहंकार क्या धनवान में ही आता है? विद्वान में अहंकार नहीं होता? रूपवती अपने रूप का गर्व करती है, कलाकार को अपनी कला का गर्व होता है और जिसे तुम इन्सान कहते हो, उसे अपनी इन्सानियत का नशा होता है। मनुष्य मद के ही सहारे तो उठता, बैठता और चलता है। व्यर्थ ही लोगों ने धनवानों को बदनाम कर रखा है। मैं कहता हूँ धनवान बनकर तुम सब की सेवा कर सकते हो, स्वयं सुख भोग सकते हो, दूसरों को सुख दे सकते हो। धनाभाव में जीना भी कोई जीवन है। मैं तुमसे ही पूछता हूँ— तुम कवितायें लिखते हो,

कलाकार हो, पर धनवानों की दुनिया में क्या मूल्य है तुम्हारा? वे तुम्हें खरीद सकते हैं। तुम्हें धनवानों की दया चाहिये। बिना उसके तुम्हारे साहित्य में चमक नहीं आ सकती। वह समय गया दीपक बाबू! जब काव्य ताड़-पत्र पर लिखे जाते थे और धनवान विद्वानों की पूजा करने जाते थे। कभी समय था जब धनवान विद्वान के घर जाता था। अब विद्वान धनवान की पूजा करता है। तुम कवि हो, कवि भावुक होता है। सच बताओ, क्या तुम्हारे मन को उस समय दुःख नहीं होता जिस समय कोई धनवान तुम्हें धन की टिटकारी देकर खींच लेता है। धन का आश्रित होता है कवि। भाई मेरे, पेट सभी के पास है। भूख जब सताती है तो साधु भी भिक्षा के लिये हाथ फैला देता है। हाथ फैलाने से अच्छा यह है कि तुम धनवान बनो। मैं यह तो नहीं कहता कि तुम कलाकार न रहो, पर यह मान लो कि कलाकार का मूल्यांकन भी धन ही कराता है।

दीपक— "आप मुझसे मेरे दुःख छीनना चाहते हैं। धन की रोशनी में मेरी कला का मरण चाहते हैं। अमोलक बाबू! कला जब धन के लिये हाथ फैला देती है तो गुलाब के फूल में से दुर्गन्ध उड़ने लगती है। बेले की बहार में मातम झंकृत हो उठता है। चाहे सूखा पड़ जाये पर हंस को गड्ढे का जल प्रिय नहीं होता। धन से मैं सुखी हो सकता हूँ, मेरे भौतिक अभाव नष्ट हो सकते हैं, पर जिस दिन सूर्य ताप में जीना छोड़ देगा, धरती पर अँधेरा छा जायेगा। जिस दिन दीपक के जलने में स्वाद नहीं होगा, उस दिन विषाद का राज्य होगा। मेरा काव्य मेरे दर्द का दीपक है। यदि मैं धन के मोह में फँस गया तो काव्य का आनन्द चला जायेगा।"

अमोलक— "जान पड़ता है तुम कुछ बँधे हुए विचारों में ही कूप-मंडूक की तरह घूम रहे हो। याद रखो, धनाभाव में तुम्हारी कला घुट

घुट कर मर जायेगी। तुम्हारे श्वासों से लोगों को दुर्गन्ध का अनुभव होगा। तुम्हारे प्राण छटपटायेंगे। जिन आदर्शों पर आज तुम गर्व कर रहे हो वे टिकने वाले नहीं हैं। समय के साथ यदि कलाकार ने करवट न ली तो उसे पछताना पड़ेगा। साहित्य-सृजन सिर्फ साधना ही नहीं चाहता, प्रचार और प्रसार भी चाहता है। मेरा तो विश्वास बन गया है कि आज की दुनिया में धन के बिना कहीं भी सफलता नहीं है। तुम्हारे आदर्शों से यह दुनिया शीघ्र ही बदलने वाली नहीं है। तुम चाहे जितना गाना पर तुम्हारे कंठ की आवाज़ तुम्हारे कमरे तक गूँज कर ही वापिस आ जायेगी।"

दीपक— "आपत्ति में ही आदर्शों की परीक्षा होती है। जो घबरा कर सिद्धान्तों से विचलित हो जाते हैं उन पर मैं गर्व नहीं कर सकता। परेशानियों का डर दिखा कर मुझे माया के मोह में न डालो। पैसे के हाथ में बिकने वाले कलाकार चाहे क्षणिक आनन्द भोग लें पर स्थायी यश और आनन्द सच्ची साधना में ही है। सरस्वती की पूजा के लिये धन नहीं, आरती के स्वर चाहियें। धन संग्रह करने वाले उपासना से हटने लगते हैं। अपना तो सिद्धान्त है जिसने दिया है तन को, वही देगा कफन को। भाई मेरे, अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।"

अमोलक ने दीपक की हँसी उड़ाते हुए कहा— "जियो जवान, अभी ज़िन्दगी में बहुत कदम रखने हैं। जिसके पास पैसा नहीं उसकी ज़िन्दगी ठोकर में पड़े भिखारी से भी तुच्छ है। मुझे क्या पड़ी थी जो तुम्हारे साथ अपनी खोपड़ी खपाता। न जाने क्यों तुम्हारे लिये कोमल भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। आदर्श कहने के लिये बहुत अच्छे होते हैं पर जब संसार में चलते हुए तुम्हारे आदर्श दुतकारे जायेंगे, तब तुम्हारी आँखें खुलेंगी। अच्छा दोस्त, हम तो कल बम्बई जायेंगे। आज आज तुम्हारे साथ और हैं।"

अमोलक की बम्बई जाने की बात सुन दीपक की आँखें कुछ गीली हो गईं, मानो उसे अमोलक बाबू के जाने की सूचना से दुःख हुआ। उसने कुछ रुँधे कंठ से कहा— "तो क्या आप कल बम्बई चले ही जायेगें ?"

अमोलक— "हाँ दीपक, मैं कल बम्बई जाऊँगा। यहाँ पड़े पड़े भी कोई जीवन है ? वहाँ जाकर मैं बड़ा आदमी बनूँगा।"

दीपक— "यहाँ भी तो आप बड़े ही आदमी हैं। क्या कमी है आपको यहाँ ? भगवान की दी हुई कोठी है, चार पैसे हैं पास, दस आदमी सम्मान करते हैं, और क्या चाहिये आपको ?"

अमोलक— "मुझे इतने में ही सन्तोष नहीं है। मेरे स्वप्न बहुत बड़े हैं, मैं बहुत बड़ा पूँजीपति बनने का इच्छुक हूँ, बम्बई और दिल्ली को ख़रीदना चाहता हूँ।"

दीपक— "आप दिल्ली और बम्बई को देखते हैं, तनिक छोटे छोटे ग्रामों की ओर भी तो देखिये ! बड़े आदमियों के स्वप्न देखते हैं आप, तनिक गरीबों की दुनिया भी तो देखिये ! ख़ैर, जब आपने जाने की ठान ही ली है तो मैं आप को कैसे रोकूँ।"

अमोलक— "क्या देखूँ ग्रामों की ओर ? जैसे बड़ी मछली छोटी मछली निगल जाती है, वैसे ही बम्बई और दिल्ली के आराम-गाहों में फुँकी पड़ी है इनकी दौलत। क्या देखूँ गरीबों की दुनिया ? कोई गरीब गरीब की सेवा क्या करेगा ! हमारे देश में तो सिखाया जाता है रूखी सूखी खाकर ठंडा पानी पी, सन्तोष ! पता नहीं क्या दिया है इन उपदेशों से साधुओं ने जीने वालों को ? मैं तो तुमसे भी कहता हूँ दीपक ! तुम मेरे बचपन के मित्र हो, हम एक साथ खेले हैं, आओ अब खिलें भी एक साथ, चलो बम्बई चलो ! वहाँ तुम्हारी कला को चार चाँद लग जायेंगे।"

दीपक ने देखा अमोलक बाबू के कहने में बड़ी सहानुभूति है, बड़ा दर्द है, वे किसी स्वार्थ से मुझे साथ ले जाना नहीं चाहते बल्कि उनको मुझसे कुछ स्वाभाविक मोह है। पर मैं जाऊँ कैसे? मेरी अपनी लाचारी जो है। मैं अमोलक बाबू से कैसे कहूँ कि मैं यहाँ से नहीं जा सकता।

सोचते-सोचते दीपक बाबू ने अमोलक बाबू की ओर भावुकता से देखा और कहा— "जाओ भैया, भगवान तुम्हारी इच्छाएँ पूरी करें! पर बम्बई से यहाँ जल्दी जल्दी आया करना।"

अमोलक— "क्यों नहीं दीपक, मैं आता ही रहूँगा। कोई कहीं भी चला जाये पर उसे अपनी जन्मभूमि की याद तो आती ही है। अब बहुत रात हो गई, तुम भी घर जाओ और मैं भी जाता हूँ। सोना चाहिये न?"

दीपक— "हाँ अमोलक भाई! पर न जाने क्यों मुझे यह पता ही नहीं चलता कि दिन कहाँ चला जाता है और रात कब होती है।"

अमोलक— "मैं कवि नहीं हूँ दीपक भाई! मुझे दिन का भी होश है और रात का भी।"

दीपक— "और एक हम हैं जिसको अपना भी होश नहीं।"

अमोलक— "अपना होश नहीं है तो क्या हुआ। दुनिया का होश तो दीपक को बहुत है। सारे संसार की समस्यायें सुलझाने के ठेकेदार तुम ही तो हो, सारे दुखियों का बोझ उठाने का उत्तरदायित्व तुमने ही तो लिया है। अच्छा प्यारे, अब राम राम! कल मिलेंगे और फिर शाम को बम्बई मेल में सवार हो जायेंगे।"

बड़े मैदान की सूखी घास पर बैठे हुए दोनों मित्र उठे। कुछ दूर तक साथ साथ चले और फिर अमोलक बाबू ने अपने घर की राह पकड़ी और दीपक चौराहा पार कर एक ओर सड़क पर आ गये। उनके मन और मस्तिष्क में संघर्ष छिड़ा हुआ था। भावुकता भी कैसी विचित्र

है ! दीपक सोच रहे थे, "कल अमोलक बाबू चले जायेंगे। वे मुझे साथ ले चलने का आग्रह कर रहे हैं पर मैं देवकी देवी को छोड़कर कैसे जाऊँ ? उनको छोड़ना मेरे लिये असम्भव है। देखिये उनसे कहूँगा, यदि वे बम्बई चलने को तैयार हो गईं तो बम्बई ही चले चलेंगे। यहीं क्या रखा है ? पर वे राजी नहीं होंगी और वे राजी नहीं होंगी तो मैं बम्बई नहीं जाऊँगा। देवकी देवी को छोड़कर कहीं भी जाना मानवता के विरुद्ध है। वे मेरी जननी नहीं पर माँ तो हैं। कितने दुःख उठाती हैं मेरे लिये। समाज का कितना ज़हर पिया है उन्होंने। वे सुख की साथी नहीं, दुःख की साथी हैं। धीरज, धर्म और मित्र की परख आपत्ति काल में ही तो होती है। कैसा कठोर समय था वह। एक ओर सारी दुनिया थी और एक ओर वे अकेली। उनका चलना, फिरना, उठना, बैठना, खाना, पीना सब मुश्किल कर दिया था। फिर भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा, प्रीति की रीति नहीं तोड़ी।

"और हाँ, देवकी देवी चलने को तैयार भी हो गईं तो क्या मेरे लिये जाना सरल होगा ? मैं तो फँसा पड़ा हूँ। परिवार की समस्यायें, आर्थिक कष्ट, प्रकृति का विद्रोह, एक नहीं अनेक झंझट, पता नहीं हमारे देश के रहन सहन में कब परिवर्तन आयेगा। यहाँ मनुष्य जीना चाहता है पर सड़ सड़ कर। कितना दरिद्र जीवन है हमारे परिवारों का, कितने रूढ़िवादी हैं हमारे यहाँ के लोग ! विचित्र तंगदिली हैं यहाँ। आश्चर्य तो यह है कि इस कर्मभूमि पर मानव अकर्मण्य होकर क्यों जीना चाहता है ? इस धर्मप्रधान देश में अधर्म क्यों होते हैं ? एक दूसरे को खाये जाता है यहाँ। कोई किसी को सुखी नहीं देख सकता। दूसरे को दुखी करने को मनुष्य लाख लाख दुःख उठाता है। मैं भी कैसा विचित्र व्यक्ति हूँ ! कोई भी स्थिति होती है दार्शनिक काव्य करने लगता हूँ। जैसा संसार मैं चाहता हूँ वैसा संसार क्या सम्भव है ? मानवता मात्र के

माध्यम से क्या मानव जाति का संचालन हो सकता है ? ईर्ष्या, द्वेष और स्वार्थ की भयानक आग में जीवन धधक रहा है। अन्तर दाह में मानव का अमृत भस्म हो रहा है। प्रेम छल मात्र बनता जा रहा है। नाते, रिश्ते स्वार्थों से भर गये हैं। किसी के मन में किसी के लिये सहानुभूति नहीं है। कोई किसी को देखकर खुश नहीं होता। फिर ऐसी दुनिया में क्या रखा है ? चारों ओर से पैसा ! पैसा ! पैसा ! तो क्या पैसा ही संसार में सब कुछ है ? अमोलक बाबू ठीक कहते हैं, पैसे का मूल्य मनुष्य से बड़ा है। कौन है वह जो धन के चरणों में नमस्कार नहीं करता ? आग लगे ऐसे जीवन में जो पतन की पराकाष्ठा पर आनन्द करता है। आनन्द तो वह है जो खिल खिल कर सुगन्ध दे। जिसके मन में दुर्गन्ध है और अधरों पर मुस्कान, वह उद्यान में अशोभनीय है। मानव का जीवन गुलाब के फूल की तरह होना चाहिये, जो काँटों में खिले, सुगन्ध उड़ाये और अर्चन बनकर देवता के चरणों में चढ़ जाये।

"मैं भी क्या क्या सोचता रहता हूँ! अब बहुत देर हो गई। घर जाऊँ या देवकी देवी के घर होकर घर जाऊँ ? रात तो काफी हो गई है। फिर भी मुझे पहले देवकीदेवी के घर ही चलना चाहिये। वे प्रतीक्षा कर रही होंगी। मैं नहीं गया तो वे सोयेंगी नहीं। हो सकता है दरवाज़ा भी खुला पड़ा रह जाये।"

दीपक ने जल्दी जल्दी पग बढ़ाये। देवकीदेवी का घर बहुत दूर नहीं था। चार पाँच मिनट में ही दीपक वहाँ पहुँच गये। दरवाज़ा खुला पड़ा था। देवकी देवी खिड़की में से सड़क की तरफ झाँक रही थीं। दीपक कुछ कहे, इससे पहले ही देवकी देवी ने कहा— "बड़ी देर तक इधर उधर घूमते रहते हो। दरवाजा खुला पड़ा रहता है। किसी दिन कोई आकर सब खत्म कर जायेगा, हमें भी क़त्ल कर देगा और फिर देखते ही रह जाओगे।"

दीपक ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया— "किसकी ताकत है जो मेरे होते आपकी ओर आँख भी उठा सके। किसी ने भी कुछ कहा तो उसकी खैर नहीं।"

देवकी— "बाद में कुछ भी करते रहना। हमारे मरने के बाद चाहे तुम उसे फाँसी पर भी चढ़वा देना। पर इससे क्या होगा?"

दीपक— "ऐसे अनिष्ट की कल्पना ही क्यों करती हैं आप? किसी को भी अशुभ कल्पनायें नहीं करनी चाहियें। जो खतरों से भयभीत रहते हैं, खतरे उन्हें दबा ही डालते हैं। भय मानव का दौर्बल्य है। हमने क्या किसी का बुरा किया है जो हमारा अनिष्ट होगा?"

देवकी— "जो किसी का बुरा नहीं करते, क्या उनका अनिष्ट करने वाले संसार में नहीं हैं? यह संसार है। इसमें भले को अधिक सताया जाता है। देखो दीपक, सीधे चन्द्रमा को राहू ग्रस लेता है, टेढ़े से सभी को शंका रहती है। वक्र चन्द्रमा को राहू नहीं ग्रसता। मैं ठहरी नारी, वह भी वृद्ध और असहाय। मुझे किसका सहारा है? अपने नहीं हैं, तभी तो परायों की ओर देखती हूँ।"

देवकी देवी ने कुछ ऐसे ढंग से कहा कि दीपक की आँखें छलछला आईं। उसने भावुक होकर कहा— "ऐसा क्यों कहती हैं आप? सम्बन्ध तो मन का होता है, जो जिसको अपना मान ले वह उसका है। आप हमारे लिये सभी अपनों से अधिक हैं। क्या मैं आपके बिना स्वयं को निराश्रित नहीं मानता! आप जननी नहीं हैं तो माँ तो हैं ही।"

देवकी— "पर मन की क्या कीमत होती है! कौन किसके मन को महत्व देता है! यह माना कि मन का सम्बन्ध न हो तो सम्बन्ध अस्तित्व-हीन है, लेकिन समाज और कानून तो मन के अधिकार को तोड़ फोड़ डालते हैं।"

दीपक— "तो इससे क्या होता है? किसी के तोड़ने फोड़ने से प्यार का कल्पवृक्ष नहीं टूटा करता। प्रेम के अतिरिक्त सारे सम्बन्ध जाल हैं। आप स्नेह का जितना अमृत मुझे देती हैं वह मेरे जन्म जन्म के पुण्यों का फल है।"

देवकी— "पर कौन मानता है इसे! किसको अच्छा लगता है मेरा प्रेम!"

दीपक— "क्या आप नहीं जानतीं कि प्रेम की धार तलवार की धार की तरह होती है। उस पर चलने वाले बिरले ही होते हैं। पर जो उस पर चलते हैं, उनसे अमृत की उत्पत्ति होती है।"

देवकी— "पता नहीं क्या क्या कहते रहते हो! घर जाओगे या हो आये?"

दीपक— "अब इतनी देर हो गई। जाने का समय कहाँ रहा है, कल चला जाऊँगा।"

देवकी— "अच्छा, खूब घूमो इधर उधर। न यहाँ रहते हो, न घर। घरवाले मुझे ही दोषी समझते होंगे।"

दीपक— "किसी के समझने से किसी को परेशान नहीं होना चाहिये। मैं समझता हूँ शायद कोई किसी को नहीं पहचानता। मुझे इसकी चिन्ता भी नहीं है कि कोई हमें क्या समझता है। मैं समझता हूँ कि मनुष्य को स्वयं अपने आप को पहचानना चाहिये। किसी के कहने सुनने से जो रास्ते बदल देते हैं वे मोम के पुतले होते हैं। मैं अपने को और आपको खूब पहचानता हूँ।"

देवकी देवी ने दीपक को भावुक होकर देखा। फिर नीरजा को आवाज़ देती हुई बोलीं— "अरी सोती ही रहेगी क्या? उठ, दूध गरम कर।"

एक दो बार देवकी देवी के उठाने से नीरजा उठी, आग सुलगाकर दूध गर्म किया।

यद्यपि दीपक बाबू सारा दिन मानसिक व्यायाम में व्यस्त रहे थे फिर भी पेट में चूहे तो कूद ही रहे थे। पेट की माँग भी कैसी बलवान होती है! यहाँ सारी आध्यात्मिकता और दर्शन व्यर्थ है। दूध आते ही दीपक बाबू ने पी लिया और फिर कुछ करुणार्द्र होकर कहने लगे—"कितनी चिन्ता और परेशानी रहती है आपको मेरे कारण!"

देवकी— "प्रीत की रीति ही ऐसी है। कोई किसी से प्रेम करे तो उसके निभाने में ही स्वाद है।"

दीपक— "क्यों है आपको मुझसे प्रेम?"

देवकी— "इसका उत्तर मैंने बहुत बार सोचा पर कोई परिणाम न निकला। शायद यह कोई नहीं बता सकता कि किसी को किसी से प्यार क्यों है।"

दीपक— "मैं जब अपने मन को देखता हूँ तो मुझे भी उसमें आपके शब्दों की तस्वीर दीखती है। पर जब दुनिया को देखता हूँ तो जान पड़ता है कि वहाँ स्वार्थ का नाम प्यार है।"

देवकी— "पर मुझे अपने और पराये में कोई भेद नहीं दीखता। स्वार्थ स्वार्थ है और प्यार प्यार। प्यार पवित्र आनन्द है। स्वार्थ क्या है यह मैं नहीं समझती। अच्छा, अब आराम करो।"

दीपक— "पता नहीं क्यों मानसिक व्यायाम से छुट्टी नहीं मिलती, आराम तो तब हो जब दिमागी उधेड़बुन से फुर्सत हो।"

देवकी— "यह सब आपके खाली रहने के कारण है। अच्छा यह है कि किसी कॉलिज में पढ़ाने लगो।"

दीपक— "कॉलिज में पढ़ाने की मुझ में योग्यता कहाँ है! वहाँ पढ़ाने के लिये तो डिग्रियाँ चाहियें और मैं ठहरा बेपढ़ा। कॉलिज में पढ़ने वाले ही कॉलिज में पढ़ाते हैं।"

देवकी— "तो क्या तुम पढ़ाने में असमर्थ हो?"

दीपक— "समर्थ होना एक अलग बात है और प्रमाणपत्रों का होना एक अलग महत्व रखता है। पढ़ाने में मैं स्वयं को असमर्थ तो नहीं मानता, पर जब तक मेरे पास विश्वविद्यालय की कोई योग्यता न हो तब तक वहाँ मेरे लिये कोई गुंजाइश नहीं।"

देवकी— "तो अब तक तुमने योग्यता प्राप्त क्यों नहीं की? एक वर्ष में एम. ए. पास कर लो।"

दीपक— "मेरा डिग्री प्राप्त करने के लिये पढ़ने में कभी विश्वास नहीं रहा और जब मेरे विश्वास का कोई मूल्य नहीं था तब किसी ने मुझे पढ़ाने के बारे में नहीं सोचा। हाँ, अब धनवान बनने का एक अवसर मिल रहा है। अमलोक बाबू धनवान बनाने के लिये मुझे बम्बई ले जाना चाहते हैं। चला जाऊँ?"

देवकी— "जैसी इच्छा।"

दीपक— "तुम भी चलोगी?"

देवकी— "नहीं।"

दीपक— "तो मैं कैसे जाऊँगा? तुम्हारे बिना मैं नहीं जा सकता।"

देवकी— "तो मत जाओ।"

दीपक— "अभी अभी तो आप कह रही थीं कि कोई धंधा कर लो न। जीवन के लिये धन भी तो आवश्यक है।"

देवकी— "क्यों, क्या पैसे की बहुत इच्छा होने लगी है?"

दीपक— "कुछ ऐसा तो महसूस होता है कि पैसा मनुष्य से अधिक मूल्यवान है।"

देवकी— "तो फिर जाओ बम्बई।"

दीपक— "लेकिन आप भी चलें तभी तो।"

देवकी— "मैं तो अपना घर छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगी।"

दीपक— "यहाँ क्या धरा है! चारों ओर की जलती हुई आँखें, प्रत्येक के कुविचार। क्या यहाँ रहते रहते आप ऊबी नहीं?"

देवकी— "नहीं, मुझे यहाँ की मिट्टी से मोह है। इन दीवारों में मुझे शान्ति मिलती है। और कुछ नहीं तो अपने घर में धीरज से चुपचाप रो तो सकती हूँ।"

दीपक— "अच्छा, तो फिर मैं नहीं जाता।"

देवकी— "क्यों नहीं जाते, चले जाओ। वहाँ से पैसा लाओगे न, फिर तुमसे सब खुश हो जायेंगे।"

दीपक— "जाऊँ तो आपको किस पर छोड़ूँ?"

देवकी— "हमें किस पर छोड़ते! यहाँ हमें कोई डर नहीं है।"

दीपक— "आपको डर नहीं, मुझे तो डर है। चाहे मैं दुनिया से कुछ अलग तरीके का हूँ, पर दुनिया को कुछ कुछ पहचान भी लेता हूँ। आपको और नीरजा को अकेला छोड़ना खतरनाक है।"

देवकी— "क्या खतरा है यहाँ? दिन भर बाज़ार खुला रहता है। रात को साँकल बन्द कर सो जाया करेंगे।"

दीपक— "बहुत से दोस्त भी दुश्मन होते हैं। अब तो सब जानते हैं कि दीपक यहाँ रहता है। जब वे दीपक की ओर से निश्चिन्त हो जायेंगे तो शर्बत में ज़हर मिलाकर भी दे सकते हैं।"

देवकी— "मरना तो एक ही दिन है। हमारे मरने से दुनिया की रौनक कम नहीं हो जायेगी।"

दीपक— "यह बात नहीं है। प्रत्येक की मृत्यु किसी न किसी के लिये जीवन भर के लिये दुःख छोड़ जाती है। और फिर मृत्यु के अतिरिक्त भी तो सैंकड़ों तरह की आपत्तियाँ आ सकती हैं।"

देवकी— "मैं स्त्री होकर आपत्तियों से नहीं डरती। तुम आपत्तियों की कल्पना करते डरते हो, मर्द होकर डरते हो?"

दीपक— "आप कुछ भी कहें, मैं बम्बई नहीं जाऊँगा।"

और भी बहुत सी बातें देवकी और दीपक काफी रात तक करते रहे। बातें करते ही करते वे सो गये। सुबह पाँच बजे देवकी देवी उठ बैठीं।

थोड़ी देर गायत्री मन्त्र का जाप किया, फिर घर में बुहारी लगाई। इधर उधर फैली हुई चीज़ें ठीक ठीक रखीं। छः बजे के करीब नीरजा को झंझोड़ कर उठाती हुई बोलीं— "उठ, छः बज गये हैं। चुपचाप उठ, खुड़का मत करियो। मैंने अन्दर के कमरे का दरवाज़ा बन्द कर दिया है। दीपक बहुत देर से सोया है, कहीं आँख न खुल जाये। वह उठे तब तक तू आँच सुलगा कर थोड़ा सा हलवा बना ले। आलू रखे हैं, पकौड़ी भी बना लेना।"

यद्यपि सुबह की ठंडी हवा में नीरजा को नींद ने मजबूर कर रखा था, पर देवकी देवी के डर से वह कुछ मुँह सिकोड़ती हुई उठी। उठ कर आध घंटा तो उसने शौच आदि से निवृत्त होने में लगाया, फिर मुँह धोने पर उसकी नींद भागी।

तब तक देवकी देवी आग सुलगा चुकी थीं। आलू काट लिये थे। बेसन घोल कर तैयार कर लिया था।

सात बजे के घंटे बोले, दीपक चौंक कर उठे। उठते ही उन्होंने कहा— "अमोलक बाबू आज बम्बई जा रहे हैं। यहाँ से दस बजे वाली बस से सवार होंगे। दिल्ली से हवाई जहाज में जायेंगे। मुझे जल्दी ही उनके यहाँ जाना है। उठने में देर हो गई।"

देवकी देवी ने छोटी कढ़ाई अँगीठी पर रखते हुए कहा— "तुम्हारे निमटने की देर है, मेरे पास सब सामान तैयार है।"

"मैं अभी निमटा," कहते हुए दीपक जल्दी जल्दी शौच आदि से निवृत्त हुए। स्नान किया। शीघ्रता से पूजा का लघु संस्करण सम्पन्न कर कुर्सी पर आ बैठे।

देवकी देवी हलवा, पकौड़ी और चाय तैयार कर चुकी थीं। नीरजा ने प्लेटों में नाश्ता लगा दिया था। जैसे ही वे दीपक बाबू के लिये प्लेट लेकर चलीं वैसे ही किवाड़ों में थप थप की आवाज़ के साथ अमोलक बाबू ने दीपक को आवाज़ दी।

दीपक "आया अमोलक बाबू!" कहते हुए द्वार पर आये, दरवाज़ा खोला। सामना होते ही अमोलक बाबू ने कहा— "आज भी इतनी देर कर दी मित्र! मैं तो रात भर तुम्हें याद करता रहा, कई बार तुम्हारे यहाँ आने को पैर उठे पर संकोच कर गया। यह भी सोचा इतनी रात गये क्यों तकलीफ़ दी। सोचता था सुबह तो तुम आ ही लोगे। जब नहीं आये तो मैं आया। आज आज का यहाँ तुम्हारा साथ है। अकेला नाश्ता कैसे करता। खाना भी आज साथ ही खायेंगे। चलो।"

अमोलक यह दरवाज़े पर खड़े खड़े ही कह गये। दीपक ने उनके गले में हाथ डाल अन्दर की ओर खींचते हुए कहा— "स्वप्न तो मैं भी रात भर तुम्हारे ही देखता रहा, पर नींद ऐसी थपकियाँ देती है कि दुखी से दुःखी भी सो ही जाता है। और फिर अपने जीवन में नींद ही तो

एक सुख है। सच अमोलक बाबू। सोने में बड़ा आनन्द आता है। सचमुच सोने में ही सुख है। किसी ने ठीक ही कहा है "आराम बड़ी चीज़ है मुँह ढक के सोइये।"

अमोलक बात काटते हुए बोले— "पर तुम तो कवि हो भाई! सोने का मज़ा या तो राजा का पूत लेता है या कोई फक्कड़। कवि के लिये तो कहा जा सकता है—

मुर्दों को याद कीजिये, मरघट में रोइये।
चढ़ जाइये आकाश में, कविता में खोइये॥

कहिये रात किस की याद में रोये।"

दीपक— "अरे ये कविता की बातें हैं अमोलक भाई! तुम्हें इन सबसे क्या मतलब! तुम तो हाय माया, हाय धन के चक्कर में पड़े रहते हो।"

अमोलक— "भई, बात यह है तुम भी ठीक हो और हम भी ठीक हैं। दुनिया में हर आदमी चक्कर में है। किसी को यश का चक्कर है, किसी को धन का। कोई अपने चक्कर में है, कोई पराये चक्कर में। कोई पैसा जोड़ने के चक्कर में है, कोई खर्च करने के चक्कर में। पर यार, इन सब चक्करों में एक चक्कर बड़ा भयानक है और वह है इश्क का चक्कर। इस प्रेम के चक्कर में आदमी पागल हो जाता है। ज़रूर कोई जादू है इसमें। हम जैसे समझदार पर भी इसका नशा छा जाता है। भला रात भर तुम्हारी मोहब्बत में नींद हराम करते रहे।"

दीपक— "अब कहिये कौन रोया रात भर— तुम या मैं?"

इनकी चोंच और भी चलती रहती पर देवकी देवी ने ज़रा ज़ोर से कहा— "बात पीछे भी हो जायेंगी। नाश्ता ठंडा हो रहा है।"

अमोलक बाबू तो दीपक को नाश्ते के लिये ही बुलाने आये थे।

उन्होंने देवकी देवी से नाश्ते की बात सुन कहा— "नाश्ता तो आज दीपक बाबू को मेरे साथ करना था।"

देवकी— "हाँ, हाँ, आपके साथ ही तो नाश्ता करेंगे।"

अमोलक— "मैं तो वहाँ घर के लिये बुलाने आया था।"

देवकी— "यहाँ वहाँ कोई दो थोड़े ही हैं।"

और फिर दीपक ने भी अमोलक बाबू को नाश्ते के लिये आग्रह-पूर्वक साथ बैठा लिया।

यद्यपि मेज़ पर प्लेट पहले लग गई थीं। पर देवकी देवी ने वे प्लेटें हटवा कर गर्म पकौड़ी और हलवे की दूसरी प्लेटें रखवा दीं। दीपक और अमोलक नाश्ता करते जाते थे और साथ साथ बात भी। पर देवकी देवी को प्रेम से नाश्ता कराने के अतिरिक्त और कुछ भी ध्यान नहीं था। आग्रहपूर्वक वे खिलाये चली जा रही थीं। नाश्ते की चीज़ें बड़ी स्वादिष्ट थीं। लेकिन उससे भी अधिक स्वाद मित्रता और प्रेम का था। देवकी देवी के वात्सल्य का था।

अमोलक बाबू ने खाने के लिये पकौड़ी उठाते हुए कहा— "भई, इनमें तो बड़ा रस है। ऐसे तो मुझे कभी मेरी माँ ने भी नहीं खिलाया।"

दीपक— "इनमें प्रेम ही नहीं और भी बहुत सी खूबियाँ हैं। मैं तो जितना इनके साथ घुलता जा रहा हूँ उतना ही अमृत पाता जाता हूँ।"

नाश्ता समाप्त कर दोनों मित्र उठे। अमोलक बाबू ने देवकी देवी से कहा— "बड़ा रस मिला आपके हाथ के नाश्ते में। अब आज बम्बई जाऊँगा, नहीं तो रोज़ आपको नाश्ते की तकलीफ़ देता।"

दीपक— "देख लो भाई! एक ओर बम्बई की दौलत है और दूसरी ओर देवकी देवी का नाश्ता। तुम बम्बई जाकर दौलत बटोरो,

हम नाश्ते के लिये यहीं रहेंगे।"

अमोलक— "तो मुझे बस स्टैंड तक तो छोड़ने चलोगे ?"

दीपक— "हाँ हाँ, क्यों नहीं, बस स्टैंड तक ही नहीं, हवाई जहाज़ तक चलूँगा। तुम्हें दिल्ली हवाई जहाज़ में बिठाकर आऊँगा।"

कहते हुए उन्होंने देवकी देवी की ओर देखा जैसे कि उनसे जाने की आज्ञा माँगी हो।

देवकी देवी ने कहा— "बड़ी जगह जाकर लोग छोटी जगह वालों को भूल जाते हैं। बम्बई जाकर हमें भूल न जाना भैया!"

अमोलक— "आपको भूलना क्या किसी के वश में है! और फिर दीपक का विछोह तो मुझे हर वक्त खटकेगा। जल्दी जल्दी यहाँ आये विना मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। मैंने तो दीपक से कहा था चलो तुम भी बम्बई चलो।"

देवकी— "मुझसे कहा था दीपक ने। मैंने भी कहा चले जाओ। पर ये कहते हैं तुम भी चलो तो जाऊँ। भैया, मैं तो अपना घर छोड़ कहीं जाऊँगी नहीं। पर यदि कभी मन करा तो घूमने ज़रूर आऊँगी। तुम अपना पता लिख देना।"

अमोलक— "हाँ हाँ, जाते ही लिखूँगा। अब आज्ञा दीजिये।"

देवकी— "अच्छा भैया! जाओ। खूब उन्नति हो, सुखी रहो।"

दीपक— "मैं भी इन्हें ज़रा दिल्ली तक छोड़ आऊँ, कल आऊँगा।"

देवकी— "जाओ, छोड़ आओ। अच्छी तरह जहाज़ में बैठा कर आना।"

दीपक और अमोलक बाबू साथ साथ चल दिये। जैसे ही दीपक

देवकी देवी से पृथक् हुए वैसे ही उनके मन को झटका लगा। पता नहीं क्यों, जब भी दीपक कुछ क्षणों के लिये देवकी देवी से अलग जाते थे तभी उनके मन पर एक असर होता था। सोचने लगते थे, न ही जाऊँ तो अच्छा है।

४

यह दिल्ली है भारत की राजधानी। यही वह केन्द्र है जहाँ हर तरफ का आदमी आता है। अमोलक बाबू के साथ दीपक दिल्ली के बस स्टैंड पर बस से उतरे। उतरते ही दीपक ने खचाखच भरी हुई शोर करती दिल्ली देखी और अमोलक से कहा— "बड़ी भीड़ है यहाँ, रिक्शा, ताँगे, टैक्सी, स्कूटर के मारे नाक में दम है।"

अमोलक ने एक लम्ब्रैटा सवार के पीछे बैठे हुस्न को देखते हुए कहा— "तनिक उधर देख दीपक! सारी थकान उतर जायेगी।"

दीपक ने उधर देखा रूप वास्तव में लाजवाब था। उससे प्रभावित होकर दीपक बोले— "हुस्न कहता है इश्क को होश में रहना चाहिये।"

अमोलक— "पहले वह अपने को तो होश में रखे। देखते नहीं हवा में हुस्न के होश उड़े जा रहे हैं। कभी वह आँचल सम्भालता है, कभी बाल, और कभी धचके से परेशान हो सवार को कस कर पकड़ लेता है।"

दीपक— "जान पड़ता है दिल्ली आते ही मन मचलने लगा।"

अमोलक— "जब चाँद को देख समुद्र में ज्वार उठने लगता है तो रूप को देखकर पुरुष का मन क्यों न उछले?"

दीपक— "अभी तो दिल्ली ही आये हो, बम्बई में क्या हाल होगा! मन सम्हाल कर रखना, कहीं यूँ ही मत लुटा देना। इसे गिरने से रोकना।"

अमोलक— "क्या रोकें दीपक ! एक वह लम्ब्रेटा सवार जा रही थी, दूसरी यह कार चलाती हुई देखो और सामने वह उस चुस्त कौंध की चाल पर नज़र डालो। यह तो परिस्तान जान पड़ता है भाई ! हर तरफ हुस्न ही हुस्न है।"

दीपक— "हुस्न नहीं मिट्टी के खिलौने कहो। जिसे तुम हुस्न कह कर मचल रहे हो, वह बनावटी श्रृंगार है। खो गये इन रंगीन तस्वीरों में। ये रेशमी महीन कपड़े, ये बनी हुई भौंहें, ये कजरारी आँखें, ये सुर्खी लगे गाल, ये लिपिस्टिक पुते ओठ और तरह तरह के जूड़े— जंजीरें हैं इनमें। ये सब बनावटी रूप हैं।"

अमोलक— "तुम भी कवि होकर ये कैसी बातें करते हो ? कौन है वह जो इनके आकर्षणों में बँध नहीं जाता ? चाहे कोई कितना भी सुन्दर हो पर श्रृंगार के विना असुन्दर ही लगता है। रहन सहन की तमीज़ भी एक कला है।"

दीपक— "यह तो ठीक कहते हो। ढंग से न पहनने से कुछ खूबसूरत बदसूरत लगने लगते हैं और ढंग से पहनकर बदसूरत खूबसूरत लगने लगते हैं।"

अमोलक— "फ़ैशन का अर्थ बहुत कीमती कपड़े या बहुमूल्य जेवर पहनना नहीं है। सादगी में भी एक सौन्दर्य है। शिष्टता में भी एक आकर्षण है।"

दीपक— "जान पड़ता है भाषण देने का अभ्यास कर रहे हो। बात असल वही है, सौन्दर्य देखा मन मचल उठा।"

अमोलक— "यह बात सभी पर लागू है दीपक ! कौन है वह जो रूप का निशाना नहीं बनता ? सुन्दरता पर सभी का मन मचलता है। हम हैं मुखर हो जाते हैं, तुम हो कि कविता में कह देते हो। पर प्यारे,

सभी प्रणय के प्यासे हैं। सभी सुन्दरता के लिये छटपटाते हैं।"

दीपक— "तुमने यहाँ तितलियाँ क्या देखीं कि फूलों पर भ्रमर की तरह झूम उठे। लो यह टैक्सी श्रा गई, रोको इसे श्रौर चलो हवाई श्रड्डे।"

श्रमोलक ने हाथ का इशारा किया, टैक्सी रुक गई। ड्राइवर ने दरवाज़ा खोल बाहर श्राकर मीटर डाउन किया। दीपक श्रौर श्रमोलक टैक्सी में बैठ गये। टैक्सी चलदी। रास्ते में भी दीपक श्रौर श्रमोलक बातें करते जाते थे। बातों का भी कुछ ऐसा सिलसिला है कि खत्म ही नहीं होता। बात में से बात निकलती चली श्राती है। श्रमोलक बाबू को यद्यपि बम्बई जाने का बड़ा उत्साह था पर श्रकेले जाना उनको श्रखर सा रहा था।

उन्होंने कहा— "चलो दीपक तुम भी बम्बई चलो न, श्रकेले जाना श्रच्छा नहीं लग रहा।"

दीपक— "श्रकेले में जो श्रानन्द है, दुकेले में वह कहाँ? श्रौर भैया जब तक साथ है तब तक श्रच्छा बुरा लग रहा है, बम्बई जा रहे हो वहाँ बहुत से मित्र मिलेंगे, बहुत से साथी होंगे, एक से एक श्राकर्षण होंगे। सब कुछ भूल जाश्रोगे कुछ दिनों में। वहाँ तुम्हारी एक नई दुनिया होगी नई दुनिया। हीरे जवाहरातों की दुनिया। श्रायेंगे तुम्हारा वह संसार देखने।"

टैक्सी एरोड्रोम पर श्रा गई। हवाई जहाज़ के छूटने में दस मिनट बाकी थे। दीपक श्रौर श्रमोलक हवाई जहाज़ के निकट श्रा गये। दीपक ने श्रमोलक को ऐसे देखा जैसे शाम सूरज को देखती है। हवाई जहाज़ पर चढ़ने से पहले दीपक ने श्रमोलक का श्रालिंगन किया। एक ने दूसरे को प्रेमाश्रुश्रों से प्लावित किया। बार बार कहा— "पत्र डालते रहना,

कुशलता का समाचार बराबर देते रहना, अपने शुभ सन्देशों से प्रसन्न करते रहना।"

प्रेमालिंगन समाप्त नहीं हो रहा था। उधर आवाज़ लगी— 'जहाज़ छूटने वाला है, सीट नं० ११ की सवारी अमोलक बाबू फौरन आकर बैठें।' दीपक ने कहा— "यान छूटने वाला है, आप बैठिये।"

यद्यपि एक दूसरे को छोड़ नहीं पा रहे थे, पर छोड़ना ही पड़ा। अमोलक बाबू हवाई जहाज़ में जा बैठे। पर जब तक देख पाये एक दूसरे को देखते रहे। देखते ही देखते यान हवा में उड़ चला। उसे आँखों से ओझल होने में बहुत देर नहीं लगी।

जब यान दिखाई नहीं दिया तो दीपक खोये से खड़े रह गये। उस भरी दिल्ली में उनको ऐसा लगा जैसे वे जंगल में खड़े हों। थोड़ी देर खड़े ही रहे। आखिर कब तक खड़े रहते। वापिस मुड़े। हवाई अड्डे से बाहर आये। विकल्प करने लगे— "टैक्सी में चलूँ या बस में? टैक्सी में स्टेशन पर पहुँचते पहुँचते पाँच छः रुपये लगेंगे। बस में सिर्फ पैंतीस पैसों में पहुँच जाऊँगा। पर अमोलक बाबू कह गये हैं टैक्सी में ही जाना। मेरे बहुत मना करने पर भी वे मुझे सौ रुपये का नोट दे गये। सचमुच वे बड़े अच्छे मित्र हैं। तो क्या ये सौ रुपये मुझे दिल्ली में ही खर्च करने चाहियें? नहीं, मेरे लिये सौ रुपये बहुत कीमत रखते हैं। फिज़ूल खर्च अमीरों को शोभा देता है। मैं तो कलम का मज़दूर हूँ, सरस्वती का उपासक हूँ। जाने क्यों सरस्वती और लक्ष्मी का वैर रहता है?

"पर दोस्त, दिल्ली क्या रोज़ आते हो! चलो टैक्सी में ही चलें। या स्कूटर ही ले लूँ।" पर उस समय न सामने कोई टैक्सी थी, न स्कूटर। दीपक बस स्टैंड पर खड़े हो गये। बस स्टैंड पर भी उस समय बस की प्रतीक्षा के लिये कोई सवारी नहीं थी। दीपक बाबू को बस स्टैंड पर

बहुत देर अकेले नहीं खड़े रहना पड़ा। बस के लिये एक कोई बीस-बाईस वर्ष की नवयुवती भी वहाँ आ गई। बसें स्टैंड से कई गुज़रीं, किन्तु न तो जिस नं० में दीपक को जाना था वह आई और न जिस नम्बर से नवयुवती को जाना था वह बस ही आई।

थोड़ी ही देर में बौछारें पड़ने लगीं। देखते ही देखते घटायें तेज़ी से घिर आईं, बिजलियाँ कड़कने लगीं। दीपक ने नवयुवती की ओर देखते हुए कहा— "वर्षा ज़ोर की होने वाली मालूम होती है। २८ नम्बर बस अभी तक नहीं आई।"

नवयुवती— "हाँ, मैं भी उसी बस की इन्तज़ार में हूँ।"

दीपक— "क्या आप भी स्टेशन जायेंगी?"

नवयुवती— "हाँ।"

दीपक— "मुझे भी स्टेशन ही जाना है। आइये, टैक्सी ले लें।"

नवयुवती— "नहीं। पाँच छः रुपये लगेंगे।"

दीपक— "कोई बात नहीं। मैं तो टैक्सी लेने की सोच ही रहा था, आपको भी लेता चलूँगा।"

नवयुवती— "बेकार पाँच छः रुपये खराब करने से क्या लाभ! बस आती ही होगी।"

इतनी ही देर में वर्षा तेज़ होने लगी। यद्यपि दोनों बस स्टैंड पर साये में बचे हुए थे, पर बौछारें वहाँ भी पीछा नहीं छोड़ रही थीं। एक दो बसें २८ नम्बर आईं भी, पर बिल्कुल भरी हुई थीं। सर्र से निकल गईं।

नवयुवती ने कहा— "जो भी बस आ रही है, फुल आ रही है। चलिये स्कूटर ही ले लीजिये, हाफ़ हाफ़ कर लेंगे।"

इतनी ही देर में सामने एक खाली स्कूटर दिखाई दिया। दीपक ने हाथ के इशारे से उसे बुलाया। दीपक और नवयुवती उसमें बैठ गये। महीना सितम्बर का था। शीत की फुरहरी शुरू हो गई थी और फिर वर्षा। दोनों के कपड़े भी कुछ गीले हो गये थे। दीपक के पास एक पतली सी चादर थी। वह दोहरी कर उसने अपने और नवयुवती के घुटनों पर डालते हुए कहा— "मौसम बड़ा खराब हो गया है।"

नवयुवती चादर घुटने से हटाती हुई बोली— "जी, हाँ।"

दीपक ने चादर फिर घुटने पर डालते हुए कहा— "रहने दीजिये। बौछारों से कुछ तो बचत होगी।"

इस बार नवयुवती ने जैसे ही घुटने की ओर चादर हटाने को हाथ बढ़ाया वैसे ही दीपक ने हाथ पकड़कर सीट पर रखते हुए कहा— "आप संकोच क्यों करती हैं?"

नवयुवती मजबूर हो गई। उसका हाथ अभी भी दीपक के हाथ के नीचे था। पल दो पल हाथ हटाने का यत्न बेकार जाने पर उसमें हाथ हटाने की शक्ति न रही, जैसे किसी अपरिचित ताकत ने उसे लाचार कर दिया।

न जाने कौन सी शक्ति एक को दूसरे की ओर खींचने लगी। धीरे धीरे दूरी कम होने लगी। स्कूटर के दोनों सिरे खाली हो गये, बीच में दोनों मिल गये।

दीपक ने धीरे से पूछा— "क्या नाम है तुम्हारा?"

नवयुवती कान के नज़दीक आती हुई बोली— "उर्मिल।"

दीपक— "कहाँ रहती हो?"

उर्मिल ने हाथ दबाते हुए कान में उत्तर दिया— "चुप रहिये, स्कूटर वाले बड़े चालाक होते हैं। चलिये, वोल्गा में बातें करेंगे। मुझे

ठंड भी लग रही है, एक प्याला काफी पीऊँगी।"

दीपक को भी ठंड लग रही थी। उसकी भी चाय पीने की इच्छा थी। उर्मिल का प्रस्ताव उसे पसन्द आया। स्कूटर वाले से कहा—"कनाट प्लेस चलो।"

स्कूटर को कनाट प्लेस पर आते बहुत देर न लगी। दोनों ने सिन्धिया हाउस के पास स्कूटर छोड़ दिया। कनाट प्लेस के बाजार में आ गये। बाजार में कुछ एकान्त पा दीपक ने कहा— "कहाँ रहती हैं आप ?"

उर्मिल— "सफदरजंग एरोड्रोम पर सर्विस करती हूँ।"

दीपक— "रहती कहाँ हैं ?"

उर्मिल— "गाजियाबाद।"

दीपक— "क्या गाजियाबाद की ही रहने वाली हैं ?"

उर्मिल— "नहीं। पंजाब की रहने वाली हूँ, लाहौर की। गाजियाबाद में अपने रिश्तेदार के यहाँ रहती हूँ।"

दीपक— "पाकिस्तान बनने पर आई होंगी यहाँ ?"

उर्मिल— "हाँ, उफ !"

दीपक ने देखा जैसे उसकी आँखों में कुछ पिछला दृश्य घूम गया। उसके चमकते हुए चेहरे पर डर छा गया। पल भर में ही वह उस दृश्य से दूर आ दिल्ली के दृश्यों में आ गई। मुस्कराकर बोली— "आपने लाहौर के घर की याद दिला दी। कहाँ वह घर और कहाँ यह हवाई अड्डे की नौकरी ! बुरा वक्त राजा से भी भिक्षा मँगवा देता है।"

उर्मिल की मुस्कान में भी कुछ गम्भीरता थी। यद्यपि दीपक भी एक गम्भीर शोले थे, पर उस चहल पहल की दिल्ली और वर्षा के संगीत

भरे मौसम में वे उस सुलगते जीवन से दूर रहना चाहते थे। उन्होंने बातचीत का विषय बदला। कनाट प्लेस की बढ़िया बढ़िया दुकानें देखने में मन लगाया। उर्मिल भी दुकानों की चीज़ें बड़े शौक से देखती जाती थी। इन दुकानों की चीजें त्यागियों का भी मन खींचने वाली थीं।

दो दो हज़ार रुपये की शतरंज, हीरे जवाहरातों के जेवर, कीमती साड़ियाँ, कमरा सजाने की एक से एक अमूल्य चीज़ दुकानों में धरी हुई थीं। यही वह बाजार है जहाँ आने वाला जेब खाली कर देता है। यही वह बाज़ार है जहाँ आकर मनुष्य खो जाता है और यही वह बाज़ार है जहाँ कुछ क्षणों के लिये गम भी गलत हो जाता है।

कोई जब दूर होता है तो दूर ही होता चला जाता है और जब कोई निकट आ जाता है तो दूरी हटती जाती है। दीपक और उर्मिल की दूरी हटती जा रही थी। दोनों वोल्गा में जाकर एक फैमिली केबिन में बैठ गये। बैरे ने मीनू लाकर सामने रख दिया।

दीपक ने उर्मिल की ओर मीनू करते हुए कहा— "पसन्द कीजिये क्या लेंगी ?"

उर्मिल ने मीनू पलटते हुए कहा— "जो आपको पसन्द हो मँगा लीजिये।"

दीपक— "आपकी पसन्द ही मेरी पसन्द होगी।"

उर्मिल ने कोई उत्तर दिये बिना ही बैरे से कहा— "दो हॉट काफी लाओ और दो प्लेट वैजिटेबिल कटलेट।"

जब उर्मिल ने आर्डर समाप्त कर दिया तो दीपक ने कहा— "मैं स्वभाव से ब्राह्मण हूँ। सिर्फ नमकीन से काम नहीं चलेगा, कुछ भूख भी लगी है। देखो ब्वाय, दो प्लेट काला जामुन और दो दोसे भी ले आना।"

बैरा आर्डर का सामान लेने चला गया। क्षण भर के लिये दीपक और उर्मिल चुप रहे। दीपक ने मौन भंग किया— "कहाँ हो उर्मिल जी! कब से हैं आप दिल्ली सर्विस में?"

उर्मिल— "अभी दो ही महीने तो हुए हैं जौइन किये।"

दीपक— "शिक्षा कहाँ पाई आपने?"

उर्मिल— "लाहौर से बी. ए. किया था, एम. ए. प्रीवियस में पढ़ रही थी। सब कुछ ही नष्ट हो गया।"

दीपक— "ओहो! माफ़ करना, फिर वही चर्चा छेड़ दी। हाँ, तो कैसा मन लग रहा है इस सर्विस में?"

उर्मिल— "इतनी व्यस्त रहती हूँ कि मन का पता ही नहीं रहता। सुबह चार बजे उठती हूँ। सब कामों से निमट आफिस पहुँचते पहुँचते दस बज जाते हैं। शाम को भी सात बजे के करीब घर पहुँचती हूँ। घर पर भी कुछ काम करना होता है। खाने, पीने, काम-धंधे से निमट ग्यारह बजे पड़कर सोती हूँ तो चार बजे तक होश नहीं रहता।"

बैरा सामान ले आया। दीपक ने केतली में से काफी प्याले में कर प्याला उर्मिल की तरफ खिसका दिया। दूसरे प्याले में अपने लिये काफी डाल पीनी शुरू कर दी। जैसे जैसे समय बढ़ता जाता था वैसे ही वैसे उर्मिल की चिन्ता बढ़ती जाती थी।

काफी की अन्तिम घूँट भरते हुए उर्मिल ने कहा— "देर बहुत हो गई, वर्षा भी काफी है, ग्यारह बजे से पहले घर पहुँचना मुमकिन नहीं।"

दीपक— "हाँ, वर्षा तो जोर की है। वर्षा क्या तूफान है।"

उर्मिल— "बहुत ही जोर की वर्षा हो गई। बादलों की गर्जन और बिजली की कड़क से दिल काँपता है। जैसे भी हो जल्दी से जल्दी घर पहुँचना चाहिये। अकेली हूँ नहीं तो टैक्सी में ही चली जाती।"

दीपक— "नहीं, टैक्सी में अकेले जाना ठीक नहीं, ये टैक्सी वाले समय का फायदा उठाते हैं।"

उर्मिल— "समय का फायदा कौन नहीं उठाता जनाब! हर मनुष्य समय और दूसरे की लाचारी से फायदा उठाता है। अच्छा उठिये जल्दी।"

दीपक— "तो कैसे जायेंगी आप?"

उर्मिल— "स्टेशन चलते हैं, शायद कोई गाड़ी मिल जाये। कभी कभी देहरा लेट हो जाती है।"

दीपक— "तो चलिये।"

दीपक ने होटल का बिल भुगताया। दोनों वोल्गा से बाहर निकले। वर्षा ऐसे हो रही थी जैसे जलप्लावन करना चाहती हो। बाज़ार धीरे धीरे बन्द होता जा रहा था। कोई कोई दूकान खुली थी।

दीपक ने कहा— "कुछ खरीदेंगी नहीं?"

उर्मिल— "जी नहीं।"

दीपक— "आपकी साड़ी बिल्कुल भीग गई है। ऐसा कीजिये एक साड़ी ले लें। उसे बदल लें।"

उर्मिल— "घर पहुँच कर बदल लूँगी।"

दीपक— "गीले कपड़ों में रहने से तबियत खराब हो जायेगी। इससे क्या लाभ, खाट पकड़ी जाये।"

उर्मिल के मना करने पर भी दीपक ने हठ की। वे साड़ियों की एक दूकान में चले गये। उर्मिल के मना करने पर भी उन्होंने एक साड़ी खरीद ही दी। और फिर वे टैक्सी में बैठ स्टेशन पर पहुँचे। जैसे ही वे स्टेशन पर पहुँचे, देहरा छूट चुकी थी।

दीपक ने कहा— "अब क्या करें?"

उर्मिल— "बड़ी मुश्किल आ पड़ी। वहाँ मामा बाट देखते होंगे। मामी नाराज़ होंगी।"

दीपक— "इसमें नाराज़ी की क्या बात है? यह तो लाचारी है।"

उर्मिल— "आप मामी जी के स्वभाव को नहीं जानते। बात बात में बिगड़ती हैं। कहेंगी देहरा तो पकड़ सकती थी।"

दीपक— "कहें तो मैं छोड़ आऊँ, उनको समझा दूँगा।"

उर्मिल— "न बाबा, आपके साथ जाने में तो मुझे वे फौरन घर से निकाल देंगी।"

दीपक— "बड़े अजीब लोग हैं। एक ओर तो सर्विस करने भेजते हैं, दूसरी ओर ज़रा ज़रा सी बातों पर जान खाते हैं।"

उर्मिल— "बात यह है कि भगवान किसी को पराश्रित न करे। न पाकिस्तान बनने पर माँ बाप की हत्या होती, न मामा मामी का मुँह देखना पड़ता। नौकरी करने को भी जान खाती थीं और बन्धन भी सख्त हैं।"

दीपक— "तो फिर क्या करेंगी अब आप?"

उर्मिल— "एक बात सूझती है, यहीं वेटिंग रूम में ठहरे जाती हूँ। सुबह की गाड़ी से चली जाऊँगी। कह दूँगी देहरा में भीड़ बहुत थी, चढ़ने को जगह न मिली। रात भर वेटिंग रूम में ठहरी रही।"

दीपक— "ठीक है, यही ठीक है। ऐसा करते हैं, फर्स्ट क्लास के टिकट लिये लेते हैं। उससे वेटिंग रूम में आराम से ठहर जायेंगे।"

मर्दाना वेटिंग रूम भरा हुआ था। जनाने वेटिंग रूम में कोई सवारी नहीं थी। दीपक ने उर्मिल से कहा— "आप इसमें ठहर जाइये,

मैं प्लेटफार्म पर टहलता रहूँगा।"

उर्मिल— "ठंड तो बहुत ज्यादा है और बाहर हवा भी बहुत है।"

और फिर गेटकीपर की ओर देखती हुई बोली— "क्यों, हम दोनों ठहर जायें इसमें?"

गेटकीपर ने दोनों को देखा और फिर अधिकार व आवश्यकता प्रदर्शित करती हुई बोली— "किसी मर्द के ठहरने की इजाज़त तो नहीं है। पर मौसम खराब है, इसलिये ठहर जाइये। हम भी चाय वाय पी लेंगे।"

उर्मिल ने एक रुपया निकाल गेटकीपर के हाथ पर रखा। गेटकीपर ने दोनों को फर्स्ट क्लास के जनाने वेटिंग रूम में ठहरने की इजाज़त दे दी।

वेटिंग-रूम में दो बेंत के बर्थ पड़े थे, कुछ आराम कुर्सियाँ और मेज़ वगैरह। बैठने से पहले ही दीपक ने कहा— "तुम्हारी साड़ी काफी गीली हो गई है, बदल लो।"

उर्मिल— "कपड़े भीग तो आपके भी गये हैं। पर आप क्या बदलेंगे?"

दीपक— "मुझे चादर ने काफी बचा लिया है, इतना नहीं भीगा हूँ। और फिर मुझे तो गर्मी सर्दी सहने की आदत है।"

उर्मिल— "यह क्यों नहीं कहते कि लाचारी है। अच्छा, मैं तो साड़ी बदले ही लेती हूँ। कहीं ठंड लग गई तो दफ्तर जाने से रह जाऊँगी।"

कहते हुए उर्मिल ने साड़ी ली और बाथ-रूम में चली गई। वहाँ उसने साड़ी बदली, ब्लाउज़ भी गीला हो गया था। उर्मिल सोचने लगी कि इसे उतारूँ या पहने रहूँ। नहीं उतारूँगी तो कल ही खाँसी और

ज़ुकाम घेर लेंगे। हो सकता है बुखार भी हो जाये। दीपक कोई खराब आदमी तो मालूम नहीं होते, व्यवहार से खरे लगते हैं, शक्ल से भले जान पड़ते हैं। ठीक है, ब्लाउज़ उतार कर फैला ही देती हूँ। सुबह तक कुछ न कुछ फरहरा हो ही जायेगा।

उर्मिल ने ब्लाउज़ उतार फैला दिया। साड़ी भी फैला दी और फिर बाहर आई। दीपक एक बर्थ पर लेट गये थे। उन्होंने उर्मिल से कहा—"उस सामने वाले बर्थ पर लेट जाओ।"

उर्मिल लेट गई। पर भीषण वर्षा और तेज़ हवा के कारण दोनों को ही नींद नहीं आ पा रही थी। जब कोई लेट जाता है तो निश्चित होकर चिन्तन करने लगता है। अपने आप से मनुष्य बहुत बातें करता है। दीपक विचारों में तैरने लगे। कितनी ही घटनायें उनके सामने घूम गईं। पर मनुष्य किसी भी विचार में हो, उसके मस्तिष्क में एक विचारों का राजा भी होता है, जो सभी विचारों पर अधिकार जमाये रहता है। दीपक के विचार में भी देवकी देवी का चित्र मेघों में बिजली की तरह कौंध कौंध जाता था। उनका प्यार, उनका जीवन, उनका साहस दीपक को बार बार प्रेरित करता था। अतीत की अनेकों बातें उनको उद्वेलित कर रही थीं। और साथ ही वे विड़ोलित हो रहे थे प्रकृति के नियमों से। कभी उनके सामने अमोलक बाबू घूम जाते थे तो कभी अपना परिवार, कभी दिल्ली की रंगीनियाँ नृत्य करती थीं तो कभी भविष्य के स्वप्न, कभी आदर्श उपदेश देते थे तो कभी यथार्थ झँझोड़ता था, कभी मन में जवानी मचलती थी तो कभी अधरों पर बुढ़ापा उपदेश देने लगता था।

इधर दीपक विचारों की आँधियों में चक्कर काट रहे थे, उधर तूफ़ान बढ़ता जा रहा था। बादल गरज गरज कर बरस रहे थे। बिजलियाँ कड़क रही थीं। ऐसा लगता था मानो कानों पर ही बिजली

टूट कर गिरने वाली है। दीपक ने ज़रा बाहर को झाँक कर देखा, काला सन्नाटा था, कुछ नज़र नहीं आता था।

यद्यपि स्टेशन पर बिजली की तेज़ रोशनी थी, पर वह भी एक प्रकार का सफ़ेद अँधेरा ही था। ड्यूटी के बाबू लोग भी जहाँ तहाँ छिपे खड़े थे।

दीपक ने सामने के बर्थ पर सोई हुई उर्मिल को देखा। अभी अभी उसकी आँख लगी थी। नींद एक अद्भुत स्थिति है। जब आती है तो ढोल ताशों में भी आ जाती है, बाजे बजते रहते हैं और सोने वाला सोता रहता है। गरजते हुए बादल, कड़कती हुई बिजलियाँ, वर्षा के भीषण रव, उर्मिल के कानों में संगीत की तरह गूँज रहे थे और वह सो रही थी।

सहसा सब जगह की बिजली चली गई। घोर अँधेरा हो गया। हाथ को हाथ नहीं दिखाई देता था। मानो अँधियारी की विभीषिका ने प्रेत का रूप धारण किया।

हाँ, घड़ी की टिक टिक तथा स्टेशन की लाल हरी लालटेनें पहरा सा अवश्य दे रही थीं। दीपक अभी भी विचारों में डूबे हुए थे। क्षण भर को उर्मिल के बारे में सोचते थे तो कुछ क्षणों में देवकी देवी और नीरजा की चिन्ता करने लगते थे। सोचते थे— "वर्षा नहीं तूफान है। देवकी देवी और नीरजा अकेली हैं, कहीं डरती न हों? वैसे तो दरवाज़ा बन्द कर सो जाने पर वहाँ कोई डर नहीं है, फिर भी खतरा तो है ही। दुनिया में धूर्त लोग मौके की तालाश में रहते हैं। अवसर मिलते ही हमला कर बैठते हैं। हमले भी बहुत प्रकार के होते हैं। कोई धन हड़पने के लिये हमला करता है। कोई प्राण लेने के लिये आक्रमण करता है। कोई किसी से किसी का वैर कराने के लिये धावा बोलता है। कोई किसी के यश पर हाथ डालता है। कोई किसी की प्रतिष्ठा को आँच

पहुँचाता है। जब तक मैं वहाँ होता हूँ तो कोई चिन्ता नहीं रहती। वैसे दोस्त लोग अपने सामने भी भुस में आग लगाने की कोशिश तो करते ही हैं। बात यह है कि कोई किसी से किसी का प्यार नहीं देख सकता। कितना अखरता है लोगों को देवकी देवी का और मेरा प्रेम। कितनी पवित्रता है इसमें, और कितना पाप नज़र आता है दूसरों को। शायद बहुत से पाप पुण्य ही होते हैं। निश्चित ही आँखों को धोखा हुआ करता है। पहचानने वाली आँखें नहीं होतीं। कोई भी निर्णय बहुत ही भंगुर सीमाओं में लिया जाता है। बड़े संकुचित होते हैं लोग। किसी को दोष देने से पहले यह सोच लेना आवश्यक है कि कहीं तुम में भी तो वही भूल नहीं है। बहुत सी भूलें आवश्यक होती हैं। व्यक्ति विवश होकर वह करता है जिसे दुनिया नहीं चाहती। संसार में सताने वालों की क्या कमी है। न जाने कौन किस तरह जीवन चलाता है! यह उर्मिल भी कोई दुःख मानती मालूम होती है। इसके जीवन में भी कुछ संघर्ष प्रतीत होते हैं। वैसे चाल-चलन की अच्छी लगती है। शिक्षित और सभ्य है। सुन्दर तो है ही। इस अँधेरे में भी जब बिजली कौंध कर वातायनों से इसके मुँह पर पड़ती है तो यह बिजली के फूल सी खिल उठती है।"

दीपक इस तरह कल्पना कर ही रहे थे कि उर्मिल ने चौंक कर कहा— "माँ! माँ!!"

दीपक उठ कर उर्मिल की बर्थ के पास गये और कहा— "क्या बात है उर्मिल!"

उन्होंने देखा, उर्मिल बर्थ पर बैठी रो रही है।

उर्मिल के सर पर हाथ रखते हुए दीपक ने कहा— "क्यों, क्या बात है उर्मिल! क्या डर गईं?"

उर्मिल ने काँपते हुए डरी हुई आवाज़ में कहा— "मैं कहाँ हूँ? यहाँ

रोशनी क्यों नहीं है?"

दीपक— "तुम वेटिंग-रूम में हो उर्मिल! बिजली चली गई है। वर्षा तूफ़ानों के साथ आ रही है।"

कहते हुए दीपक उर्मिल के बराबर में बैठ गये। ढाढस देने के लिये उनका हाथ अभी भी उर्मिल के सर और पीठ पर था।

उर्मिल ने कुछ कुछ चेतना में आते हुए कहा— "मुझे बहुत डर लग रहा है।"

दीपक— "क्यों, डरने की क्या बात है? तुम इतनी घबरा क्यों गईं?"

उर्मिल— "मैं —मैं, स्वप्न देख रही थी। उफ़!"

दीपक— "क्या स्वप्न देख रही थीं?"

उर्मिल— "कुछ नहीं, बड़ा भयानक स्वप्न था।"

दीपक— "आख़िर क्या स्वप्न था?"

उर्मिल— "मत पूछो, क़त्ल हो रहे थे। बच्चे बूढ़े गाजर मूलियों की तरह काटे जा रहे थे। आग लगाई जा रही थी। मुझे डर लग रहा है दीपक बाबू! बहुत डर लग रहा है। इस अँधेरे में मुझे और भी अधिक डर लग रहा है।"

दीपक ने उर्मिल का सर अपने सीने पर रखते हुए दिलासा दिया— "एक बहादुर लड़की होकर डरती हो। स्वप्न था तो क्या हुआ? न जाने कितने अच्छे बुरे स्वप्न देखे जाते हैं रोज़।"

उर्मिल के श्वासों में तीव्रता थी, शरीर कुछ ठंड से, कुछ डर से काँप रहा था। उसकी आँखों में से गालों पर आँसू बह आये थे। दीपक ने अपनी उँगली से उसके आँसू पोंछे। उसे चेतना में लाने के लिये सर

और माथा सहलाया। उर्मिल को कुछ शान्ति सी मिली। पर एक विचित्र बेचैनी सी भी देह में दौड़ उठी। जिन आँखों में आँसू थे उनमें दीपक के प्रति कुछ सहानुभूति सी उमड़ आई। दीपक को अँधेरे में उजाले की तरह टटोलती हुई कह उठी— "दीपक बाबू!"

दीपक "हाँ उर्मिल" कहते हुए उसके अंगों पर सहानुभूति भरा हाथ फेरने लगे।

धीरे धीरे सहानुभूति हाथ बढ़ाने लगी। उर्मिल की उँगलियों में भी गति आई। एक दूसरे के हाथ मिलने बिछुड़ने लगे। कभी उर्मिल दीपक के हाथ पर हाथ रखती। कभी दीपक उर्मिल का हाथ पकड़ने लगे।

सहानुभूति बढ़ते बढ़ते प्रेम तक पहुँच गई। तूफान और ठंड ने दोनों को मिला दिया। अब तक हाथ ही चल रहे थे, अब अन्य अंगों में भी स्पन्दन हो उठे। आँखें फड़फड़ाईं। श्वासों में सुगन्ध और ऊष्णता जागी। गालों पर पराग खिला, अधरों पर मकरन्द छलका, इन्द्र-धनुषी अंगड़ाइयाँ मचलीं। हृदय के तन्त्र तनने लगे। अलग होने की कोशिश लाचार होने लगी। आलिंगन और चुम्बन बेले में बहारों की तरह खिल उठे। दूरी यहाँ तक घटी कि दोनों दो न रहे। एक बारीक सी तड़प ललक कर गा उठी। "बड़ी मधुर रात है। पिलाओ अधरों से खूब अमृत पिलाओ! मैं प्यासी हूँ, बहुत प्यासी।" एक की वाणी दूसरे की प्रतिध्वनि थी। प्रेम प्रणय में बदल चुका था। आलिंगन के बंधन कस गये। दोनों को तूफान और वर्षा का पता न रहा। एक को दूसरे से ज़िन्दगी का आनन्द मिल रहा था। उस समय दोनों के सामने संसार नहीं था। पहली रात का त्यौहार था।

उर्मिल ने कहा— "इस भीषण वर्षा में हृदय के इन ज्वारों में कितना आनन्द है, कितना रस है, कितना सुख है! क्या यह रात तमाम उम्र की रात नहीं हो सकती? जी नहीं चाहता कि यह रात खत्म हो।"

दीपक— "रोम रोम में रस भर दिया है विधाता ने। कितना धन्यवाद दूँ उस कलाकार को जिसने रूप का यह सागर लहरा दिया है। तुम तो ललित कलाओं की एक डाली हो उर्मिल! जिस पर सारे सुखों के फूल लदे पड़े हैं।"

और फिर श्वासों में तूफान आ गया और अंगों में आलिंगनों की बिजलियाँ कौंध उठीं।

बुद्धि पर मन शरारत करने लगा। चुम्बनों से मद बढ़ता चला। अधरों में मानो पवन आ बसा, वे उड़ने लगे। शैतानी पर उतर आये। अबाध हरकत आ गई उनमें। कभी पलकों पर, कभी भौंहों पर, कभी भाल पर, कभी अलकों में, कभी गालों पर, कभी गर्दन में, कभी चिबुक पर, कभी हथेली में, यहाँ तक कि कोई अंग अछूता न रहा। चुम्बन के चिह्नों पर सुर्खी दौड़ उठी। अंगों में अरुणाई की आभा दमकी। नयन रतनारे हो उठे। एक विचित्र मस्ती ने दबा लिया दोनों को।

यद्यपि दोनों पर रतिनायक फूलों के बाण पर बाण चला रहे थे, फिर भी कभी दीपक के मन को विरोध झंझोड़ता था और कभी उर्मिल के सामने समाज अट्टहास करने लगता था। पर जिसने महर्षि पराशर को जीत लिया, दुष्यन्त पर विजय प्राप्त करली, पांडु को मार डाला, और भी ब्रह्मा और इन्द्र जैसे अनेकों को वश में न रहने दिया, वह पीड़ा से द्रवित, मन के समुद्र से प्लावित, बाह्य जगत के तूफानों से आलोड़ित, प्रकृति की गूंजों से सिंचित बेचारे दो प्यासों को कैसे चलने देता।

प्यास! कौन है वह जो प्यासा नहीं है! काम बहुत प्यासा होता है। जब यह मन में मचलता है तो मनुष्य चन्द्रकान्त मणि की तरह पिघलने लगता है। आवेग बढ़ता चला गया। अतृप्ति तृप्ति के लिये बेताब हो गई। और फिर एक अद्भुत आनन्द ने अतृप्ति को तृप्त कर वैराग्य के श्वास उगले।

५

लज्जा, ग्लानि और भय से परेशान उर्मिल जैसे ही मद के तूफ़ानों से मुक्त हुई, वैसे ही दुनिया के तूफ़ानों ने उसे घेर लिया। उसके सामने एक नहीं, दो नहीं, दस नहीं, क़दम क़दम पर शैतान अट्टहास करने लगे। "कल क्या होगा? मैं क्या करूँगी? रेल आती होगी, मुझे कट कर मर जाना चाहिये। यह मैं क्या कर बैठी?"

तरह तरह के तूफ़ानों में उर्मिल तिनके की तरह चक्कर काटने लगी। दीपक भी ऐसे ही तूफ़ानों में वर्तुलाकार थे। "तुम यह क्या कर बैठे? जब तुम जैसे वश में नहीं रह सकते, तब किसमें उज्ज्वल भावनायें रहेंगी! तो क्या तुम पाप कर बैठे? कौन था वह जो तुम्हें संसार से दूर बनों की ओर खींच रहा था? कौन है यह जो तुम्हें रूप के चमन में ले चला? न जाने कौन नचा रहा है मुझे? कैसी विडम्बना है यह? पहले आलिंगन फिर भय, पहले वैराग्य फिर राग, और फिर वैराग्य। सच है, काम को कोई नहीं जीत सका। इस मामले में गर्व करना पागलपन है।" राग और वैराग्य का ही संघर्ष नहीं था, दोनों के हृदयों में प्रेम और प्रणय के भी तूफ़ान थे। उर्मिल यद्यपि भय से काँप रही थी, पर दीपक के प्रति प्यार की प्यास स्थायी होती जा रही थी। उसने लज्जा, भय और प्यार से दीपक को देखते हुए कहा— "यह तुमने क्या किया, अब क्या होगा?"

दीपक दिलासा देते हुए बोले— "इतनी घबरा क्यों रही हो? जो हुआ वह होता रहा है, होता है और होता रहेगा।"

उर्मिल— "यदि कोई ऊँच-नीच हो गई तो ?"

दीपक— "तो तुम 'कुन्ती' की तरह अपराध न करना। ऐसा न कर बैठना कि कर्ण को सन्दूक में बन्द कर गंगा में बहा दो।"

उर्मिल— "यह तो तभी सम्भव है जब आप मुझसे विवाह कर लें।"

विवाह का नाम सुनते ही दीपक काँप उठे। इसलिये नहीं कि उर्मिल के प्रस्ताव में कोई जहर था, बल्कि इसलिये कि दूसरों को यह सहन करने में असमर्थ समझते थे। वे क्षण भर मौन रहे। फिर उर्मिल ने ही कहा— "पुरुष ऐसे ही होते हैं। लड़कियों को फुसलाकर उनका जीवन नष्ट करना आसान है, 'कुन्ती' न बनने का उपदेश देना सरल है। पर जब विवाह की बात सामने रखी तो चुप हो गये। जब आप विवाह नहीं कर सकते थे तो आपने मुझे लाचार क्यों किया ? हट जाइये मेरे सामने से, रास्ता छोड़ दीजिये मेरा। मैं इसी समय जा रही हूँ।"

दीपक— "कहाँ ?"

उर्मिल— "वहाँ, जहाँ से कोई वापिस नहीं आता। अभी थोड़ी देर में रेल आयेगी, गाजियाबाद न पहुँच कर किसी दूसरे लोक में चली जाऊँगी।"

दीपक— "जब मरने के लिये तैयार हो तो जीकर समाज के झूठे आदर्शों को जला कर राख क्यों नहीं कर डालतीं ?"

उर्मिल— "जब आप मर्द होकर मेरे प्रस्ताव पर चुप रह सकते हैं, तो मैं स्त्री होकर मरने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकती हूँ ! मैं जा रही हूँ, जा रही हूँ, जा रही हूँ।"

उर्मिल बहुत उद्विग्न हो चुकी थी। उसके प्यार में क्रोध आ गया था, आत्मग्लानि हुंकार चुकी थी। वह एक झटके के साथ दरवाज़े की ओर दौड़ी।

दीपक ने पकड़ते हुए कहा— "क्या फ़जीता करती हो यह, इस तरह होश खोने वाले अपना सब कुछ खो डालते हैं। कोई अनोखा काम नहीं कर डाला। सोचो, विचारो और साहस से काम लो। वह काम करो जिससे साँप मरे न लाठी टूटे। ऐसा न समझो कि मैं भाग रहा हूँ। जोश में किये हुए निर्णय कच्चे धागे के निर्णय होते हैं। आत्म-हत्या करने वाले पल भर के आवेश में जीवन खो बैठते हैं। पर जीवन इतना बेकार नहीं होता कि उसे ऐसे खो दिया जाये। घबराओ नहीं!"

उमड़े हुए आवेश को तनिक सी लहर डुबा डालती है। और यदि उसे बदलने के लिये किसी भी विवेक का सहारा मिल जाये तो डूबती हुई नौका तैरने लगती है। जोश एक नदी के कगार की तरह है। लहरों का सहारा मिले तो डुबा डालती है और यदि वायु-वेग से लहरें रास्ते से हटा दी जायें तो होश आ जाता है। आत्महत्या करने वाले को कुछ क्षणों को रोक लो, फिर वह कहने पर भी आत्महत्या नहीं करेगा।

दीपक के रोकने पर उर्मिल ठिठक गई। उसने कहा— "आप न मरने देते हैं न जीने। तो फिर बताइये मैं क्या करूँ?"

दीपक— "गाड़ी आने वाली है, आराम से घर चलो। मैं तुम्हें घर पर छोड़ता हुआ चला जाऊँगा।"

उर्मिल— "नहीं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं, स्टेशन से घर मैं आप चली जाऊँगी।"

दीपक— "अच्छा, आप ही घर चली जाना। चलो इतने गाड़ी आये, चाय पी आयें।"

उर्मिल— "प्लेटफार्म पर चाय पीने नहीं जाऊँगी। आप यहीं चाय मँगा दीजिये।"

दीपक टी स्टाल पर गये। चाय का आर्डर दिया। जैसे ही वे लौट

कर वेटिंगरूम में आये वैसे ही बैरा चाय लेकर आ गया। दीपक ने चाय का एक प्याला उर्मिल को दिया और एक अपने हाथ में ले पीने लगे। उस तेज़ जाड़े में गर्म चाय से दिमाग कुछ ठंडे हुए। कुछ क्षणों पहले जो उर्मिल आत्महत्या के लिये तैयार थी वह यथार्थ और आदर्श की आलोचना करने लगी। सोचने लगी— "झुलसते हुए जीवन में आनन्द के यदि कुछ क्षण भी मिल जायें तो बहुत हैं वे। सुख के क्षण ही तो अपने हैं, बाकी तो सभी स्वप्न है। अपना तो वही क्षण है जो क्षण सब कुछ भुला शान्ति दे सके।"

समय के साथ घाव भरता जाता है, विचार बदलते जाते हैं। दीपक चाहे ऊपर से उर्मिल से अधिक शान्त हों पर उनके मन में कुछ तीव्र संघर्ष छिड़े हुए थे। व्यक्ति के साथ एक ही समस्या नहीं होती, बहुत से झंझट, बहुत से जंजाल होते हैं। फिर दीपक का तो जीवन ही संघर्षों का जीवन था। उर्मिल की भावनायें भी उसे झँझोड़ रही थीं। देवकीदेवी तो मानो उसके सामने खड़ी पुकार रही थीं।

उसने उर्मिल से कहा— "आज के बिछड़े कब मिलेंगे?"

उर्मिल— "दिल्ली कौनसी दूर है।"

दीपक— "जी नहीं चाहता कि तुम्हें अकेली छोड़ दूँ।"

उर्मिल— "रहने दीजिये। प्यार के ये वाक्य बहुत धोखा देते हैं।"

दीपक— "आपने तो वह आग लगादी जो बुझाये न बुझेगी। अपना पता दे दो, जल्दी ही आकर मिलूंगा।"

उर्मिल ने पता और फोन नं० दे दिया। इतनी ही देर में गाड़ी आ गई। दीपक और उर्मिल गाड़ी में सवार हो गये। डिब्बे में जा बैठे। संयोग से यह डिब्बा भी खाली था। रेल चल पड़ी और साथ ही साथ चल पड़े दोनों के मन। आध घंटे का रास्ता पलों में बीत गया। प्यार

के फूलों में राह का पता ही न चला। अकेले से रास्ता कटना मुश्किल होता है। जब दो होते हैं तो रास्ता बहुत छोटा होता है। गाड़ी गाजियाबाद के निकट आ पहुँची। उर्मिल ने दीपक को और दीपक ने उर्मिल को बहुत अधिक प्यार से देखा। आँखों ही आँखों में एक ने दूसरे से बहुत कुछ कहा। गाड़ी प्लेटफार्म पर रुकी। सुबह हो चुकी थी। जब उर्मिल डिब्बे से उतरने लगी तो दीपक ने कहा— "फिर जल्दी ही मिलूँगा।"

उर्मिल ने कहा— "लाचारी और प्रतीक्षा में संघर्ष चलता रहेगा। आपने दफ्तर में मन न लगने की मदिरा पिला दी। होश में न लाये तो होश खो बैठूँगी।"

उर्मिल प्लेटफार्म पर उतर गई। दीपक खिड़की से उर्मिल को देखते रहे। गार्ड ने सीटी बजाई, हरी झंडी हिली और गाड़ी चलदी। दीपक उर्मिल को तब तक देखते रहे जब तक प्रकृति के पर्दों ने उसे छिपा न दिया। इधर दीपक उर्मिल को देख रहे थे उधर गाजियाबाद के कुछ युवकों ने उर्मिल को देखा। कुछ ने आवाज़ें कसीं।

उर्मिल अपने मौन से सबका तिरस्कार करती हुई स्टेशन से बाहर आ गई। उसके मन में सुनहरी और डरावने स्वप्न से झिलमिला रहे थे। दीपक का स्वभाव, उसका प्यार, उसका रूप, उसकी कोमलता, उसके तर्क वह रह रह कर याद कर रही थी। उसको सामाजिक सर्प दीख रहे थे। उस पर आवाज़ कसने की यह पहली ही बात नहीं थी। सड़क के मजनुओं ने उसका जीना भारी कर रखा था। उसके रूप पर बहुतों की आँखें लगी हुई थीं।

उर्मिल सोचती थी— "आज मुझे क्या हो गया! मुझे कितनों ही ने प्यार दिखाया। कहीं मुझ में दुर्बलता न आई। दीपक एक आग लगा कर चले गये। पता नहीं अब आयेंगे या नहीं। दीपक तो इन

सब से निराले निकले, मुझे पागल बना कर चल दिये। वे मेरे हों या न हों, मैं तो उनकी हो ही गई। वे बातें, वह प्यार, वह आनन्द, ये सब मुझे जीने के लिये बहुत हैं।"

वह स्वयं से तर्क वितर्क करती हुई घर आ गई। मामी ने देखते ही कहा— "कहाँ रही रात भर ?"

उर्मिल— "स्टेशन पर। बस छूट गई, देहरा भी न मिली, सुबह की गाड़ी से आई हूँ।"

मामी— "हाँ, हाँ, बस निकल गई, गाड़ी भी न मिली! अभी दिल्ली गये बहुत दिन नहीं हुए, हवा लग गई है तुझे ?"

और साथ ही मामी ने उसे बदली हुई धोती पहने देखा। धोती को गौर से देखती हुई बोली— "और यह धोती किस की पहन कर आई है ?"

मामी का सीधा प्रश्न सुनकर उर्मिल सटपटाई। फिर वह बोली— "एक सहेली की। धोती भीग गई थी, इसलिये उसने अपनी खरीदी हुई नई धोती मुझे पहनने को दे दी।"

मामी— "तो फिर सहेली के घर ही क्यों नहीं रह गई थी, स्टेशन पर क्यों रही ?"

उर्मिल— "सोचा था गाड़ी मिल जायेगी। पर स्टेशन पर पहुँचते पहुँचते न तो गाड़ी मिली न वर्षा ने ही दम लेने दिया। ऐसे तूफान तो पहले कभी नहीं देखे।"

तभी मामा ने आकर कहा— "आकर श्वास नहीं लिया कि तुमने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। रात के तूफ़ान में दिल्ली से आना तो क्या यहाँ घर में रहना भी कठिन था। देखतीं नहीं कि मौहल्ले में कितने घर गिरे पड़े हैं। हरे पेड़ तक गिर पड़े।"

मामा को भानजी का पक्ष लेते देख मामी के तेवर और भी चढ़ गये। बिगड़ती हुई बोलीं— "हाँ, हाँ, सिर पर चढ़ा लो इसे। नौकरी क्या करने लगी है, पूजा करो इसकी। मैं कोई नौकरानी नहीं हूँ जो इसके लिये रोटियाँ बना बना कर रखूँ। जब से यह घर में आई है आप बिल्कुल बदल गये हैं। हर वक्त उर्मिल की ही चिन्ता रहती है। सिर में राख डालेगी यह हमारे।"

मामा को क्रोध आ गया। उन्होंने ज़ोर से कहा— "बस चुप रहो, बहुत मत बोलो। बात बात में बिगड़ती हो। जब देखो दस सुनाने को तैयार रहती हो। खबरदार, जो उर्मिल को कुछ भी कहा। मुसीबत न पड़ती तो तुम्हारे घर क्यों आती। वह तो खुद ही बेचारी भाग्य की मारी है। माँ तो बचपन में ही छोड़ गई थी। बाप हिन्दू-मुस्लिम झगड़े में मारे गये। फेरे अवश्य फिरे, पर बेचारी ने उसका मुँह तक नहीं देखा।"

मामी को मौका मिल गया, उसने अकड़ कर कहा— "देखती कैसे, कम्बख्त जो थी। उस बेचारे ने इससे शादी क्या की, मौत से फेरे फेर लिये। इसे लेकर घर तक नहीं पहुँच पाया कि रास्ते में ही हार्ट फेल हो गया। माँ-बाप को खा गई। अब यहाँ आई है तो हमारा भी सत्यानाश करेगी।"

उर्मिल मामी की एक एक बात सौ सौ बिच्छुओं के डंक के समान सहन कर रही थी। उसकी आँखों से अविरल आँसू बह रहे थे। एक अद्‌भुत चक्कर सा आ रहा था। सोच रही थी— "तुरन्त आत्महत्या कर लूँ। किन्तु दीपक की बात उसे याद थी। जो मर सकता है वह क्या नहीं कर सकता। भागो नहीं, बदलो, हिम्मत न हारो। रोना कायरता है। अब तो तू समर्थ है उर्मिल! मामा मामी की क्या ज़रूरत है? नौकरी करती है। यह घर छोड़ दे, वर्किंग गर्ल्स होस्टल में रहने लग!"

मामी के ताने सुन सुन कर उर्मिल को दुःख हुआ, पर उसके मामा विभूतिप्रसाद को गुस्सा आ गया। हथेली से अपनी पत्नी का मुँह भींच धक्का सा देते हुए कह उठे— "कैंची की तरह ज़बान चलाये ही जायेगी! किसी को देख ही नहीं सकती। तुझे तो बुरा ही दिखाई देता है और बुरा ही सुनती है। जब भी निकलते हैं ज़बान से विष-वाक्य ही निकलते हैं। अब चुप रह!"

उर्मिल की मामी कोई छोटे बाप की नहीं थी, ज़बान कैसे रुक जाती। त्रिया चरित्र कर आँसू ढारती हुई बोली— "नहीं रहती चुप। यह ऐसी ही प्यारी है तो मैं जाती हूँ। इस घर में मेरा क्या है!"

यद्यपि विभूतिप्रसाद बहुत सहन कर रहे थे, पर अपनी पत्नी की तलवार सी ज़बान ने उनका मर्म बींध डाला। सन्तुलन खो बैठे। आव देखा न ताव, अपना सिर ज़ोर से दीवार में दे मारा। सिर दीवार में बहुत ज़ोर से लगा। माथा फट गया। उर्मिल ने चीखते हुए उनको पकड़ा। माथा फटते ही विभूतिप्रसाद रोने लगे। ख़ून देख उनकी पत्नी का जोश भी हवा हो गया।

उर्मिल ने तुरन्त रेशम फूंक घाव में भरा और उनको लिटा दिया। जब किसी साधारण घटना में कोई बड़ी घटना हो जाती है तो वातावरण बदल जाता है। विभूतिप्रसाद के माथे में चोट लगने से उनकी पत्नी उस समय शान्त हो गई। वह पति के लिये दूध लाई। उर्मिल से कहा— "चल, तू भी नहा धोकर खाना खा ले।"

उर्मिल चाहे बहुत ग़ुस्से वाली थी, उसके स्वाभिमान को जब चोट लगती थी तो वह तिलमिला उठती थी। साथ ही साथ वह समझदार भी थी। परेशानी बढ़ाने की अपेक्षा परेशानी घटाना उसे अच्छा लगता था। वह स्नान आदि करने चली गई। पर न जाने उसे क्या हो गया था। नहाते धोते दीपक की तस्वीर उसके सामने आ जाती थी। जैसे

तैसे नहाधोकर उसने कुछ खाया, थकी हुई थी सो गई। आज दफ्तर न जाने का उसने पहले ही निश्चय कर लिया था।

सोते सोते उसने कई स्वप्न देखे। कभी वह डरी और कभी हँसी। उसने देखा— "वह किसी राजा की लड़की है। उसकी शादी हो रही है, वह दुल्हन बनी है, उसका अनोखा शृंगार किया गया है। बड़ी धूमधाम से बारात आई है। वह बहुत सी उम्मीदें लिये अपने दूल्हे के साथ चल दी। रास्ते में दूल्हे ने कहा, 'बस मेरा तुम्हारा साथ यहीं तक का है। मैं किसी की धरोहर हूँ, उसकी आज्ञानुसार मुझे लाचार होकर यहाँ तुम्हें छोड़ना ही है। पर घबराना नहीं, यह सोचकर परेशान न होना कि मैं चला गया तो तुम चल नहीं सकतीं। किसी का सहारा लेने वाले गलती करते हैं। जो अपने सहारे चलता है वही अन्त तक चल पाता है। तुम चलती रहना, अपने पैरों पर चलना, किसी से डरे बिना चलना, तब तक चलना जब तक तुम पूर्ण प्रसन्न न हो जाओ। सुख कोई किसी को देता नहीं, सुख लिया जाता है। अच्छा, अब सुबह होने वाली है। मैं बुझा दिया जाऊँगा। लो जिसने मुझे जलाया था वह बुझाने आ गया। दीपक जलने और बुझने के लिये ही तो है। आ हा, बुझने में भी कितना आनन्द है! कितनी शान्ति है इसमें!'

"और फिर उर्मिल ने देखा किसी ने फूँक मारी, दीपक बुझ गया।" साथ ही खुल गईं उसकी आँखें, स्वप्न भंग हो गया।

६

दोपहर के दो बजे देवकीदेवी खाट पर पड़ी खुर्राटे भर रही थीं। दरवाज़ा ढुका हुआ था। सहसा दरवाज़ा खुला। दीपक ने अन्दर आते हुए कहा— "सो रही हो?"

देवकीदेवी यद्यपि गहरी नींद में सो रही थीं, पर दीपक की आवाज़ सुनते ही उन्होंने एकदम आँखें खोल दीं। वे उठकर बैठती हुई बोलीं— "नहीं सो तो नहीं रही थी, अभी अभी ज़रा झपकी सी आ गई थी। रात भर तुम्हारी बाट देखती रही। बड़ा वक्त लगा दिया।"

दीपक— "हाँ, रात भर स्टेशन पर ही पड़े रहना पड़ा। कोई गाड़ी नहीं मिली। सुबह की गाड़ी से चला, उसका भी रास्ते में इंजिन फेल हो गया। अब आई है रेल। सीधा यहीं चला आ रहा हूँ।"

देवकी— "और वर्षा भी तो बहुत थी, रात भर तूफान आते रहे। हमें तो डर लगता रहा।"

दीपक— "डर और आपको! आप तो लोहे की बनी हुई हैं। और फिर ईश्वर तो हर समय साथ रहता है।"

देवकी— "किसी दिन देखते रह जाओगे, कोई आकर क़त्ल कर जायेगा।"

दीपक— "मेरे होते कौन आँख उठा सकता है! किसी ने कुछ भी कहा तो उसकी ख़ैर नहीं।"

देवकी— "बाद में कुछ भी करते रहना, उससे क्या होगा ! करने वाला तो अपना काम कर ही जायेगा। अच्छा छोड़ो ये बातें। मरना तो एक दिन है ही। फिर व्यर्थ चिन्ता में क्यों गलें ! चलो कपड़े बदलो, खाना खा लो। मैं आँच सुलगा कर साग गर्म किये देती हूँ।"

दीपक— "साग गर्म करने की कोई ज़रूरत नहीं, मुझे ठंडा ही साग अच्छा लगता है।"

देवकी— "क्या देर लगती है साग गर्म करने में, छोटी अंगीठी में चार कोयले जलाऊँगी, साग गर्म हो जायेगा। ठंडे खाने से पेट भरा जा सकता है पर स्वाद से खाने में जो बात है वह पेट भरने में नहीं।"

कहते हुए देवकी देवी उठीं। दीपक के मना करने पर भी उन्होंने अंगीठी सुलगा ली। दाल-साग गर्म किये, थाली परोस कर सामने रखी और फिर एक एक पूरी सेंक कर देने लगीं।

दीपक ने कहा— "रात भर ठंड काफी रही, तबियत कुछ ढीली सी है, खाना खाने के बाद एक प्याला चाय चाहियेगी।"

देवकी देवी पूरी थाली में डालती हुई बोलीं— "चाय कोई अच्छी चीज़ नहीं है, दूध रखा है, एक गिलास पीकर सो जाना।"

दीपक ने ग्रास तोड़ते हुए कहा— "अच्छा।"

और फिर भूखे तो थे ही, खाना स्वादिष्ट लगा, पेट से अधिक खा गये। ऊपर से एक गिलास दूध पिया।

जब पेट पूजा से निबट चुके तो सोने की सूझी, बोले— "मुझे नींद आ रही है, सोऊँगा। नीरजा कालिज से कितनी देर में आयेगी ?"

देवकी— "आती ही होगी। वह तो कालिज जाते जाते पूछ रही थी, दीपक भैया तो दिल्ली में ही अटक गये, मेरी किताब कापियाँ अभी तक नहीं आईं। उनको कुछ काम नहीं है और फुर्सत बिल्कुल

नहीं मिलती। रोज कहते हैं, आज दिला दूँगा कल दिला दूँगा। आज किताबें नहीं आईं तो कल से पढ़ना छोड़ दूँगी।"

दीपक— "आज जरूर दिला दूँगा। अच्छा अब मैं सोता हूँ, यदि आँख न खुले तो सात बजे के करीब जगा देना।"

थके हुए दीपक खाट पर लेट गये। जब आदमी लेट जाता है तो विचार घिर आते हैं, याद सताने लगती है। दीपक को उर्मिल की याद आने लगी। वे फिर उर्मिल के बारे में सोचने लगे। कभी वे व्यक्ति बन कर सोचने लगे और कभी समाज बन कर। कभी वे परिस्थितियों में सोचते थे और कभी कानून में। सोचते थे कैसी विडम्बना है यह! कुछ क्षणों में ही हम कितने निकट हो गये और कितनी जल्दी बिछुड़ गये। शायद मिलना और बिछुड़ना ही जीवन का क्रम है। कुछ भी हो उर्मिल बहुत सुन्दर है। उसके अंग अंग में आकर्षण है। वह तो एक सुगन्धित फूल है। उस पवित्र फूल को सूँघ कर मैंने झूठा कर दिया। क्या मैंने यह अनर्थ किया? क्या मुझ से यह बुराई हो गई? नहीं, बुराई तो नहीं हुई, अनर्थ नहीं किया मैंने। यह तो प्रकृति का धर्म है। संयोग तो सृष्टि का नियम है। विवाह और इस प्रकार के सम्बन्ध में एक विषमता अवश्य है। क्या जब इस तरह के प्राकृतिक मिलन के लिये वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ दिया जाता है तभी सहवास धर्म है? रीति-रिवाजों के अनुसार तो यही उचित है। पर रूप को देखते ही एक प्यास जागती है, वह प्यास कोई नियम नहीं मानती। चाहे कोई धर्मात्मा हो या दुखी, अकेले में स्त्री को पाकर पागल हो ही जाता है। कैसी विचित्र बात है! न मैं चाहता था, न उर्मिल। मगर वह क्या ताकत थी जिसने आग लगा दी। जैसे आग और फूस मिलते हैं वैसे ही स्त्री और पुरुष का मिलन दहकता है। यह वह आग है जिसमें जितना घी डालो उतनी ही धधकती है। मैंने सोचा था कि आदर्शों पर चलूँगा, धर्म

मार्ग को अपनाऊँगा, काम क्रोध से दूर रहूँगा। किन्तु एक ही झटके में सारे आदर्श काफूर हो गये। सन्यस्त के विचार सरकंडों की तरह जल गये। बनों में जाने वाला राही रूप के चरणों में गिर पड़ा। कैसे सोऊँ, नींद नहीं आती। थका हुआ हूँ, पर पैर उर्मिल की तरफ़ दौड़ते हैं। वह छवि मेरे रोम रोम पर छाई हुई है।

उर्मिल की स्मृति दीपक को झँझोड़ने लगी। वे छटपटा उठे। पर जब लाचार पथविहीन होता है और विचारों में चक्कर काटता काटता थक जाता है तो नींद आ ही जाती है। कुछ स्वप्नों में खोये से दीपक सो गये। नीरजा कालिज से आई तो उसने दरवाज़े में से ही पूछा— "दीपक भैया आये ?"

देवकीदेवी ने ओठों पर उँगली रखते हुए कहा— "आ गये। बहुत थके हुए हैं। देख, खुड़का मत करियो, चुपचाप कपड़े बदलकर खाना खा ले।"

नीरजा ने किताबें अलमारी में रखीं, कॉलिज के कपड़े बदले और फिर खाना खाने बैठ गई। खाते ही खाते बोली— "आज फिर बहिन जी ने डाटा, किताब कापियें नहीं आईं!"

देवकी— "मैंने कहा था। उन्होंने कहा, आज ज़रूर लाऊँगा।"

नीरजा— "लायेंगे कैसे, वे तो घोड़े बेच कर सो रहे जान पड़ते हैं। खुर्राटों से ऐसा जान पड़ता है जैसे कई दिन से नहीं सोये। अगर आज कापियाँ नहीं आईं तो मैं कल से पढ़ने नहीं जाऊँगी।"

देवकीदेवी ने देखा कि कहते कहते नीरजा की आँखें छलछला आई हैं। वे धीरज देती हुई बोलीं— "अरी, रो क्यों रही है, आज ज़रूर मँगवा दूँगी। नहीं आईं तो मैं खुद जाकर दिलवा लाऊँगी। रोया नहीं करते, शान्ति से खाना खा ले।"

नीरजा— "कई दिन तो हो गये इन्तज़ार करते करते, रोज़ आज-कल आजकल हो जाती है। एक भी लड़की ऐसी नहीं जिसके पास किताब कापियाँ न हों। बहिन जी नोट लिखवाती हैं और मैं टुकुर टुकुर देखती हूँ। यही हालत रही तो मैं फेल हो जाऊँगी।"

देवकीदेवी ने देखा कि नीरजा को किताबों की इतनी बेताबी है कि रोटी भी अच्छी नहीं लगती। उन्होंने कहा— "अच्छा तू रोटी खा ले, मैं अभी दीपक को जगाकर तेरी किताबें मँगाती हूँ।"

नीरजा— "नहीं, उन्हें जगाइये नहीं। थके हुए सोये हैं, आ जायेंगी किताबें, दो घंटे बाद आ जायेंगी।"

दीपक को जगाने के लिये नीरजा तैयार नहीं हुई। उसने शान्ति से रोटी खा ली। जब खाना खा चुकी तो छत पर ही अपनी किताब ला कर पढ़ने लगी, और देवकीदेवी हाथ पर रोटी रख खाने बैठ गईं। साग खत्म हो चुका था। उन्होंने थोड़ा सा नमक रोटी पर रख लिया। देवकीदेवी को नमक से रोटी खाते देख नीरजा ने कहा— "क्यों, साग नहीं रहा?"

देवकी— "नहीं, मुझे नमक से रोटी अच्छी लगती है।"

नीरजा— "नमक से क्या खाक अच्छी लगती है। अपने आप न खाती हो, न पहनती हो। हर वक्त मेरी चिन्ता है, दीपक भैया का ध्यान है।"

देवकी— "अरी पगली, तू क्या जाने प्रेम का पंथ! मुझे तो तुम्हें देखकर ही तृप्ति हो जाती है।"

इस प्रकार बहुत सी बातें करते हुए दोनों को बहुत देर हो गई। रात के करीब दस बज गये। दीपक यद्यपि सो गये थे, पर नींद में भी जब कोई ध्यान होता है तो सहसा वह टूट जाती है। किसी की प्रतीक्षा

में सोया हुआ मनुष्य बार बार चौंक उठता है।

सहसा दीपक की आँखें खुलीं। उसने देखा देवकीदेवी खाने पीने के बर्तन सँगवा रही हैं। नीरजा कुछ लिख रही है। आँखें खुलते ही दीपक ने नीरजा को देखते हुए कहा— "अरे, तुम आ गईं! मैं तो सो ही गया था।"

नीरजा— "आपको सोने और घूमने के अलावा और काम ही क्या है। मेरी कापियाँ तो आ गई होंगी?"

दीपक— "ओ हो, बिल्कुल भूल गया था, अभी लाता हूँ जाकर।"

नीरजा— "जी हाँ, अभी लाते हैं जाकर। जैसे रात के बारह बजे तक आपके लिये बाज़ार खुला रहता है। बस रहने दीजिये, मुझे नहीं मँगानी कापियाँ। कल से पढ़ना छोड़ दूँगी।"

दीपक— "तुम तो नाराज़ हो गईं जान पड़ती हो। बाज़ार खुला हो या बन्द, कापियाँ इसी वक्त लाऊँगा। चाहे दूकान खुलवा कर लानी पड़ें।"

नीरजा की आँखें छलछला आई थीं। उसने रुआँसे मूड में कहा— "नहीं, कल मैं आप ले आऊँगी।"

पर दीपक बाबू उठ कर खड़े हो गये। चप्पल पहनी और चलने लगे। चलते चलते बोले— "मेरी लैतलाली से बहुत दुःख हुआ तुम्हें, अभी लाता हूँ।"

जब नीरजा ने देखा कि ये तो अभी चल ही दिये तो ज़ोर से बोली— "नहीं, अब इस समय न जाइये।"

तभी देवकीदेवी ने कहा— "अब फिर चल दिये। चैन नहीं है, थके हुए थे, शान्ति से सो नहीं सकते।"

दीपक— "ज़रा बाज़ार तक कापी लेने जा रहा हूँ, अभी आ कर सोऊँगा।"

देवकी— "बाज़ार में सन्नाटा है और आप बाजार जा रहे हैं। कहीं और जाने की इच्छा होगी।"

दीपक— "नहीं, बस यह गया और वह आया। सिर्फ कापियाँ ही लानी हैं।"

कहते हुए दीपक चल दिये। बाहर आये तो बाज़ार में बिल्कुल सन्नाटा था। एक परिचित स्टेशनर के घर पर पहुँचे। बिचारा सो रहा था। आवाज़ लगाई। वह उठकर आया, दीपक बाबू ने कहा— "दोस्त! दो दर्जन कापियाँ इसी समय चाहियें।"

स्टेशनर ने आश्चर्य करते हुए कहा— "इस समय ऐसी कापियों की क्या ज़रूरत पड़ गई?"

दीपक— "बहुत सख्त जरूरत है, दूकान खोलकर निकाल दो, बात का सवाल है।"

स्टेशनर ने कहा— "दूकान खोलने की आवश्यकता नहीं है। आज ही बेचने के लिये कापियाँ लाया हूँ, माल यहीं घर पर रखा है। तुम कापियाँ ले जाओ।"

दीपक कापियाँ लेकर घर वापिस आगये। देवकीदेवी ने स्नेह से कहा— "सुबह आ जातीं, इस समय ऐसी परेशानी की क्या बात थी? यह नीरजा भी तंग करती है आपको।" और तभी नीरजा ने कहा— "दूकान खुली मिल गई?"

दीपक— "नहीं, दूकान खुलवा कर लाया हूँ।"

नीरजा— "क्या दूकानदार को घर से बुलाकर लाये?"

दीपक— "हाँ, दूकानदार के घर गया था, कापियाँ उसके पास घर

पर ही रखी थीं। यह अवश्य है कि उसे सोते से जगाना पड़ा।"

नीरजा— "चलिये, यह बात भी याद रहेगी।"

दीपक— "जीवन भी एक अजीब तमाशा है, कुछ भूलते जाते हैं, कुछ याद करते जाते हैं।"

नीरजा— "कागज़ पेंसिल लाऊँ? कविता लिखेंगे?"

दीपक— "तू तो बहुत चंट होती जा रही है नीरजा! मज़ाक उड़ाती है।"

नीरजा— "मैंने कह दिया तो मज़ाक हो गया, वैसे जो कुछ मैंने कहा, वह सत्य है। आप कविता कह रहे थे, मैंने लिखने को कह दिया और फिर कभी विघ्न डालती हूँ तो आपका मूड ऑफ हो जाता है। इस समय आपका मूड आ रहा था, मैंने सोचा काग़ज़ पेंसिल की ज़रूरत होगी।"

दीपक— "ज़रूरत कभी किसी की पूरी नहीं होती। एक ज़रूरत समाप्त होती है, हज़ार ज़रूरतें आ खड़ी होती हैं। खैर, किस किस को याद कीजिये, किस किस को रोइये। आराम बड़ी चीज़ है, मुँह ढँक कर सोइये।"

और फिर दीपक मुँह ढँक कर सो गये। सो गये पर स्वप्न देखते रहे, जैसे कुछ सोये हुए हों और कुछ खोये हुए हों। नींद भी एक विचित्र स्थिति है। जैसे निद्रा पर मानव की शान्ति का उत्तरदायित्व हो। कितनी भी उथल पुथल हो, कुछ न कुछ नींद आ ही जाती है। दीपक सो गये और फिर सुबह चार बजे ही उठ बैठे।

मन जब भटकता है तो नींद कहाँ आती है। मन पर विवेक की नहीं चलती। एक अजीब स्थिति होती है मन की, दुनिया के मेलों में कदम कदम पर अटकता है यह। जैसे बालक हर खिलौना पकड़ने को

लपकता है, वैसे ही मन भी भागा भागा फिरता है।

वीर से वीर पुरुष भी प्यार में कातर हो जाता है। प्रणय की प्यास भी कैसी तूफानी होती है ! क्या यह सच नहीं कि मनुष्य नवीनता का पुजारी होता है ! और शायद यह भी सच है कि मनुष्य कल के सुनहरी स्वप्न भूल नहीं सकता। नवीनता आकर्षक हो सकती है किन्तु पुराने स्वप्नों पर विजयी नहीं हो सकती। कहीं ऐसा तो नहीं कि नवीन आकर्षण विरह के क्षण भुलाने को टटोले जाते हों।

दीपक के मन में कुछ तस्वीरें घूम रही थीं, कुछ चित्र जगमगा रहे थे, कुछ तारे टिमटिमा रहे थे और कुछ जुगनू खेल रहे थे।

दीपक अपनी खाट पर उठ बैठे। सोचने लगे, "वास्तविकता क्या है, सत्य क्या है, मैं क्या हूँ, उर्मिल कौन है, देवकीदेवी को मुझ से इतना प्रेम क्यों है ? नीरजा में अपनापन क्यों दीखता है ? मन कहीं को जाता है, हाथ कहीं को बढ़ते हैं। पैर कहीं रुक जाते है। आखिर यह अस्थिरता क्यों है, जीवन में शान्ति क्यों नहीं ?

"समझ में नहीं आता जीवन का उद्देश्य क्या है ! संसार में मनुष्य को क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये, इसका निर्णय नहीं हो पाया। कुछ पाने की इच्छा होती है, कुछ खोता जाता है। शायद असंतोष ही जीवन का अन्तिम चरण है। सभी शान्ति के लिये भटकते हैं, पर अशान्त रहते हैं। तृप्ति का अस्तित्व तृप्ति के आँगन तक ही है। अच्छा अब मैं क्या करूँ ? अमोलक बाबू बम्बई चले गये। उर्मिल एक लहर सी छोड़कर चली गई। उस लहर में एक ऐसी आँधी है जो मुझे उड़ाये लिये जा रही है।

"लेकिन जो शान्ति देवकीदेवी के आँचल में है वह तो कहीं भी नहीं। यहाँ स्वार्थ नहीं है, वासना नहीं है, सिर्फ प्रेम है पवित्र प्रेम।

देवकीदेवी मुझ से चाहतीं कुछ भी नहीं और मैं उनके लिये कुछ करने में समर्थ भी कहाँ हूँ! क्या कर सकता हूँ मैं उनके लिये ! और जैसे उनके पास कोई ऐसा अभाव ही नहीं जिसकी पूर्ति वे किसी से करवाना चाहती हों। अभाव और पूर्ति में वे कुछ अन्तर नहीं मानतीं। उनको अभावों में ही सन्तोष है, शान्ति है। जैसे उनका किसी से कुछ सम्बन्ध नहीं है, कोई लगाव नहीं है। पर मेरे लिये उनमें एक आकुलता अवश्य है। वह भी अपने सुख के लिये नहीं, मेरे सुख के लिये। चाहती हैं मैं बड़ा आदमी बनूँ। उनको मेरा यश चाहिये। वे मुझे धन-मान से भरपूर निहारना चाहती हैं और यह आज जिन साधनों से मिलता है वे मेरे पास कहाँ हैं! मैं ठहरा कवि, उस युग का कवि जिस युग में तिकड़म का घोर साम्राज्य है। आज झूठ और बेईमानी को सहयोगी बनाये बिना लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। और झूठ सच का सहारा मैं चाहूँ तो भी नहीं ले सकता। ख़ैर, मनुष्य को जितना मिले उतने में ही सन्तोष मानना चाहिये। कुछ भी हो, कितने भी संकट आयें, पर मनुष्य को सन्मार्ग से विचलित नहीं होना चाहिये।"

दीपक इस प्रकार न जाने कितनी उधेड़-बुन में लगे तर्क-वितर्क किये जा रहे थे। मनुष्य शायद सोते उठते बैठते कुछ न कुछ सोचता ही रहता है। जीवन में न आराम है न शान्ति, कोई भी किसी भी श्वास में खाली नहीं रहता। शारीरिक कर्मों से चाहे मुक्ति मिल जाये पर मानसिक हलचल से छुटकारा नहीं मिलता, मनुष्य को दिमाग़ी फ़ुर्सत नहीं मिलती।

दीपक और भी न जाने क्या क्या सोचते रहते पर सुबह हो गई। देवकीदेवी भी उठ बैठीं। नीरजा भी उठकर काम में लग गई। सुबह मानो प्रत्येक के लिये नई चेतना लेकर आई थी। सुबह आती है तो जैसे मरी हुई चेतना जी उठती है।

पर आज देवकीदेवी जब से सोकर उठी थीं अपनी खाट पर मौन

ही बैठी रहीं। उनके चेहरे पर एक विचित्र चिन्ता थी। जब थोड़ी देर तक वे कुछ न बोलीं तो दीपक ने कहा— "आज सबेरे सबेरे आप चिन्तित क्यों हैं?"

देवकीदेवी ने मुस्कराकर कहा— "कुछ नहीं ऐसे ही!"

दीपक— "फ़िर भी, क्या बात है?"

देवकी— "कुछ नहीं, वैसे ही एक स्वप्न देखा था।"

दीपक— "क्या स्वप्न देखा था?"

देवकी— "स्वप्न देखा था कि मैं मर गई हूँ।"

दीपक — "फिर?"

देवकी— "फिर यह कि मुझे एक रथ में तेज़ी से आकाश से परे ले जाया गया। वहाँ एक दाढ़ी वाले बैठे थे, बहुत बूढ़े। उनके चारों ओर और बहुत से सेवक बैठे थे। बहुत से काग़ज़ वहाँ फैल रहे थे। जो मुझे ले गये थे उन्होंने कहा— 'आज्ञानुसार हम इनको ले आये।' दाढ़ी वाले बाबा ने उत्तर दिया— 'अच्छा, कुछ दिन के लिये इनको फिर वहीं छोड़ आओ।'

"मैं लौटकर जमीन पर आई तो देखती क्या हूँ, मेरी लाश के चारों ओर लड़ाई हो रही है। क़त्लेआम मचा हुआ है। एक भयानक चीत्कार है।

"और इस चीत्कार में कोई फूट फूट कर रो रहा है। बस, इतने ही में आँख खुल गई। वही उसी स्वप्न के बारे में सोच रही थी।"

दीपक ने हँसते हुए कहा— "स्वप्न स्वप्न ही होते हैं। न जाने रोज़ दिन रात कितने स्वप्न देखते हैं। पर कुछ तत्व नहीं होता।"

देवकी— "पर इस स्वप्न और सत्य में क्या अन्तर है? आज नहीं

तो कल, कल नहीं तो परसों, एक न एक दिन मृत्यु तो निश्चित है।"

दीपक— "जब मरना होगा मर जायेंगे। जब तक जीना है मज़े से जियें।"

देवकी— "मरना इतना मुश्किल नहीं है जितना जीना मुश्किल होता है।"

दीपक— "जीवन और मरण रहस्य से भरे हुए हैं। न कुछ मुश्किल है न कुछ आसान। दुःख सुख मानने के हैं।"

देवकी— "ठीक है, लेकिन मुझे न जीने में खुशी है न मरने में गम। बात सिर्फ यह है कि मुझे अपने बाद नीरजा की चिन्ता है।"

दीपक— "चिन्ता की क्या बात है। उसे कोई दुःख नहीं होगा।"

देवकी— "मैं जानती हूँ कि तुम्हारे होते उसे कोई दुःख नहीं होगा पर तुम्हें उसे सुख देने में कितना दुःख उठाना पड़ेगा यह भी मैं जानती हूँ।"

दीपक— "आप व्यर्थ की चिन्ता न करें। मनुष्य पर जैसी पड़ती है वैसी सह लेता है। उठिये, आराम से ज़रा चाय वाय पियें तो आलस्य उतरे।"

इतने ही में नीरजा ने आवाज़ दी— "चाय तैयार हो गई। जल्दी निमटिये।"

दीपक और देवकीदेवी जल्दी जल्दी उठे। शौच आदि से निवृत्त हुए, हाथ मुँह धोया और फिर गर्म गर्म चाय चलने लगी। चाय पीते और बातें करते कराते काफी देर हो गई। इधर नीरजा के कालिज जाने का समय भी हो गया था। जैसे ही नीरजा ने कालिज जाने के लिये चप्पल पहनी वैसे ही डाकिये ने आवाज़ लगाते हुए कहा— "चिट्ठी लेना।"

नीरजा ने दरवाज़े पर जाकर डाकिये से दो लिफाफे लिये। लौटकर लिफाफे दीपक बाबू को पकड़ाती हुई बोली— "देर हो रही है, मैं कालिज जा रही हूँ।"

नीरजा कालिज चली गई और दीपक बाबू लिफाफे खोलने लगे।

७

पहला लिफाफा दीपक बाबू ने खोला, इसमें छः सात पृष्ठ की एक बड़ी चिट्ठी थी। दीपक बाबू को पढ़ने में छः सात मिनट लगीं।

देवकीदेवी ने पूछा— "बड़ा लम्बा पत्र है! जान पड़ता है बम्बई से अमोलक बाबू का होगा।"

दीपक— "हाँ, बड़ा मज़ेदार पत्र है।"

कहते हुए दीपक ने दूसरा लिफाफा भी खोला। इस लिफाफे के पत्र को पढ़ने पर दीपक बाबू के चेहरे पर कुछ उतार-चढ़ाव आये।

देवकीदेवी ने पूछा— "यह किसका पत्र है?"

दीपक— "खुशी और अफ़सोस दोनों ही का।"

देवकी— "आखिर क्या ख़त है?"

दीपक— "एक सरकारी नौकरी का पत्र है। मुझको चार सौ रुपये महीने की नौकरी का बुलावा है।"

देवकीदेवी ने खुश होकर कहा— "तो इसमें अफसोस की क्या बात है?"

दीपक— "अफसोस यह कि नौकरी यहाँ से तीन सौ मील दूर की है।"

देवकी— "कहाँ की है?"

दीपक— "भोपाल की है। रेडियो का बुलावा है।"

सुनकर देवकीदेवी पल भर के लिये चुप हुईं। फिर बोलीं— "तो जाओ न, ईश्वर की कृपा हुई है।"

दीपक— "यही तो मुश्किल है, ईश्वर कृपा भी करता है और कोप भी। मैं इतनी दूर आपको छोड़कर कैसे जा सकता हूँ!"

देवकी— "हमारी चिन्ता न करो, चले जाओ। ऐसा शुभावसर बार बार थोड़े ही आता है। यहाँ दिन रात काम करते हो, न तो आराम ही मिलता है और न कोई परिणाम ही सामने दीखता है। मैं तो ईश्वर से मनाती थी कि आपको कोई अच्छी नौकरी मिल जाये।"

दीपक— "पर यह निश्चित है कि आपको छोड़ कर मैं नहीं जाऊँगा। आप भोपाल चलें तो मैं चलूं।"

देवकी— "मेरे लिये कहीं भी जाना बस का नहीं है। वैसे यहाँ की चिन्ता मत करो, सब ईश्वर रक्षक है। हाँ, यह तो बताओ अमोलक बाबू ने क्या लिखा है?"

दीपक— "उन्होंने बम्बई आने को कहा है। लिखते हैं आपको भी ले आऊँ, यहाँ बड़ा बढ़िया जीवन है। समुद्र के बड़े सुन्दर दृश्य देखने को मिलेंगे। शाम के समय 'मैरिन ड्राइव' पर बड़ा आनन्द रहता है। और दोस्त, खूब ठाठ की ज़िन्दगी है। ईश्वर ने चाहा तो मैं तुम्हारे लिये यहाँ जल्दी ही एक बहुत बढ़िया कोठी बनवाऊँगा। सच कहता हूँ दीपक! बम्बई आओगे तो वहाँ को भूल जाओगे। क्यों जीवन सुखा रहे हो? यहाँ आओ, कुछ बहारें लो, कुछ रंगीनियों में रँगो। यहाँ का हैंगिग गार्डन बहुत अच्छा है। और एक से एक अद्भुत आकर्षण है यहाँ। यह तो बम्बई का पहला ही चमत्कार है। आगे आगे देखिये होता है क्या।"

कहते हुए दीपक हँसे। देवकीदेवी भी मुस्कराईं। तभी कुछ दोस्तों

ने आवाज़ लगाई— "दीपक बाबू, दीपक बाबू, दीपक बाबू!"

देवकीदेवी ने कहा— "चाण्डाल चौकड़ी आ गई जान पड़ती है। उठूँ, इनके लिये चाय वाय बनाऊँ।"

इधर देवकीदेवी उठीं, उधर चाण्डाल चौकड़ी आ धमकी। वैसे तो इस चाण्डाल चौकड़ी में सभी हजरत हैं, पर गजाधर तो हज़रतों के भी हज़रत हैं।

आते ही बोले— "नीचे समोसे गर्म बन रहे हैं, रसगुल्ले भी बड़े बढ़िया बने जान पड़ते हैं। ज़रा चतरू को आवाज़ देकर कहो कि दो दर्जन समोसे और दो दर्जन रसगुल्ले तो दे जाये।"

सुनकर दीपक कहने के लिये उठने ही वाले थे कि गजाधर स्वयं ही खिड़की खोल कर बोले— "अरे भाई चतरू! ये दीपक बाबू दो दर्जन समोसे और दो दर्जन रसगुल्ले मँगा रहे हैं, जल्दी ले आओ।"

रसगुल्लों का ऑर्डर दे गजाधर एक बड़ी कुर्सी पर आ विराजमान हो गये। चाण्डाल चौकड़ी के और मित्र चौधरी बाबू, दिवाकर और अर्जुनसिंह भी कुर्सियों पर ऐसे धरे गये जैसे बहुत बड़ी मंज़िल तय करके थके-थकाये आये हों और अब चार छः घंटे नहीं उठेंगे।

दीपक भी दीवार से कमर लगा आराम से बैठ गये और फिर सबकी ओर देखते हुए बोले— "कहिये, कहाँ कहाँ धावा बोलते हुए चले आ रहे हैं?"

गजाधर— "कहीं नहीं, अभी तो यह पहला ही हमला है। यहाँ से छक कर और तुम्हें साथ लेकर आगे चलेंगे। क्या अभी सोकर उठे हो?"

दीपक— "उठा कहाँ हूँ, उठाया गया हूँ। आप लोग न आते तो अब सोता।"

गजाधर— "अब सोते, तो रात भर क्या करते हो?"

दीपक— "करवटें बदलता हूँ।"

गजाधर— "हाँ, हाँ, मज़े हैं तेरे, भैया दीपक! रात भी सुनहरी, दिन भी सुनहरे।"

दीपक— "किस्मत हमारे साथ है। अच्छा, अब यह बतलाओ कि सुबह सुबह धमकने का असली मतलब क्या है?"

गजाधर— "मतलब क्या है! आज शाम को एक कवि सम्मेलन कर रहे हैं।"

दीपक— "क्या और कोई काम करने के लिये नहीं था?"

गजाधर— "था क्यों नहीं, बहुत से काम थे। पर ज़रा कविता-बाज़ी भी तो होनी चाहिये।"

दीपक— "कोई बाज़ी तुमसे बाकी भी रहेगी या नहीं?"

गजाधर— "बीवी मर चुकी है, जुआ मैं खेलता नहीं, पतंग बचपन में उड़ा कर छोड़ दिये। अब या तो चुनावों में चौपलेबाज़ी करता हूँ या मोर्चों पर गोलियों से खेलता हूँ और इस सब के लिये कवितायें सुन सुन कर ज़िन्दगी पाता हूँ। अच्छा, अब और बातें पीछे होंगी। ये जो समोसे और रसगुल्ले लिये चला आ रहा है, इन पर आक्रमण होना चाहिये।"

रसगुल्ले और समोसे मेज़ पर रख दिये गये। जैसे ही गजाधर ने रसगुल्लों की ओर हाथ बढ़ाया वैसे ही देवकीदेवी ने आवाज़ देते हुए कहा— "अभी शुरू मत करना, चाय और पकौड़ियाँ भी ला रही हूँ।"

पर गजाधर के बस का यह नहीं था कि हाथ में आया हुआ रसगुल्ला फिर दोने में रख दे। रसगुल्ला मुँह में धरा, खाते हुए बोले— "कोई

बात नहीं है, खूब प्रेम से बनालो पकौड़ियाँ। ये दो दर्जन रसगुल्ले क्या, पकौड़ियाँ तो इतने ही रसगुल्ले और खाकर भी खा लेंगे।"

और फिर चेन स्मोकर की तरह रसगुल्लों का मुँह से ताँता लगा दिया। दूसरे दो खाते थे तो गजाधर तीन। इस तरह दो दर्जन नहीं, छः दर्जन रसगुल्लों पर हमला बुला। और फिर पकौड़ियाँ चाय। जब सब कुछ पेट की शरण पहुँच लिया तो क्या कहते हैं, "अब तो और कुछ खाने के लिये कम से कम घंटा भर तो गुंजायश है नहीं। इसलिये किसी दूसरे चाण्डाल के यहाँ जाने से पहले एक घंटा भर यहीं सोना चाहिये।"

कहते हुए बिछी हुई खाट पर चादर तान कर लेट गये। पर पान के बिना नींद कैसे आती। क्षण भर बाद बोले— "भई पान आने चाहियें।"

पान भी मँगाये गये। गजाधर जी महाराज ने उठ कर पान खाया। जब जुगाली सी कर चुके तो लम्बी तान कर खुर्राटें भरने लगे। तीनों अन्य साथी भी अपने अपने आसन पर जम्हाइयाँ लेते हुए सो गये।

लगभग घंटा भर बाद गजाधर जी महाराज उठे। उठते ही बोले— "लाओ, पानी पिलाओ। फिर शौच जायेंगे और तब कहीं चलेंगे।"

उनके हुकुम के अनुसार पानी लाया गया। साहब ने पानी पीकर शौचालय की शरण ली। फिर हाथ मुँह धो ताजा होकर जच गये। बोले— "अब एक पान और खायेंगे।"

खाने पीने और सोने के बाद बातों का दौर चला। बातें जब चल पड़ती हैं तो कहीं से शुरू होती हैं और कहीं तक चलती हैं। बातों ही बातों में न जाने कितने विषय बदलते हैं। इसकी चर्चा, उसकी तारीफ़, इसका यश, उसका अपयश यही तो प्रायः बातों का नाटक होता है।

जब चार दोस्त बैठते हैं तो मानो सारे संसार के प्रश्न वहीं उपस्थित हो जाते हैं और उत्तर भी तुरन्त फूट पड़ते हैं।

चौधरी बाबू ने कहा— "स्वतन्त्रता तो आई पर साथ ही साथ अनैतिकता का कोई अन्त नहीं रहा। चोरी, रिश्वत, लूट-खसोट खाये जा रही है। हर आदमी इस फिक्र में है कि कैसे किसी का गला घोट कर अपना घर भरूँ।"

दिवाकर ने उत्तर दिया— "यथा राजा तथा प्रजा। भाई, जब पतीली ही ज़हर की है तो दूध कड़ुवा क्यों न होगा। और कहीं क्या, ये जितने भी रक्षक हैं, सब आराम करते हैं और हराम की खाते हैं। पुलिस, दफ्तर, कचहरी सब जगह कुछ धर्म नहीं रहा।"

अर्जुनसिंह को भी जोश आया, "अरे और क्या कहते हो भाई! मन्दिर में से मूर्तियों के छत्र ले जाते हैं, मस्जिद में से जूते उठ जाते हैं और गुरुद्वारे में से ग्रन्थ साहब के पन्ने ही निकाल कर ले जाते हैं।"

सुन कर सब को हँसी आ गई। और साथ ही गजाधर महाराज ने अट्टहास करते हुए कहा— "क्या मन्दिर, मस्जिद और गुरुद्वारों की बात करते हो। पहले अपना घर तो देखो दोस्त! मियाँ बीवी को धोखा देता है और बीवी मियाँ को धोखा देती है।"

दीपक ने व्यंग करते हुए कहा— "यह अपनी बीती बता रहे होंगे।"

गजाधर कुशाग्र बुद्धि तो थे ही, तुरन्त ही बोले— "यहाँ तो बिना बीवी वाले हैं। बीवी को स्वर्ग सिधारे वर्षों हो लिये।"

दीपक— "तो क्या बात हुई! धरती पर क्या स्वर्ग की अप्सराओं की कमी है? हर गली महकती है। हर बाज़ार में आकर्षण है।"

गजाधर— "सब तकदीर के सौदे हैं भाई! एक हम हैं कि स्वयं चूल्हा फूंकते हैं। और एक तुम हो कि आँगन में भीड़ है।"

दीपक— "चाण्डालों की कमी कहाँ है, सोकर उठा नहीं था कि घेर लिया।

गजाधर— "सँभल कर रहना, मरघट तक पीछा नहीं छोड़ेंगे।"

दीपक— "मेरा क्या बिगड़ेगा, तुम्हें ही बुढ़ापे में रँडवा बनना पड़ेगा।"

गजाधर— "कोई रँडवा नहीं होता। अरे भाई, यह कलयुग है कलयुग। यह साला ऐसा है कि इसमें जो न हो जाये वह थोड़ा है।"

गजाधर के मुँह से पूरी बात निकली भी नहीं थी कि शराब के नशे में चिमटा बजाते हुए कलजुग ने धमकते हुए कहा— "जै राम जी की दीपक बाबू! जै राम जी की। आज तो नशे पानी को एक सवा रुपया दे दो।"

कहते हुए कलजुग ने दीपक के आगे हाथ फैला दिया। दीपक ने जेब से सवा रुपया निकाल कर कलजुग के हाथ पर रखते हुए कहा— "लो कलजुग सवा रुपया और शराब मत पीना। देखो हमारे गजाधर बाबू क्या फरमा रहे हैं।"

कलजुग ने नाक में बोलते हुए कहा— "अजी ये, इनको कौन नहीं जानता, खूब जानता हूँ इनको! हाँ तो आप भी ज़रा बटुआ खोलिये और दिलवाइये सवा रुपया।"

गजाधर नशे के धन्धों से बहुत चिढ़ते थे। नशेबाज़ को अपने सामने झूमता देख ताव में कह उठे— "साला कलजुग है न!"

सुनते ही कलजुग को जोश आ गया। चिमटा हवा में तानता हुआ बोला— "क्या समझते हो अपने को, खोपड़ी के दो कर दूँगा।"

वह तो दीपक ने पकड़ लिया नहीं ताव में चिमटा चला ही देता।

गजाधर को इतनी बर्दाश्त कहाँ, तपाक से उठ खड़े हुए, बोले—
"होश में है या नहीं, एक तमाचे में सारा नशा झाड़ दूँगा।"

पर दीपक ने मामला सँभालते हुए कहा— "मुग़ालते में ताव क्यों खाते हो कलजुग! गजाधर जी तो आज के जमाने को कह रहे थे, तुम अपने को समझ बैठे।"

कलजुग— "ओ हो, क्षमा करना बाबू जी, ग़लती हो गई। बात यह है कि मेरा दिमाग कुछ खराब सा रहता है। मैंने बड़ा अपराध कर डाला। लो यह चिमटा, इसे मैंने आप पर उठाया था। अब इससे मेरे सिर के दो कर डालिये।"

कोई अपनी ग़लती पर जब स्वयं पश्चात्ताप करने लगता है तो कठोर से कठोर को भी दया आ ही जाती है। कुदरत बड़े से बड़े बवंडर को भी शान्त कर देती है। गजाधर का क्रोध शान्त हुआ। वे हँस पड़े। जैसे किसी पागल के बहकने पर किसी को हँसी आ जाती है। वे समझ गये कि कलजुग की बुराइयाँ उसके अपने कारण नहीं, दुनिया वालों की कुछ करतूतों के कारण हैं।

जब वातावरण में कुछ करुणा आई तो गजाधर जी बोले— "शराब मत पिया करो कलजुग! इससे छाती छलनी हो जाती है।"

कलजुग— "वह तो तभी हो चुकी थी जब मैंने शराब पीनी शुरू भी नहीं की थी। अब तो न तन है, न मन; एक हवा का पुतला घूमता है।"

उत्तर से गजाधर सन्नाटे में आ गये। सोचने लगे यह शराबी है या दार्शनिक, अथवा कोई दिलजले का ज्ञान! दीपक की तरफ देखते हुए बोले— "कलजुग तो पंडित मालूम होता है, बैठाओ इसे।"

दीपक कोई जवाब दें इससे पहले ही कलजुग ने "जय हो बाबू जी!"

कहते हुए कहा— "बैठने की फुर्सत नहीं है, श्मशान हमारी बाट देख रहा होगा। नशे पानी का काम बन चुका। पिरवा की दूकान से चाय के लिये पाव भर दूध लेंगे, बस कल तक के लिये छुट्टी। अब तो अगर परसों मरघट में ही पेट के लिये न मिला तो बस्ती में आयेंगे। बना रहे हमारा सूर्यकुंड वाला श्मशान।"

कहने के बाद कलजुग ने किसी के कुछ कहने सुनने की प्रतीक्षा नहीं की, लम्बे लम्बे डग भरे और चल दिया। गजाधर जी तथा अन्य मित्र देखते ही रह गये।

दीपक ने कहा— "देखा इस आवारा को।"

गजाधर— "कुछ समझ में नहीं आया। यह शराबी है, आवारा है, दार्शनिक है या कोई दुखी है? पर इतना अवश्य है कि मस्त है।"

दीपक— "हाँ, बिल्कुल बेफिक्र है। मरघट की लकड़ी पर रोटी सेंक लेता है और उसी पर चाय पका लेता है। न ओढ़ने बिछाने का फिक्र, नींद आई सो गया, मन आया उठ खड़ा हुआ।"

गजाधर— "क्या इसका कोई नहीं? इस पर किसी का नियन्त्रण नहीं चलता?"

दीपक— "हाँ, यह किसी को अपना नहीं मानता, इस पर किसी का दबाव नहीं। सिर्फ एक महात्मा ऐसे अवश्य हैं जिनको यह अपने से बड़ा मानता है। उनका ही थोड़ा बहुत कहा भी मान लेता है। बाकी तो सबसे यह चिमटा उठा कर बात करता है।"

गजाधर— "वे महात्मा कौन हैं?"

दीपक— "वे हैं भजनानन्दी महाराज चन्द्र जी। कोई कष्ट होता है उनको तो कलजुग उनकी सेवा करता है।"

गजाधर— "तो तुम इन आत्माओं को कब से जानते हो?"

दीपक— "बहुत दिन से। मैं सूर्यकुंड अक्सर जाता रहता हूँ।"

गजाधर— "यह बात है तो आज हम भी चलेंगे। चलो, आज वहीं घूम कर आयें।"

दीपक— "अच्छा प्रस्ताव है, मैं आज जाना भी चाहता था उधर। चलो चलें उधर ही। मौसम भी वर्षा के बाद धूप का है। ज़रा खूब घूम-घाम कर आयेंगे।"

गजाधर— "तो जल्दी से पकौड़ी बकौड़ी और मँगालो, फिर खा पीकर चलें।"

दीपक उठे, देवकीदेवी के पास रसोई में गये, जो कुछ पकौड़ी वगैरह बनी बनाई थीं सब उठा लाये। सभी मित्रों ने प्रेम से छकीं और फिर सूर्यकुंड चलने के लिये उठ खड़े हुए।

दीपक कहीं भी जाने से पहले देवकीदेवी से आज्ञा ले लिया करते थे। उनके पास जा धीरे से बोले— "ज़रा इनके साथ सूर्यकुंड तक घूम आऊँ।"

देवकी— "घूम आओ। पर क्या, जब होता है सूर्यकुंड चल देते हो। आना जल्दी, कहीं आधी रात करके लौटो। बाहर जाते हो तो यह भूल जाते हो कि यहाँ भी कोई बाट देखता होगा। बात यह है जब तक तुम नहीं आ लेते, न मुझे रोटी अच्छी लगती है न नीरजा को कुछ भाता है। दोनों दरवाज़े की तरफ़ देखती रहती हैं।"

दीपक— "नहीं, आज मैं जल्दी आऊँगा।"

देवकी— "तो जाओ।"

चाण्डाल चौकड़ी सूर्यकुंड की ओर चल पड़ी। छुट्टी और घूमने का मूड भी बड़ा बढ़िया होता है।

दिवाकर ने कहा— "पिछले दो तीन दिनों से वर्षा और जाड़े ने

सता रखा था। आज ज़रा इस धूप से जान में जान आई है।"

चौधरी बाबू बोले— "ऐसे ही खाली सूर्यकुंड जाकर क्या करेंगे। कुछ खाने पीने का सामान भी तो ले चलना चाहिये।"

गजाधर ने ज़बान पकड़ते हुए कहा— "अभी खाकर पेट नहीं भरा तो वहाँ जाकर हमें खा लेना।"

चौधरी बाबू— वहाँ जाते जाते हज़म नहीं हो जायेगा? अभी कह रहे हो पंडित जी महाराज! जब रसगुल्ले सामने आ जायेंगे तो हम एक खायेंगे और तुम तीन।"

गजाधर— "देखो, और चाहे जो कहो पर रसगुल्लों का नाम न लो, मेरे मुँह में पानी भर आता है।"

अर्जुनसिंह का भी बोल निकला, रस छलकाते हुए बोले— "हमें तो रसगुल्ले अच्छे नहीं लगते। कुछ और ही अच्छा लगता है। क्या सूर्यकुंड मरघट की ओर जाते हो, अरे कहीं नाच गाने में चलो न!"

दीपक— "क्या बात है अर्जुनसिंह! जान पड़ता है जवानी जोश खा रही है।"

अर्जुनसिंह— "भाई, बात यह है कि जवानी जोश सभी की खाती है। पर कोई सच्चा होता है और कोई झूठा। मैं तो सच बोलता हूँ। नाच देखना तो दूर रहा, जब किसी नर्तकी को देखता हूँ तो ही मेरा मन नाचने लगता है। नाचता तो तुम्हारा भी होगा दीपक बाबू! पर क्या, ज़रा शर्माते हो।"

दीपक— "सच बात है अर्जुनसिंह! वास्तविकता यही है जो तुम कह रहे हो। कौन है वह पुरुष जिसके मन में स्त्री को देखते ही गुदगुदी नहीं उठती! बस बात यह कि हम सभी अपने को दिखाते कुछ और हैं

और हैं कुछ और। अपनी करतूतों पर पर्दा डालने का प्रयत्न करते हैं।"

अर्जुनसिंह— "बस यही तो बात है दीपक बाबू तुम्हारी, जिस पर मैं मरता हूँ। दिल और ज़बान के एक हो।"

दीपक— "तुम्हें धोखा हो रहा है अर्जुनसिंह! कौन है वह जो असलियत नहीं छिपाता ?"

अर्जुनसिंह— "मुझे धोखा नहीं होता। मैंने बड़े बड़े पंडितों को पहचाना है। यह मत समझो कि मैं कम बोलता हूँ तो कुछ जानता ही नहीं। दीपक बाबू! तुम्हारी किताब के हर शब्द में सत्य होता है। तुम्हारी वाणी की ध्वनि में उज्ज्वल भावनायें बसी रहती हैं। तुम बोलते हो तो सत्य, तुम देखते हो तो सत्य, तुम्हारे हर स्पन्दन में सचाई है।"

दीपक— "अपने कथन में थोड़ा संशोधन कर लो। मेरा सच पुस्तकों के पृष्ठों पर शाश्वत स्रोतों से अमृत के झरनों की तरह झरता है। वह प्रकृति के पुष्पों में गुलाब की सुरभि उड़ाता है। और वही सच व्यवहार जगत में ऐसे ही ढक जाता है जैसे किसी धुएँ से काली चिमनी के अन्दर जलती हुई बत्ती की ज्योति छिपी रहती है।"

अर्जुनसिंह को दीपक की वाणी प्यारी लगी, पर गजाधर ने बातचीत में गम्भीर दर्शन आते देख विषयान्तर करने की भावना से कहा— "बस, बस, पंडितो! अपने अपने प्रवचन बन्द करो। कुछ सरस माल हो तो ज़बान चलाओ, अन्यथा व्यर्थ ही क्यों हमारे कान खाते हो! और अभी चलना कितनी दूर है? बहुत दूर हो तो ताँगा करलो, अपने बस का पैदल चलना नहीं है।"

दीपक— "क्यों घबराते हो दोस्त! कौनसी मंज़िलें तय करनी हैं?

वह सामने ही तो दीख रहा है देवी का मन्दिर। और उसके बराबर में ही वह लाल जो दीख रहा है, वह जिस पर बन्दर बैठा अमरूद खा रहा है, वही तो बाबा मनोहरनाथ का मन्दिर है। उसी में भजनानन्दी गुरु जी रहते हैं।"

चौधरी— "और वह कलजुग महाराज कहाँ रहते हैं? सच दोस्त, आदमी बड़ा मज़ेदार है।"

दीपक— "अजी, उसका मज़ा तुमने अभी कहाँ देखा है। दस बीस बार उसके पास आये गये तो वह आनन्द आयेगा कि जीवन भर याद रखोगे। वह भी उस मन्दिर के पीछे श्मशान में रहता है।"

बातें करती हुई चाण्डाल चौकड़ी कुछ और आगे बढ़ी। रास्ते में चौक में एक संतरे वाला बैठा था।

दीपक ने कहा— "किसी साधू के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिये। आओ, थोड़े संतरे ले लें।"

कहते हुए दीपक ने दो दर्जन संतरे लिये। गजाधर ने कहा— "क्या ये सारे संतरे गुरुजी महाराज की भेंट चढ़ेंगे, या इनमें से अपने लिये भी कुछ हैं?"

दीपक— "इनमें से तुम्हें एक भी नहीं मिलेगा। यदि मुँह में पानी आ रहा हो तो छः सन्तरे और ले लें।"

गजाधर— "तो छः सन्तरों के पैसे इसे और दो।"

दीपक ने छः सन्तरों के पैसे उसे और दिये। गजाधर जी महाराज ने छः सन्तरे काग़ज़ के खलते में डलवा कर ले लिये। थोड़ी दूर चलने के बाद बाबा का मन्दिर आ गया। समय लगभग दोपहर ढलने का सा हो गया था। भजनानन्दी जी महाराज अपने मिट्टी के ढूले पर कोहनी का तकिया लगा लेटे हुए थे। दीपक ने उनके चरण छुए। चाण्डाल

चौकड़ी के अन्य मित्रों ने भी दीपक की नकल की। भजनानन्दी महाराज गुरुजी आगन्तुकों के आने पर उठ बैठे। कोने में पड़े आसनों की ओर संकेत करते हुए कहा— "आसन ले लो और बैठ जाओ।"

चाण्डाल चौकड़ी ने आसन उठाये, बिछाये और विराज गये। मनुष्य पर वातावरण का विशेष प्रभाव पड़ता है। वह जैसे संग में आता है वैसा ही होने लगता है। सत्संग की बड़ी महिमा है। कुसंग में हानि और सत्संग में लाभ ही लाभ है। भजनानन्दी के सामने आसन पर बैठते ही ऐसा अनुभव हुआ जैसे शान्ति-लोक में आये हों, मानो गर्मी से झुलसता हुआ कोई यात्री एयरकण्डीशन्ड रूम में आ बैठे। यह मन्दिर की एक कच्ची पक्की कोठरी है, इसके बाहर एक बरामदा है। दूसरी ओर बिना जंगले की एक खिड़की। आस-पास खंडहर, एक तरफ शंकर भगवान का मन्दिर, सामने बाबा मनोहरनाथ की समाधि, कुछ दूरी पर हिन्दी के परम भक्त पंडित गौरीदत्त जी की स्मृति और दूर दूर तक कमल के फूलों से लदा हुआ विशाल सूर्यकुंड, जहाँ तहाँ वृक्ष और कहीं कहीं दूरी पर आम के बाग, फिर जहाँ तक दृष्टि जाती वहाँ तक दिखाई देने वाले खेत, एक अद्‌भुत छटा थी इस पवित्र स्थान की। एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर दौड़ते हुए बन्दर, पक्षियों के कलरव, और चौराहे पर गाते हुए किसान की मनहर आवाज़ मन प्लावित कर देती है। भजनानन्दी संत की कुटी को देख शहर का वैभव फीका प्रतीत होता था। यहाँ पीड़ा नहीं थी, क्लेश नहीं था, असंतोष नहीं था, जीवन की काँय काँय यहाँ से बहुत दूर थी। बाबा तुलसीदास ने ठीक ही कहा है—

"सन्त समागम हरि कथा, तुलसी दुर्लभ दोय।"

दीपक ने फल महात्मा के चरणों में रखे। महात्मा ने संतरे उठाते हुए कहा— "अच्छा, संतरे ले आये, तो लो सब पाओ!"

और फिर दो दो संतरे सभी को पकड़ा दिये। दीपक ने मुस्कराकर

गजाधर की ओर देखा। गजाधर भी हँस पड़े और साथ ही हँस पड़े अन्य साथी। महात्मा भी आनन्द से हँसे, बोले— "हम सब समझते थे।"

चौधरी बाबू ने कथन पकड़ते हुए कहा— "क्या समझते थे महात्मा!"

महात्मा— "यही कि आप लोग संतरे खाने के बहुत इच्छुक थे। जहाँ से संतरे लिये वहाँ से यहाँ तक की राह भी कठिनता से कटी होगी।"

अर्जुनसिंह ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा— "आपको कैसे मालूम? बात तो सही है।"

महात्मा— "संसार में कौन ऐसा है जिसका इन्द्रियों पर नियन्त्रण है! मन और जीभ की चंचलता तो सर्वविदित है। संतरों की प्राप्ति और आपकी हँसी देख अनुमान लगा लिया कि संतरों को लेकर आपमें कोई विनोद चला होगा। अच्छा तो लो और खाओ, खूब आओ?"

कहते हुए महात्मा संतरे छील छील कर देने लगे। चाण्डाल चौकड़ी भी खाने पर मँढ गई। गजाधर जी चाहे किसी और मामले में संकोच कर जायें पर खाने के मामले में तो हाथ रोकना जानते ही न थे। एक खाया, दो खाये, तीन खाये, चार खाये, खाते ही चले गये।

जब काफी खा चुके तो कहने लगे, "पर हम संतरे तो दो दर्जन ही लाये थे, खा तो तीन चार दर्जन गये होंगे।"

महात्मा— "नहीं, ऐसा नहीं है। आपको महसूस हो रहा है, वास्तव में आपने अभी दो तीन ही खाये हैं।"

गजाधर भी सर्वतोमुखी पंडित थे। पहचान गये कि महात्मा कोई करामाती हैं। पर मज़ाक करने की तो विशेष आदत थी ही, बोले— "जादूगर जान पड़ते हो देवता! अब संतरों से तो मन थक गया, ज़रा कुछ मिठाई-विठाई हो जाये।"

कहने की देर थी कि महात्मा ने अपना कमंडल उठाया, उसमें गर्म गर्म बालूशाही थे। यद्यपि गजाधर का पेट बोल रहा था फिर भी गर्म गर्म बालूशाही खाने का लोभ संवरण न कर सके। खाते हुए बोले— "बस महाराज, हम तो अब बस्ती में नहीं जाते, यहीं आपके चेले बने जाते हैं। एक पान और खायेंगे।"

महात्मा ने तकिये के नीचे से एक डिबिया निकाली और पान हाजिर कर दिया। जब मनोरंजन से तृप्ति हो गई तो कुछ आध्यात्मिक चर्चा चल पड़ी। जीव क्या है, ईश्वर का अस्तित्व क्या है, कौन मरता है, कौन पैदा होता है, कौन भोगता है, कौन भुगवाता है, आदि आदि।

भजनानन्दी भी मूड में थे। सब प्रश्नों का उत्तर देते रहे। कहने लगे — "मरता होगा जो मरता होगा, हमारे सामने तो मृत्यु है ही नहीं। मृत्यु ही क्या, संसार ही हमारे सामने नहीं है।"

गजाधर कोरे जिह्वा-रसिक ही नहीं थे।। शास्त्रार्थ भी खूब करते थे। न जाने कितने तर्क किये उन्होंने भजनानन्दी जी महाराज से। यहाँ तक कि रात हो गई। पर बात खत्म न हो पाई।

महात्मा ने दीपक से पूछा— "देवकीदेवी का क्या हाल है?"

दीपक— "ठीक हैं।"

उत्तर सुनकर भजनानन्दी हँसे। दीपक ने महाराज को हँसते देख गम्भीर होकर कहा— "क्यों गुरुदेव, हँसे क्यों?"

महात्मा— "हँसा इसलिये कि तू कहता है देवकीदेवी अच्छी हैं, पर वे तेरी चिन्ता में न सोती हैं न खाती हैं। आश्चर्य है जिसे किसी का भी मोह नहीं वह तेरे मोह में संसार से बँधी पड़ी है। और यह संसार ओस की एक बूँद की तरह है। पर किसी का कुछ दोष नहीं, यह तो ऋण बन्दी संसार है। अच्छा, अब हमारा भजन का समय हो रहा है।"

यह कहते ही कहते भजनानन्दी ने खिड़की से आकाश की ओर देखा और चौंक कर बोले— "ओहो, बेचारे को ज़िन्दा ही फूँक दिया।"

दीपक—"क्या बात है गुरुजी ! किसने किसको ज़िन्दा फूँक दिया ?"

महात्मा— "कुछ नहीं भैया ! सब ऐसा ही है। यह बराबर में श्मशान है न, इसमें अभी अभी किसी की चिता जलाई गई है। पर भैया, जिसकी चिता जलाई गई है वह ज़िन्दा ही था। अब उसका चेतन निकल कर गया।"

चौधरी बाबू, अर्जुनसिंह और दिवाकर महात्मा के चमत्कारों पर आश्चर्यान्वित थे। पर गजाधर कुछ और ही ढंग से देख रहे थे। वे मन ही मन में सोच रहे थे कि ये महाराज अवश्य ही कोई ऊँचे दर्जे के परमहंस हैं। महात्माओं के पास बैठने और उनसे ज्ञान प्राप्त करने में गजाधर जी की विशेष रुचि थी। भजनानन्दी महाराज कह चुके थे कि जाओ, फिर भी चाण्डाल चौकड़ी जमी हुई थी।

इधर भजनानन्दी महाराज भजन में बाधा पड़ने से दुखी हो रहे थे। जब पाँच सात मिनट के मौन पर भी चाण्डाल चौकड़ी न उठी तो भजनानन्दी महाराज आँख मूँद कर बैठ गये। तभी एक काला साँप एक कोने से आता दिखाई दिया। चाण्डाल चौकड़ी डर कर 'साँप साँप' चिल्लाती हुई उठी। भजनानन्दी महाराज की भी आँख खुल गई। सामने साँप को देख हँसते हुए बोले— "डरो मत, यह जीव किसी को कुछ नहीं कहेगा।" और फिर कोने में रखी हुई लठिया पर उसे उठा बाहर के मैदान में यह कहते हुए छोड़ आये— "ये तुम से डरते हैं भाई ! थोड़ी देर कहीं और घूम लो।"

पर चाण्डाल चौकड़ी ने भजनानन्दी महाराज को नमस्कार करते हुए कहा— "बस महाराज ! हमें आज्ञा दीजिये, फिर कभी आयेंगे।"

८

चाण्डाल चौकड़ी ने तालाब के किनारे आकर दम लिया। काल के साक्षात् स्वरूप विकराल सर्प-दर्शन से सभी के होश उड़ चुके थे। सच है, मृत्यु सभी के लिये ध्रुव है पर मृत्यु से कौन नहीं डरता ! मरते सभी हैं पर मरना कोई नहीं चाहता।

दिवाकर ने कहा— "यार, ये गुरु जी तो बड़े विकट जान पड़ते हैं। कैसे भयानक स्थान पर रहते हैं ! क्या रात को इन्हें अकेले यहाँ डर नहीं लगता ?"

चौधरी— "हाँ, बड़े ही अनोखे जान पड़ते हैं। यह तो ऐसा स्थान है जहाँ डर को भी डर लगता है।"

दीपक— "क्यों, डरने की क्या बात है? न कर न डर। वास्तव में डर उसी को लगना चाहिये जो किसी का बुरा करता है।"

गजाधर ने ठहाका मारते हुए कहा— "इस नगर में तो सिर्फ मैं ही ऐसा हूँ जो किसी का बुरा नहीं करता। अब तक एक मुसीबत थी, खाने के लिये कमाना पड़ता था। अब उससे भी पिंड छूट गया। सवेरे महात्मा की शरण में आ गये, शाम को चले गये। भक्तजन प्रसाद लाते ही रहते हैं, अपनी तृप्ति के लिये काफी है। हम तो ऐसे ही मालदार साधु की तलाश में थे।"

दीपक— "अजी एक क्या, एक से एक मालदार साधु लो ! अभी तो एक ही देखे हैं। ज़रा आगे आगे चलो।"

गजाधर— "चलो जहाँ भी चलो, अपने राम को तो बैठने में आलस्य आता है। घूमने से तबियत ताज़ा होती है। तो कहिये दीपक जी महाराज, अब कहाँ चलना है ?"

दीपक— "श्मशान में।"

गजाधर— "तो क्या ज़िन्दा ही श्मशान में जाना चाहते हो ?"

दीपक— "मरने के बाद जाने में क्या मज़ा आयेगा ! अगर श्मशान से कुछ लेना है दोस्त ! तो वहाँ जीवित को ही जाना चाहिये। श्मशान ही वह स्थान है जहाँ जीनेवालों की मिट्टी संसार को ज्ञान देती है। श्मशान ही तो संसार का मौन शिक्षक है।"

गजाधर— "यह बात है तो चलो, जहाँ इच्छा हो चलो।"

चाण्डाल चौकड़ी ने श्मशान में प्रवेश किया। श्मशान के द्वार से ही उन्होंने देखा कि कोई एक चिता के चारों ओर चक्कर पर चक्कर लगा रहा है। उसके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं है। चक्कर काटता हुआ वह कभी कूदता है, कभी जलती हुई चिता को फाँद जाता है।

यह विचित्र दृश्य देख अर्जुनसिंह ने डरते हुए कहा— "यह क्या है ?"

गजाधर ने भी गौर से देखते हुए कहा— "लो, बस आज मरे।"

चौधरी बाबू ने तो दूर से डर कर चिल्लाते हुए कहा— "अरे भागो, भूत है भूत !"

फिर तो एकदम सब डर गये, "भूत भूत" कहते हुए भाग खड़े हुए। पर इन सब के डरने, भागने और चिल्लाने से भूत की भांग उतर गई। उसने नाचना बन्द कर दिया। श्मशान के द्वार की ओर देखा और फिर चिल्लाकर बोला— "कौन है जो मुझे भूत कहता है ? मैं भूत नहीं हूँ, भूतों का भी बाप हूँ, भूतनाथ हूँ, भूतनाथ !"

भूत की आवाज़ पहचानते हुए दीपक ने कहा— "क्यों डरते हो, यह तो कलजुग है, कलजुग।"

चौधरी बाबू— "तो क्या कलजुग रात में भूत लीला करता है?"

दीपक— "अजी मत पूछो, न जाने कितनी लीलायें करता है। आओ वापिस चलें श्मशान में।"

अर्जुनसिंह— "अरे भई, वक्त रात का है। दूर दूर तक चिड़िया का बच्चा दिखाई नहीं देता, कहाँ इस समय श्मशान में चलते हो, चलो घर चलें।"

इतनी देर के संवादों में गजाधर में भी जीवन आ चुका था। अकड़ते हुए बोले— "क्या अभी से घर जाने की बात करते हो, जरा तसल्ली से चलेंगे। चलो, अब तो पहले कलजुग से झक करेंगे।"

एक ने कही, दूसरे ने मानी और सब हो गये ज्ञानी। हाँ में हाँ मिलाते फिर सब श्मशान में घुस गये। कलजुग ने रात में चार पाँच चाण्डाल आते देख पल भर तो कुछ न कहा, फिर चिल्लाता हुआ बोला— "कौन हो?" तथा कहते कहते ही उसने श्मशान में से एक जलती हुई लकड़ी उठा ली, और तन कर खड़ा हो गया।

चाण्डाल चौकड़ी के फिर पैर उखड़ गये। सब की पहलवानी काफूर हो गई।

दीपक ने दिलासा देते हुए कहा— "घबराओ नहीं, कलजुग भूत दीखता है, डरावना लगता है, पर न वह भूत है न कोई भयानक। जैसे जैसे उससे घुलो मिलोगे, वैसे ही वैसे आनन्द भोगोगे।"

दिवाकर— "और कहीं उसने जलती लकड़ी मार दी तो?"

दीपक— "नहीं, मारेगा नहीं, आप देखिये।"

कहते हुए उसने ज़ोर से आवाज़ दी— "कलजुग पंडित !"

कलजुग ने जलती लकड़ी चिता में फेंकते हुए उत्तर दिया— "कौन, दीपक बाबू ! चले आओ।"

चाण्डाल चौकड़ी मूँछें पैनाती हुई कलजुग के निकट जा पहुँची। कलजुग ने श्मशान के कुएँ के बराबर में साफ़ जगह पर एक फटी हुई बोरी बिछादी और कहा— "बैठो, बाबू लोगो !"

चाण्डाल चौकड़ी विराजमान हो गई। कलजुग ने अपना थैला खोला। उसमें से काग़ज़ के दो बड़े बड़े थैले निकाले। इनमें से एक में मिठाई थी और दूसरे में नमकीन। फिर एक थैला और निकाला। उसमें फल थे, सेव, सन्तरे और कुछ केले। फिर उसने एक बोतल निकाली। यह शराब की बोतल थी। जब सब चीज़ें निकाल चुका तो चाण्डाल चौकड़ी की ओर देखता हुआ बोला— "लो जीमो।"

दीपक ने मुस्करा कर गजाधर को देखा। गजाधर भी मुस्कराये और फिर बोले— "यार, तुम आदमी मज़ेदार हो, कलजुग !"

कलजुग— "सब भगवान की मौज है बाबू जी ! खाने पीने और खिलाने से तो सामग्री बढ़ती है। खाओ, खूब खाओ !"

यद्यपि सभी का पेट भरा हुआ था, पर जीभ नहीं भरी थी। सच है जिह्वा भी बड़ी डिसलने वाली होती है। तभी तो कहा जाता है, मीठे के लालच झूठा खा लेते हैं। पेट भरा हुआ था, छक कर व्यंजन खा चुके थे। फिर भी कलजुग के नमकीन और मीठे पर मुँह में पानी भर आया।

हाथ बढ़ाते हुए बोले— "सामने चिता जल रही है, ऐसे में खाना अच्छा तो नहीं लगता।"

कलजुग को जैसे किसी ने अनुचित बात कह दी। वह तपाक से

बोला— "क्या बात कहते हैं बाबू जी! यह संसार है संसार। इसमें लोग चिता पीछे जलाते हैं, पहले पेट की आग बुझाते हैं। जब किसी के यहाँ मौत हो जाती है तो पड़ौसी पहले खा पीकर मुर्दा उठाने आते हैं। और यही नहीं, बस मुझ से मत पूछो, मैं श्मशान में रहता हूँ और दुनिया देखता हूँ।"

दीपक— "क्या देखते हो, कलजुग!"

कलजुग— "जो देखता हूँ वह किसी ने नहीं देखा होगा।"

दीपक— "तो जो किसी ने नहीं देखा वह हमें भी तो दिखाओ।"

कलजुग— "दिखा सकता हूँ पर कोई लाभ नहीं। तुम्हारे लिये एक तमाशा होगा और जो देखोगे उससे कुछ हँसते हुए जीवन रोने लगेंगे।"

कलजुग के कहने में कौतूहल था, गजाधर ने उत्सुकता से कहा— "तो आज से तुम हमारे दोस्त हुए कलजुग! दिखा दो वह तमाशा जो हमने दुनिया में अब तक नहीं देखा।"

कलजुग— "दिखा दूँगा पर डरोगे तो नहीं?"

अर्जुनसिंह— "नहीं, बिल्कुल नहीं डरेंगे।"

कलजुग— "पहले एक बात के लिये तीन वचन और भरो।"

गजाधर— "हम तैयार हैं।"

कलजुग— "जो कुछ मैं दिखाऊँगा वह देखकर अपने पेट में ही रखोगे।"

गजाधर— "ऐसा ही होगा।"

कलजुग— "क्यों दीपक बाबू! किसी से कहोगे तो नहीं?"

दीपक— "देखो कलजुग! तुम समझदार आदमी हो। वह बात मत कहो जो नहीं कहनी चाहिये। जो किसी से कोई बात कहकर यह कहता

है कि तुम किसी से कहना मत, वह गलती करता है। मनुष्य एक बार को लोहे के चने पचा सकता है पर बात पचाना बड़ा मुश्किल है। इस लिये मैं वायदा नहीं करता, पर प्रयत्न अवश्य करूँगा।"

कलजुग— "बस बस, तुम बढ़िया आदमी हो, सच्ची बात कह दी। इसलिये मैं अब तमाशा नहीं दिखाऊँगा।"

दीपक— "देखो कलजुग! यह बात गलत है। तमाशा तो तुमको दिखाना पड़ेगा। तुम हमारे दोस्त हो न!"

कलजुग— "मैं जब तक शराब नहीं पीता सबका दोस्त रहता हूँ। शराब पीते ही मुझे दुनिया में सब दुश्मन दिखाई देने लगते हैं। इसलिये मैं सबसे अलग कोने में शराब पीता हूँ। तुम भी पियो शराब, आज हमारे साथ हमप्याला और हमनिवाला हो जाओ!"

दीपक— "नमकीन और मिठाई में साथ दे सकते हैं, शराब हम नहीं पीते।"

कलजुग— "तुम दुनिया में बेकार आये। दुनिया खाने पीने और मौज उड़ाने के लिये है।"

गजाधर— "देखो कलजुग! और बातें बहुत हो चुकीं, वह जो तमाशा तुम दिखाने को कह रहे थे दिखाओगे न?"

कलजुग— "घर आये अतिथियों को निराश नहीं करना चाहिये। दिखाऊँगा, पर रात को दो बजे।"

दीपक— "दो बजे ही सही।"

कलजुग— "पर दो बजे तक तुम यहाँ ठहरोगे?"

चाण्डाल चौकड़ी ने एक साथ ही उत्तर दिया, "हाँ, ठहरेंगे क्यों नहीं?"

कलजुग— "हाँ, ठहरेंगे क्यों नहीं ! आपके लिये तो ठहरने में कोई दिक्कत नहीं। पर आप लोगों के घरों में जो परेशानी होगी उनके लिये गालियाँ कौन खायेगा ? वे बेचारी देवकीदेवी दीपक बाबू के लिये परेशान होंगी। उस दिन बेचारी भीषण वर्षा में भीगती हुई यहाँ आईं। सचमुच वे बड़ी भली देवी हैं, देवी !"

दीपक ने एकदम गम्भीर होते हुए कहा— "तुम ठीक कहते हो कलजुग ! दुनिया में पहचानने वाली आँखें सभी के पास नहीं होतीं।"

गजाधर— "हम सब को खूब पहचानते हैं। पर ये इधर उधर की बातें छोड़ो, तुम्हारी बातें दिलचस्प हैं, तुम्हारा तमाशा भी दिलचस्प होगा। तो दिखाओगे न तमाशा !"

कलजुग— "दिखाऊँगा, जरूर दिखाऊँगा। देखो वह जो मरघट के पीछे खंडहर पड़ा है वहाँ होता है वह तमाशा। पर सावधान, चुपचाप मेरे साथ चलना। तमाशा देख लेना पर तमाशा करने वाले तुम्हें न देखने पायें। मुँह से एक शब्द भी नहीं निकलना चाहिये।"

कलजुग के कथन में कुछ अजीब आकर्षण था। सभी तमाशा देखने को तैयार हो गये। पर पहले कलजुग ने अपना तमाशा शुरू किया। शराब की बोतल खोली और मुँह से लगाकर पी गया। जब नशा होने को हुआ तो कलजुग ने कहा— "चलो मेरे साथ, चुपचाप इस दीवार से चिपटे हुए चले चलो।"

चाण्डाल चौकड़ी कलजुग के साथ चल पड़ी। कुछ दूर चलने के बाद कलजुग ने कहा— "लो इस पेड़ के पीछे छिप कर बैठ जाओ।"

चाण्डाल चौकड़ी पेड़ के पीछे छिप कर बैठ गई। थोड़ी ही देर में क्या देखते हैं कि एक साइकिल सवार दीवार के पास आकर रुका। साइकिल पर उसके साथ एक बारह तेरह वर्ष की लड़की थी। साइकिल

सवार ने साइकिल दीवार के साथ खड़ी की। हैंडिल पर टँगे थैले में से कुछ मिठाई निकाल कर लड़की को खिलाई और फिर लड़की को पकड़ ज़ोर से चिपटा लिया। उसके बाद एक भयानक कांड गुज़रा। लड़की की एक बार ज़ोर से चिल्लाने की आवाज़ तो सुनी पर फिर कुछ सुनाई न दिया। अँधेरे में साफ़ साफ़ कुछ दिखाई भी न पड़ रहा था। गजाधर ने कलजुग से कहा— "चल कर देखें क्या मामला है।"

कलजुग ने दबाते हुए कहा— "नहीं, क्या देखोगे, यहाँ ये कांड रोज होते हैं। देखा तुमने, सामने चिता जल रही है और इधर यह वीभत्स दृश्य हो रहा है।"

बातें चल ही रही थीं कि एक दम धम से हुई। कलजुग ने चौंक कर कहा— "गजब हो गया, देखा तुमने, साइकिल सवार ने लड़की जलती चिता में फेंक दी।"

दहाड़ता हुआ बोला— "कौन है रे, ठहर जा!"

कलजुग ने यह कहा और साइकिल सवार साइकिल पर चढ़ कर दौड़ गया। कलजुग भी उसके पीछे दौड़ा। दौड़ते दौड़ते कलजुग ने कहा— "दीपक बाबू! चिता में पड़ी हुई लड़की को उठाना, मैं इस साले को पकड़ के लाता हूँ।"

कलजुग और चाण्डाल चौकड़ी दौड़ती हुई आगे बढ़ी। साइकिल सवार ने साइकिल हवा कर दी। कलजुग भी हवाई जहाज़ की चाल से उड़ चला। उसने दौड़ कर साइकिल वाले को धक्का दिया। साइकिल सवार गिरा। उसने उठते उठते अपनी जेब से एक तेज़ चाकू निकाला और आव देखा न ताव कलजुग पर झपट पड़ा। कलजुग ने ऐसे कितने ही चाकूमार देखे थे। चाकू का वार हाथ पर सहा और फिर किसी ऐसी तरकीब से चाकू और चाकू मारने वाले का पहुँचा पकड़ा कि

मरोड़ी देते ही चाकू कलजुग के हाथ में आ गया। फिर चाकू मारने वाले के दो तीन चाकू कलजुग ने खचाखच भोंक दिये। जब वह गिर पड़ा तो चाकू उसकी आँतों में घुसेड़ दिया और चाकू मारने वाले का उसी के चाकू से काम तमाम कर दिया। फिर उसकी साइकिल एक पुराने कुएँ में फेंक दी। लाश कंधे पर उठाई और मरघट में अपने स्थान पर वापिस आ गया। आते ही उसने वह लाश एक जलती हुई चिता में रख दी। इधर उधर जो चिताएँ जल रही थीं, उनकी लकड़ी भी उसी चिता में रख दी।

चाण्डाल चौकड़ी कलजुग का यह तमाशा देखती रही। जब कलजुग ने चाकू मारने वाले का दाह संस्कार पूरा कर दिया तो गजाधर ने अधजली बेहोश लड़की को दिखाते हुए कहा— "तुम्हारी आज्ञानुसार हमने इस लड़की को चिता से निकाल लिया। अब क्या करें?"

कलजुग— "करो मेरा सिर! जल्दी से इसे फिर चिता में फेंक दो। जरा सा भी मुद्दा नहीं रहना चाहिये। वह साइकिल सवार बड़ा बदमाश था और मुझ पर चाकू लेकर टूट पड़ा। मैंने उसका काम तमाम करके उसे चिता में फेंक दिया। यह लड़की अब बच नहीं सकती। यदि यह जीवित रही तो बड़ा संगीन मुकद्दमा चलेगा। इसे भी जल्दी से फूँक दो और भाग जाओ यहाँ से। नहीं तो पता नहीं क्या आफत सर पर आ जाये। देखो वह "राम राम सत्" की आवाज़ आ रही है। देखो जल्दी करो, कोई मुर्दा आ रहा है।"

गजाधर और अर्जुनसिंह ने अधजली लड़की फिर चिता में रख दी और फ़िर दीपक की तरफ़ देखते हुए बोले— "भागो यहाँ से, कहाँ आ फँसे! एक ही तमाशा देख कर भर पाये! कसम खा लो जीवन में यह घटना किसी से नहीं कहेंगे। जल्दी से नौ दो ग्यारह हो जाओ। कहीं हथकड़ियों की नौबत न आ जाये।"

चाण्डाल चौकड़ी चली गई। कलजुग अपने टाट पर आ लेटा। लेटे ही लेटे उसने शराब की एक बोतल और चढ़ाई और आप ही आप कहने लगा— "सचमुच मैं कलजुग नहीं, कलजुग आज का जमाना है। मनुष्य मरघट में भी कैसा कर्म करता है। कहते हैं मरघट में वैराग्य जागता है पर यहाँ तो मरघट में क्या नहीं होता। आज यह बलात्कार था, कल उन डाकुओं ने डाके के माल का यहाँ बटवारा किया। परसों उस औरत की लाश जलाने आये थे जिसे उसके ही पति ने जला डाला। कैसा भयानक है यह संसार! जब से इस मरघट में आया हूँ एक न एक कांड होता ही रहता है। कोई प्रेत-सिद्धि के लिये आता है, कोई नशा पानी करने आता है। और यह खंडहर जिसमें सगे भाई ने भाई को कत्ल कर दबाया हुआ है, न जाने कितने खून दबे पड़े हैं इस मरघट की मिट्टी में! दुनिया के झगड़ों से दूर मरघट में आकर रहना शुरू किया, पर यहाँ भी शान्ति नहीं। नशे में ज़िन्दगी की सारी भूलें डुबा कर ग़म ग़लत करना चाहता हूँ, पर कौन ग़म ग़लत होने देता है! मैं एक फ़कीर हूँ। पहले लोग मुझे पागल कहते थे, दीवाना कहते थे और अब मैं मस्तराम हूँ, कलजुग हूँ।"

कहते कहते कलजुग हँसा और फिर बड़बड़ाने लगा— "पहले मैं दुनिया से डरता था, अब दुनिया मुझ से डरती है। लोगों ने मुझ पर ईंटें फेंकीं, पत्थर फेंके, मेरे कपड़े उतारे। क्या जुल्म है जो मुझ पर नहीं हुआ! और आज जो भी मुझ पर जुल्म करता है मैं उसको ठिकाने लगा देता हूँ। आज मैं बहुत बड़ा खूँखार हूँ। फिर भी भले के साथ भला हूँ। मैं दूसरों का सर काट सकता हूँ। मैं दीपक बाबू को अपना सर भी दे सकता हूँ। उसने मेरा दर्द समझा। मुझे उसने अपनी कलम में स्थान दिया। वह मुझे भला कहता है। लेकिन दीपक जलने के अलावा और पाता ही क्या है! बाबू साहब जले हैं और जलते ही रहेंगे।

ठीक कहा है किसी ने 'बद अच्छा बदनाम बुरा।' दुनिया का हर इन्सान बदनामी का कोई न कोई घाव छिपाये फिरता है। कौन है वह जिसके जीवन की कहानी में कोई पाप नहीं भरा ? मैंने आज एक खून कर डाला। लेकिन मुझे इस खून करने का कोई पश्चात्ताप नहीं, मैं उसका खून नहीं करता तो वह मेरा खून कर देता। अब बिल्कुल शान्त होकर सो जाना चाहिये। शराब की गहरी नींद सब कुछ भुला देगी।"

मन मन में कल्पनायें करता करता कलजुग सो गया। उधर चाण्डाल चौकड़ी रास्ते के तमाशे देखती चली जा रही थी। एक जगह भीड़ देखी। मालूम हुआ कि किसी ने अपने बेटे और अपनी माँ को क़त्ल कर दिया। दूसरी जगह भीड़ देखी, पता चला कि एक बालिका का गला घोट कर उसके गले में पड़ी चेन कोई ले गया। आगे चले तो नाले के एक कोने पर नवजात शिशु पड़ा देखा। कुछ और चले तो देखा कि कोई किसी के हाथ से रोटी छीनकर भाग गया। कुछ ही कदम पर नग्न औरतों का जलूस निकालते फिरकापरस्तों के हर्ष-नाद सुने।

राही बढ़ते जा रहे थे और बढ़ते जा रहे थे उनके साथ साथ घटनाओं के चक्र। वे घटनायें जिनको कहने और सुनने से भी नरक मिलता है। बाप का बेटी से विवाह, माँ का बेटे से विवाह, सरे बाज़ार व्यभिचार, क्या कहीं धर्म रहा ही नहीं, क्या वह समय आ गया जब धर्म को पाप कहकर पुकारा जायेगा। अधर्म, घोर अधर्म ! कदम कदम पर मांस, कैसे निर्मम शौकीन हैं ये जो दूध देने वाली गौ माताओं के मांस से अपनी भूख मिटाते हैं। क्या अब सभी मांस खाने लगे ? ओहो यह कैसा वीभत्स काल है ! मनुष्य का मांस बिकता है। कोमल कोमल बच्चों को काट काट कर खिलाया जाता है। जान पड़ता है मनुष्य दैत्य होते जा रहे हैं।

घटनाओं की परिक्रमा ने चाण्डाल चौकड़ी को चौंका दिया।

दिवाकर ने कहा— "आज बड़े खराब मुहूर्त में घर से निकले थे। जहाँ भी गये कोई न कोई ऊँटपटांग दृश्य देखा।"

गजाधर— "आज ही नहीं, आजकल रोज़ ही यह होता है।"

दीपक— "घबरा गये ये दृश्य देखकर ?"

अर्जुनसिंह— "घबराये तो नहीं, पर जी ज़रूर मिचलाने लगा।"

दीपक— "तो क्या इलाज किया जाये ?"

अर्जुनसिंह— "इलाज ही क्या है। चलो, अपने अपने घर आराम से सोयेंगे।"

दीपक— "तुमने ठीक कहा है। नींद भी बड़ी बढ़िया चीज़ है। सोने से सारे दुःख दूर हो जाते हैं। जैसे लम्बे समय की अवधि बड़े से बड़ा घाव भर देती है वैसे ही निद्रा दुःख दूर करने के लिये मॉरफिया है।"

गजाधर— "दोस्त दीपक ! यह तुम्हारा कलजुग तो बड़ा ज़ालिम है।"

दीपक— "बस जब यह ऊँटपटांग मूड में हो इससे उलझना मत, नहीं तो यह चिमटा उठा कर पिल ही पड़ेगा।"

गजाधर— "पर तुमने तो इसे बहुत घिस रखा है।"

दीपक— "घिस विस कुछ नहीं रखा, समय की बात है। अभी उस दिन मुझ पर ही चिमटा उठा लिया था। न जाने क्या सोचकर रुक गया। नहीं तो नशे में कुछ भी कर सकता था। लेकिन यह बात ज़रूर है कि मैंने कलजुग को जोश में भी होश में देखा है। बड़े से बड़े नशे में भी इसे खोते नहीं देखा।"

गजाधर— "एक विलक्षण आत्मा अवश्य है।"

दीपक— "निश्चित ही कलजुग एक अद्‌भुत व्यक्ति है।"

गजाधर— "तुम भी खोज खोज कर पात्र निकालते हो। एक वे देवकीदेवी हैं, न जाने कैसा जादू किया है तुमने, बेचारी हर समय तुम्हारी चिन्ता में रहती हैं। इधर यह कलजुग है, खूब ठाठ से तुम्हें मिठाई खिलाता है, तरकून खिलाता है और उधर वे भजनानन्दी महाराज हैं, खूब प्रेम करते हैं तुमसे।"

दीपक— "रुक क्यों गये, अभी तो और कहना बाकी है तुम्हें। और यह क्यों नहीं कहते कि एक हम गजाधर जी महाराज हैं, दूसरे ये दिवाकर जी हैं, तीसरे ये चौधरी बाबू हैं और चौथे ये अर्जुनसिंह हैं।"

गजाधर— "बात यह है दीपक बाबू! हम पर तुम्हारे प्रेम व्रेम का तो कोई जादू नहीं है। हाँ, तुम्हारी प्रतिभा का प्रभाव अवश्य है, तुम्हारी कला के हम पुजारी हैं। यही एक बात है कि हम पर तुम्हारे खिलाफ कहने वालों का कोई असर नहीं होता।"

दीपक— "वैसे बुरा तुम भी समझते हो?"

गजाधर— "सिर्फ पाँच प्रतिशत।"

दीपक— "कभी अपनी तस्वीर देखी है?"

गजाधर— "देखी तो नहीं, पर तुमसे डरता भी हूँ। कहीं अपने किसी लेख आदि में मेरा चित्र मत खींच देना।"

दीपक— "चित्र तो खींचूँगा पर और कुछ नहीं खींचूँगा।"

अर्जुनसिंह— "बस आज सारे दिन बहुत खिंच चुका। अब यदि कलजुग की तरह मरघट में पड़ना हो तब तो उधर चलो। नहीं तो सीधे सीधे चलो घर। जानते हो इस समय क्या बज गया?"

गजाधर— "अरे बजा ही क्या होगा, ज़्यादा से ज़्यादा रात के दो

बजे होंगे। अब क्या करोगे घर जाकर!"

दीपक— "तो क्या थाने में चलकर बन्द होने का इरादा है?"

गजाधर—"'किसकी माँ ने धौंसा खाया है जो हमें बन्द कर दे!"

तभी चाण्डाल चौकड़ी ने देखा कि एक हाथ में लाठी और दूसरी में लालटेन लिये कोई तेज़ी से उधर चला आ रहा है। यद्यपि सभी आगन्तुक को गम्भीरता से देख रहे थे, पर दीपक उस ओर बड़े ध्यान से देखने लगे। जब आने वाला काफी पास आ गया तो दीपक ने पहचानते हुए कहा कि "यह तो हमारा पड़ौसी चतरू जान पड़ता है।"

इतने ही में चतरू ने पास आ नमस्ते करते हुए कहा— "दीपक बाबू! मैं आप ही को ढूँढता फिर रहा हूँ। जल्दी चलिये। देवकी देवी की तबियत खराब हो गई है। कुछ गफलत सी बढ़ती जा रही है।"

१

डाली पर खिलने वाला हर फूल हवाओं से हिलता रहता है। वह दीखने में सुन्दर होता है। उसमें रंग होते हैं, रस रहता है, सौरभ मचलता है। कहीं ख़ाक में मिली हुई सूरतें ही तो फूलों में प्रकट नहीं हो जातीं ! ऐसा जान पड़ता है कि दृश्य लोक की हर चीज़ अनेकों अवस्थाओं से गुजरती है। कभी उसमें शैशव, कभी उसमें यौवन, कभी उसमें प्रौढ़ता और कभी उसमें वृद्धावस्था आती है। पर कुछ ऐसा भी होता है कि कुछ अधखिले ही मुरझा जाते हैं, कुछ जवानी में ही बूढ़े हो जाते हैं और कुछ कलियाँ ही कराल काल की ग्रास बन जाती हैं। यही नहीं, कुछ ऐसे भी पेड़ होते हैं जिनको न माली पानी देता है, न तूफान उनको गिराने में कुछ कसर रखते हैं, न संसार के क्रूर हाथ जिन पर आक्रमण करना बन्द करते हैं, लेकिन वे फिर भी सूर्य की तेज़ धूप अपने सर पर ले दूसरों को छाया देते रहते हैं।

आपत्तियाँ सभी पर आती हैं पर कुछ ऐसे होते हैं जो आपत्तियों को मार डालते हैं। जो विपदाओं पर विजय पाते हैं उनको ही इस धरती पर चलने का अधिकार है। आपत्तियाँ आदमी को कदम कदम पर रोकने आती हैं। किन्तु जिसका रोम रोम छिदा पड़ा हो उसे छेद कर कोई क्या लेगा ! फिर भी कौन किसी को सताने से रुकता है ! किसको किसकी लाचारी का ध्यान होता है ! कोई स्वयं ही अपने संकटों से मुक्त हो सकता है। तभी कोई अन्य सहायता करता है जब किसी में अपना दम होता है।

ओस के आँसू

देवकी देवी बड़े दम की महिला थीं। वे जीवन में कठोर पगडंडियों से गुज़री थीं। अनेकों तूफानों से जूझी थीं। उनका मन और आत्मा बहुत सबल था। शरीर से बेचारी परेशान रहती थीं। आज उनको अकस्मात् मूर्च्छा आ गई।

दीपक जब उनके सामने पहुँचे तो देखा कि नब्ज़ कुछ हलकी चल रही है। दीपक दौड़ कर टेलीफोन पर गये। डाक्टर को तुरन्त बुलाया। डाक्टर के उपचार से रोगी में चेतना आई। डाक्टर ने कहा— "इनको ब्लड प्रैशर है। दिल भी कमज़ोर लगता है। गुर्दे भी पूरी तरह काम नहीं करते। इनको पूर्ण आराम की ज़रूरत है। पेशाब-टट्टी वगैरह सब खाट पर ही कराना होगा।"

देवकी देवी शरीर से कमजोर थीं। मन में तो कूट कूट कर उत्साह भरा था। तुरन्त बोलीं— "नहीं, डाक्टर साहब ! मैं खाट पर टट्टी, पेशाब नहीं जाऊँगी। दो कदम पर ही तो लैटरीन है। चली जाया करूँगी।"

डाक्टर— "आपके लिये अच्छा यही है कि बिल्कुल हिलें जुलें नहीं। और एक आप को नमक का परहेज़ रखना है। नमक आप बिल्कुल नहीं खायेंगी।"

नमक न खाने की बात सुन देवकी देवी गम्भीर हो गईं। क्योंकि वे सब्जी से रोटी कम खाया करती थीं, नमक से अधिक। नमक उनको बहुत प्रिय था।

डाक्टर दवा आदि लिख कर चलने लगे। दीपक भी उनके साथ ही चले। जब दरवाज़े से बाहर आये तो डाक्टर ने कहा— "देखो, दीपक बाबू ! देवकी देवी को बड़ी सीरियस बीमारी है। इससे इनकी कभी भी मृत्यु हो सकती है।"

"क्या ? क्या कह रहे हैं डाक्टर साहब !" दीपक ने चौंकते हुए कहा— "क्या सच ?"

डाक्टर— "हाँ सच। इनको ऐसी बीमारियाँ हैं जिनका कोई इलाज नहीं है। सिर्फ दवाओं से कुछ समय जीवन चलाया जा सकता है।"

दीपक— "आपके पास नहीं तो दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, देश-विदेश कहीं तो इन बीमारियों का इलाज होगा ही।"

डाक्टर— "दुनिया बहुत आगे बढ़ चुकी है। आज कहीं भी कोई इलाज यदि पैदा होता है तो वह औषधि सारे संसार में मिलने लगती है। वैसे ईश्वर की इच्छा, वह मिट्टी में जान डाल सकता है।"

डाक्टर चला गया। दीपक गम्भीर मुद्रा में देवकी देवी के पास आ गये। दीपक को उदास देख देवकी देवी ने पूछा— "क्या कहा है डाक्टर ने ?"

दीपक— "कुछ नहीं, कहा है दो तीन दिन में ठीक हो जायेंगी। कोई खास बात नहीं।"

देवकी देवी मुस्कराईं और बोलीं— "जान पड़ता है तुम मुझसे कुछ छिपा रहे हो। सच बताओ डाक्टर ने क्या कहा ?"

दीपक— "बता तो दिया कोई खास बात नहीं कही। सिर्फ आप को पूर्ण आराम के लिये कहा है। जब तक आप बिल्कुल ठीक न हो जायें तब तक खाट से हिलने जुलने की ज़रूरत नहीं, आनन्द से लेटी रहा करें। मैं बैड-पैन लगा दिया करूँगा।"

देवकी— " नहीं, इसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। फिर भी मुझे लग रहा है जैसे मेरी बीमारी से तुम परेशान हो। देखो इन्सान को परेशान नहीं होना चाहिये। मौत और ज़िन्दगी एक खेल है। एक को दूसरे से अलग होना पड़ता ही है। मुझे मरने जीने की कोई चिन्ता नहीं है।

बस ज़रा नीरजा का और तुम्हारा ख्याल है। तुम भी मर्द हो, कैसे न कैसे काट ही लोगे। यह तो मुझे यकीन है कि नीरजा भी नादान नहीं रही। मैंने उसे पढ़ा लिखा कर इस योग्य कर दिया है कि अपने पैरों पर खड़ी हो सकती है।"

दीपक— "मुझ पर विश्वास रखो, आपकी थाती पर कोई आँच नहीं आने पायेगी।"

देवकी— "तुम एक काम तो करो। एक तो बँगले की कोई लिखा पढ़ी करा दो। दूसरे, जो घर के बर्तने की दो चार चीजें हैं उनका नीरजा के लिये पक्का काग़ज़ करा दो, जिससे कल को कोई इसे या तुम्हें तंग न करे।"

दीपक— "यदि ऐसा हुआ तो हम क्या तुम्हारी जुदाई के दुःख से अधिक किसी दुःख से दुखी हो सकते हैं। आप ऐसी बातें न सोचिये। आपको मौत तो तब आयेगी जब मैं आने दूँगा।"

देवकी— "क्यों बावले बनते हो! मौत क्या किसी के रोके से रुकती है। मेरा कहा मानो। मुझे जैसे तैसे कचहरी ले चलना। कोठी की लिखा पढ़ी कर दूँगी। यह बताओ कैसे लिखा पढ़ी करूँ?"

दीपक— "जैसे आपकी इच्छा हो।"

देवकी— "मैं तो कुछ भी नहीं जानती। जैसे आप बताओ वैसे कर दूँ। इतना अवश्य चाहती हूँ, मेरे पीछे मेरे दुश्मन मेरी जायदाद को न भोगने पायें। जिनके होते मैं दमड़ी दमड़ी की चीज़ तक को तरसती रही वे मेरी सम्पत्ति को हाथ न लगाने पायें। मैंने रो रो कर मर मर कर दिन बिताये हैं।"

कहते कहते देवकी देवी की आँखें छलछला आईं। दीपक ने दिलासा देते हुए कहा— "घबराती क्यों हैं! जैसे आप चाहेंगी वैसे हो जायेगा।"

देवकी— "क्या होगा, कब होगा, तब जब मैं न रहूँगी। बँगले का काम निमटवा दो, पर तुम सुनते ही नहीं।"

दीपक— "परेशान क्यों होती हो! बताओ, जैसे कहो निमटवा दूँ।"

देवकी— "यह भी तुम ही बताओ कैसे निमटाऊँ।"

दीपक ने कुछ देर बाद सोच कर उत्तर दिया— "मेरी राय में बंगले की आपको विल कर देनी चाहिये।"

देवकी— "मैं नहीं जानती विल क्या होती है। जैसे भी हो पक्का काग़ज करा दो।"

दीपक— "तो आप इस बंगले की विल एक तो अपने छोटे भाई शाम के नाम करा दो।"

देवकी— "मैं यह चाहती हूँ कि मेरा बंगला बिके नहीं। अगर कोई बहुत ही ज़रूरत पड़े तो बात अलग है। नहीं तो इसकी आय का ही उपयोग होना चाहिये। यह तुमने ठीक ही कहा, शाम बीमार रहता है, उसकी आय भी कम है।"

दीपक— "और दूसरे हिस्से की विल आप नीरजा के नाम कर दें।"

देवकी— "यह भी ठीक है।"

दीपक— "तो बस काम तो हो गया। अब आप दवा ले लीजिये और उसके बाद थोड़ा सा मौसमी का रस ले लीजिये। मैं अभी निकाले देता हूँ।"

देवकी— "नहीं, काम अभी खत्म नहीं हुआ, अधूरा है। इस बंगले की विल तीन के नाम होगी। मेरे लिये शाम और नीरजा पीछे हैं, दीपक पहले है।"

दीपक— "नहीं, मुझे बीच में न डालिये।"

देवकी— "तुम्हें बीच में नहीं डालूँगी तो मैं जीवन में सबसे बड़ी भूल करूँगी, इस जायदाद को नष्ट करने वाली बनूँगी। मेरा तुम पर ही विश्वास है। मुझे वह दिन दीख रहा है जब मेरी लाश पड़ी होगी और जायदाद पर दाँत चल रहे होंगे। उस समय जायदाद की यदि कोई हिफाजत कर सकता है तो वह मेरा दीपक ही है। मैंने दो इच्छायें तुम्हारी पूरी कीं, एक तुम मेरी पूरी करो। इस जायदाद के एक हिस्सेदार तुम बनो।"

दीपक— "पर मुझे जायदाद का मोह नहीं है। एक कोठी क्या हज़ार कोठियाँ खोकर भी यदि आपको सुख दे सकूँ तो मुझे प्रसन्नता हो। फिर आप जानती ही हैं कि मैं प्रपंचों से पृथक् ही रहना चाहता हूँ। पचड़े में पड़ना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

देवकी— "बस जो मैंने कह दिया वही होगा।"

दीपक— "लेकिन इससे बहुतों को तकलीफ जो होगी।"

देवकी— "किसी से तुम्हें और मुझे क्या लेना। मैं अपने मामले में किसी दूसरे की नहीं सुना करती। अपने प्रश्न स्वयं सुलझाती हूँ। मैं सबको खूब देख चुकी हूँ, देख रही हूँ और जीते जी देखती रहूँगी। बात यह है कि मनुष्य अपने प्रश्नों के बारे में व्यर्थ ही दूसरों के कहने सुनने की चिन्ता करता है। आश्चर्य है तुम जैसा समझदार भी कायरता से सोचता है। मैं और कुछ सुनना नहीं चाहती। बस यह कि ज़रा मैं ठीक हो जाऊँ, मुझे कचहरी ले चल कर रजिस्ट्री करा देना।"

दीपक— "अच्छा।"

देवकी— "तो इस तरह एक सवाल तो यह हल हुआ। अब दूसरा और सुन लो। मुझे नीरजा की बहुत चिन्ता रहती है। मेरे बाद इसका

क्या होगा ?"

दीपक— "क्यों, चिन्ता की क्या बात है ? नीरजा को न अब कोई कष्ट है, न आगे कोई तकलीफ होगी।"

देवकी— "यह मैं जानती हूँ और वैसे मैंने उसे पढ़ा लिखा कर समर्थ भी कर दिया है। फिर भी मुझे चिन्ता है। मेरे बाद नीरजा का जीवन किसी आपत्ति में न पड़ जाये।"

दीपक— "यह तब होगा जब मैं नहीं रहूँगा। मेरे होते नीरजा पर कोई आपत्ति नहीं आ सकती।"

देवकी— "यही तो मुझे चिन्ता है। मेरे बाद नीरजा का तुम्हारे पास रहना कितना कठिन है। मेरे रहते ही लोग उँगली उठाते हैं। वह तो मैं बहुत मजबूत हूँ, नहीं तो यह दुनिया तो मुझे खा ही जाती।"

दीपक— "दुनिया की चिन्ता क्यों करें ?"

देवकी— "करनी पड़ती है और फिर दुनिया ही नहीं, मेरे और तुम्हारे सगे भी तो तुम्हें खा जायेंगे।"

दीपक— "लेकिन इतना विश्वास रखो कि नीरजा को कोई कष्ट नहीं होगा।"

देवकी— "जब मेरे जीते जी ही अपने और पराये मेरी और उसकी जान खाये जाते हैं तो मेरे मरने के बाद तुम्हें कौन चैन लेने देगा! अच्छा तो यह है कि नीरजा की किसी ऐसे लड़के से शादी कर दो जो तुम्हारे कहने में चलता रह सके।"

दीपक— "कौन किसी के कहने में चलता है ! इस संसार में या तो आप मेरे कहने में चलीं या नीरजा मेरा कहा मानती है। और किसी पर मेरा विश्वास नहीं रहा। फिर आप नहीं जानतीं कि आपके बाद मैं कितना होश में रहूँगा।"

देवकी— "मर्द होकर होश मत खो बैठना। कहीं ऐसा न हो कि तुम होश खो दो और नीरजा किसी मुश्किल में फँस जाये। कोठी की देखरेख भी तो करनी है तुम्हें। मैं तो औरत थी। जब उनका देहान्त हुआ तो ताले कुंजी से चौकस रही, नहीं तो लोग मुझे लूटकर खा जाते। होश सँभाले रही तो जीवन चलाती रही। कहीं ऐसा न करना कि रोने धोने में सब कुछ भूल जाओ।"

दीपक— "मेरे लिये बड़ा कठिन होगा। आप नहीं रहेंगी तो मेरी हिम्मत जवाब दे देगी और नीरजा भी तो पराये घर चली जायेगी। मैं तो जंगल में खड़ा रह जाऊँगा।"

देवकी— "मुझे तुम्हारी भी चिन्ता है, इसीलिये तो कहती हूँ किसी ऐसे लड़के से शादी कर दो जो तुम्हारे कहे में चले और मेरे मरने के बाद यह घर बना रहे।"

दीपक— "खैर जैसा वक्त होगा देखा जायेगा। अब आप क्या लेंगी ? थोड़ा सा मौसमी का रस निकाल दूँ ?"

देवकी— "प्यास लग रही है, ज़रा सा पानी पिला दो।"

दीपक— "रस ही ले लीजिये, प्यास भी बुझेगी और थोड़ी शक्ति भी आयेगी।"

कहते हुए दीपक ने दो मौसमी का रस निकाला। देवकी देवी को सहारे से उठाकर रस पिलाया। फिर उनका बिस्तरा आदि झाड़ कर आराम से लिटा दिया। बीमार को यदि मानसिक उधेड़-बुन हो तो नींद कैसे आये। रोगी, वियोगी और योगी से तो नींद दूर रहती है।

देवकी देवी ने पड़े ही पड़े कहा— "तुमने कुछ खाया भी ? मैं तो उठकर दे नहीं सकती। नीरजा को जगा लो।"

दीपक— "नहीं, सोने दो उसे। मुझे भूख भी नहीं है, आज बहुत

खाया है। चाण्डाल चौकड़ी के साथ मुँह चलाने के अतिरिक्त और काम ही क्या रहता है।"

देवकी— "तुम तो खा चुके, लेकिन नीरजा तो भूखी ही सो गई है। तुम्हारी बाट देखती रही। मैंने खाने को कहा तो कह दिया अभी नहीं खाती, जब वे आ लेंगे तभी खाऊँगी।"

दीपक ने मन ही मन में कहा, "समझ में नहीं आता, नीरजा समझदार है या नासमझ, कोमल है या कठोर। और न ही देवकी देवी का प्रेम नापा जाता है। कहते हैं देवता किसी दूसरी दुनिया में रहते हैं पर बहुत से मनुष्य भी देवता ही होते हैं। यदि किसी को किसी का पूर्ण प्रेम प्राप्त है तो उसे कोई और इच्छा नहीं करनी चाहिये। प्रेम में अमृत होता है। जीने के लिये प्रेम ही तो चाहिये। ठीक ही तो है, ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पंडित होय।"

कल्पना करते हुए दीपक उठे। नीरजा को उठाया। नीरजा को सुलाना जितना मुश्किल था उठाना भी उतना ही कठिन होता था। रात काफी हो चुकी थी। यहाँ तक कि सुबह होने में दो एक घंटे ही बाकी थे। फिर भी दीपक ने नीरजा को बड़ी मुश्किल से थोड़ा सा खाना खिलाया। खाते ही नीरजा मुँह ढँक कर सो गई। दीपक सोचने लगे, "अन्तर्जगत और बाह्य जगत में बहुत बड़ा अन्तर होता है। कोई प्यार दिखाता अधिक है, करता कम है। कोई प्रेम करता अधिक है, दिखाता कम है।"

और फिर थके हुए तो थे ही, दीपक भी लेट गये। उनको नींद आ गई। सोये हुए घंटा भर भी नहीं हुआ था कि देवकी देवी ने आवाज़ देते हुए कहा— "सो गये। मुझे प्यास लग रही है।"

दीपक एकदम उठे। देवकी देवी को पानी पिलाया। देवकी देवी

बोलीं— "तुम मेरे पास ही बैठ जाओ। आज पता नहीं मेरी तबियत क्यों घबरा रही है। नीरजा को भी यहीं बुला लो।"

दीपक और नीरजा देवकी देवी की खाट पर आ बैठे। दोनों को पास बैठा कर देवकी देवी बहुत प्रसन्न हुईं। उनकी आँखें भी भर आईं। एकदम कह उठीं— "तुम दोनों मेरी कितनी सेवा करते हो!"

दीपक— "और यह भी तो कहो कि हम आपसे कितनी सेवायें लेते हैं। आपको एक ही चिन्ता रहती है और वह सिर्फ हमारी।"

कहते कहते दीपक का हाथ नीरजा के हाथ तक चला गया। उसने देखा कि नीरजा का हाथ एकदम गर्म है, चौंक कर बोले— "अरे यह क्या, नीरजा को तो बुखार आ रहा है।"

देवकी— "नजला जुकाम तो दो दिन से हो रहा था, आज बुखार हो गया होगा। कहा मानती ही नहीं, ठंड खाये जाती है। आज सवेरे दवा दिला लाना। रात बाकी ही कितनी है।"

दीपक और नीरजा देवकी देवी की खाट पर ही बातें करते और ऊँघते रहे। थोड़ी ही देर में नीरजा को तो देवकी देवी ने अपने हृदय से लगा कर सुला लिया। दीपक भी दीवार के सहारे लगे तकिये से सर लगा लेट गये। उनकी भी आँख लग गई। थोड़ी ही देर में उन्होंने एक स्वप्न देखा— "श्रृंगार किये उर्मिल उनके सामने खड़ी हो गई। उसने कहा, मैं तुम्हें ढूँढती फिर रही हूँ। देखते नहीं तुम्हें खोजते खोजते मेरे श्रृंगार मन्द पड़े जा रहे हैं। बहुत तड़पा चुके। अब चलो मेरे साथ, मैं उमंगों का महल सजाये बैठी हूँ। प्रियतम! यह जलता हुआ दीपक तुम्हारे बिना कहीं बुझ न जाये। तुमने हृदय में एक अग्नि जगा दी है। वह आँखों की बरसात से नहीं बुझती। कहीं मन नहीं लगता। कोई काम नहीं कर सकती। मुझे चैन नहीं है। तुरन्त आ

जाओ। मैंने तुम्हारे लिये एक बहुत सुन्दर महल बनाया है। वह आशाओं का महल है।"

स्वप्न न जाने कब तक चलता रहता, पर देवकी देवी की कराह ने स्वप्न भंग कर दिया। दीपक की आँख खुल गई। चौंक कर कहा—"क्या बात है?"

देवकी देवी ने काँपते हुए कहा— "मेरी तबियत घबरा रही है, छाती में दर्द है, बहुत जोर का दर्द। जान पड़ता है मेरी ज़िन्दगी अब बहुत नहीं है, दम घुटा जा रहा है।"

देवकी देवी की तनिक सी परेशानी दीपक को बेहाल कर दिया करती थी। वे सब कूछ भूल जैसे बैठे थे वैसे ही डाक्टर के यहाँ चल दिये। रात का अन्तिम पहर था। सड़कों पर एकदम अँधेरा था। किड़किड़ी बँधी जा रही थी। पर दीपक के पैर हवा से बातें कर रहे थे। डाक्टर के दरवाज़े पर पहुँच उसने दरवाजा ज़ोर से पीट डाला। डाक्टर गहरी नींद में सो रहा था। पर दीपक का मन तो इतना उद्विग्न था कि दरवाज़ा पीटे ही गया। काफी देर बाद डाक्टर ने आवाज़ दी—"कौन ?"

"मैं हूँ दीपक! जल्दी आइये। मरीज की तबियत बहुत खराब है।"

डाक्टर ऊँघता हुआ नीचे आया। आकर बोला— "अभी ही एक मरीज को देखकर आया था, थोड़ी ही देर हुई थी, खैर चलो।"

कहता हुआ गाड़ी निकाल दीपक के साथ चल दिया। आते ही उसने रोगी की परीक्षा की। देखकर बोला— "कोई विशेष बात नहीं है। हार्ट वीक हो गया है। एक इन्जैक्शन लगाये देता हूँ।" कहते कहते डाक्टर ने कोरामिन का इन्जैक्शन भरा और लगा दिया। कुछ और हिदायत

करते हुए डाक्टर चलने लगे। जाते जाते बोले— "देखो, इन्हें हिलने डुलने मत देना। जीने पर चढ़ना उतरना बिल्कुल मना है।"

थोड़ी देर बाद दीपक ने सेब का रस निकाल कर दिया। सुबह हो चुकी थी। दीपक ने खाट पर ही देवकी देवी को नित्य कर्म से निवृत्त कराया। गर्म पानी और तौलिये से बदन साफ़ किया। पड़े पड़े उनके बदन में पीड़ा होने लगी थी, कुछ पाउडर लगाया और फिर बिस्तर साफ़ कर लिटा दिया।

नीरजा ने घर का काम सँगवा चाय तैयार कर ली थी। देवकी देवी के पास ही छोटी मेज़ पर वह चाय और कुछ बिस्कुट ले आई। दीपक, नीरजा और देवकी देवी ने चाय पीनी शुरू की। दीपक ने देवकी देवी को तकियों के सहारे बैठा दिया था। चाय पीते पीते देवकी देवी ने कहा— "रात जो मैंने कहा था वह काम जल्दी निमटवा दो।"

फिर उन्होंने गौर से नीरजा की तरफ़ देखा, देख कर बोलीं— "नीरजा! इस दुनिया से एक दिन सभी को जाना है। मुझे भी जाना होगा। पर देख, मेरे पीछे दीपक का ध्यान रखियो। तू तो जानती ही है, ये हम लोगों का कितना ध्यान रखते हैं। अगर मेरे बाद इनको कोई तकलीफ़ हुई तो मेरी आत्मा को संतोष नहीं होगा।"

दीपक— "आप ऐसी बातें क्यों सोचती हैं? आप कहीं जाने वाली नही हैं।"

देवकी— "जाना तो होगा ही, शरीर बेकार हो गया है। दुनिया में जीना भी तभी तक अच्छा लगता है जब तक शरीर अच्छा रहता है। मैं कुछ कर नहीं सकती, चल नहीं सकती।"

दीपक— "और कुछ खा पी भी तो नहीं सकतीं।"

देवकी— "खाना पीना तो नमक के साथ चला गया। नमक के

बिना मुझ से एक रोटी भी खाई नहीं जाती।"

दीपक— "और नमक तो आपके लिये ज़हर है।"

देवकी— "चाहे ज़हर हो या जीवन, नमक मुझ से नहीं छूटेगा। दूध डबल रोटी खाते खाते मन भर गया है। नमक मिलेगा तो रोटी खाऊँगी नहीं तो भूखी ही पड़ी रहा करूँगी।"

दीपक— "आप में तो बड़ा संयम है, फिर यह बच्चों की तरह ज़िद्द क्यों करती हैं?"

देवकी— "कभी कभी ईश्वर पर तरस आता है। वह भी विचित्र हृदय का जान पड़ता है। जिसे दुःख देता है तो दिये ही चला जाता है। किसी किसी को सब कुछ देता है और किसी से सब कुछ छीन लेता है। खैर, अब इन बातों से क्या, दुनिया में बहुत दिन तो रहना नहीं। मुझे हर समय इन दोनों कामों की चिन्ता रहती है। लिखा पढ़ी निमट जाये, नीरजा की जिम्मेवारी से मुक्त हो जाऊँ तो मुझे मरने में कोई दुःख नहीं। एक दुःख तुम्हारा रहेगा सो वह तुम मर्द हो, कैसे न कैसे सहन कर लोगे।"

दीपक— "बड़ा कठिन है, शायद मैं सहन नहीं कर सकूँगा। आप तो जानती ही हैं आपके और नीरजा के बिना मुझे श्वास लेना कठिन है। फिर जब आप दोनों ही न रहेंगी तो मेरा संसार में क्या रहेगा!"

देवकी— "जैसे भी रो धोकर काट सको काट लेना। वैसे जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुम्हारा साथ दूँगी। मर गई तो ईश्वर की इच्छा! नीरजा से मैंने कह ही दिया है, सब तरह समझा दिया है और समझाती रहती हूँ। अच्छा यही है इसके लिये कोई ऐसा लड़का देख लो जो तुम्हारे कहे में चलता रहे।"

दीपक— "बात यह है कि विवाह के बाद यहाँ पति लोग पराई

बेटी को ग़ुलाम बनाकर रखते हैं। वे समझते हैं कि हमने किसी की बेटी के साथ विवाह करके उन पर बहुत बड़ा अहसान किया। फिर मैं ठहरा तुम्हारी ममता और प्यार का एक पात्र! मेरा कोई रक्त का नाता तो है नहीं। तुम न रहोगी तो सभी मुझे ग़ैर समझ कर दुत्कार सकते हैं।"

देवकी— "मेरी नीरजा ऐसी नहीं है। अगर किसी ने तुम्हारा अपमान किया तो इसका उससे कोई नाता नहीं रहना चाहिये। अगर तुम्हारे कारण कोई इससे दुर्व्यवहार करे तो इसका धर्म है कि यह उसे त्याग दे। संसार में सम्बन्धों से बड़ा आदर्शों का महत्व है। नीरजा कभी भी तुम्हें ग़ैर नहीं मानेगी, ऐसी मैं आशा करती हूँ। मेरे बाद दुनिया में तुम इसके सबसे अधिक निकट रहोगे। तुम किसी लड़के को देख लो, मैं उससे सारी बातें पहले ही पक्की कर लूँगी।"

चाय चल रही थी, बातें चल रही थीं, साथ ही छलछला रही थीं आँखें। चाय पीते देवकी, दीपक और नीरजा तीनों ही की आँखें भर भर आई। वातावरण कहीं अधिक गम्भीर न हो जाये इसलिये दीपक ने विषय बदला, कहा— "कल मेरी रेडियो पर वार्ता है, दिल्ली जाना है।"

देवकी— "तो कल वहाँ से खस्ता कचौरी और दालबीजी ज़रूर लाना। कल नीरज़ा कह रही थी दिल्ली जायें तो दालबीजी मँगाना।"

दीपक ने उठते हुए कहा— "इस बार दिल्ली से बहुत सी चीज़ें लाऊँगा।"

और फिर अन्दर के कमरे में जा एक कुर्सी पर बैठ गये। मेज पर रखे काग़ज़ देखने लगे। कई दिन की डाक इकट्ठी हो गई थी। डाक देखते देखते एक लिफाफा खोलते ही वे ऐसे बैठे रह गये जैसे किसी ने

ईथर सुँघा दिया हो।

पत्र उर्मिल का था। लिखा था— "दर्द देने वाले ! दवा भी तो दे।" और भी बहुत सी बातें लिखी थीं। पढ़कर दीपक खो से गये। कुछ देर बाद उन्होंने अपना विवेक सँभाला। सोचने लगे— "कैसी विचित्रता ने घेर लिया ! कुछ क्षणों की वह घटना कहीं कोई भीषण घटना न बन जाये। मनुष्य को बिना सोचे समझे भावुकता में विचलित नहीं होना चाहिये। न जाने उस दिन मुझे क्या हो गया था। सच है दुःखातिरेक में भी मनुष्य पथ भूल जाता है। मैंने उर्मिल के मन में जो आग लगा दी है वह धीरे धीरे धधकती जा रही है। फिर दीपक ने एक उत्तर लिखा—

"कल दिल्ली आ रहा हूँ। तीन बजे इण्डिया गेट के बस स्टैण्ड पर मिलूँगा।"

पत्र डाक में डलवा दिया। पर दिल में एक उधेड़ बुन मच गई। कुछ चाह थी, कुछ प्रतिष्ठा का भय था। कुछ समस्याएँ थीं, कुछ सत्य था, कुछ असत्य था, कुछ नीति थी, कुछ अनीति थी। रंगबिरंगी आँधियाँ चक्कर काटने लगीं।

जीवन में हर क्षण आँधियाँ चक्कर काटती रहती हैं, मानो जीवन एक वर्तुलाकार तूफान है। वह बाहर और भीतर न जाने कितना आवेग लिये घूमता रहता है। देह के आकार-प्रकार और अन्तर में एक अजीब वातावरण रहता है। सत्य और असत्य का निर्णय सरल नहीं है। भलाई और बुराई का निष्कर्ष भी बड़ी उलझन का है। क्या उचित है क्या अनुचित, इसकी पहचान परिणाम बताता है। कितनी ही बार सामने का शीशा भी गलत प्रतिबिम्ब दिखाता है। शक्ल में ही नहीं, शीशे में भी दोष होता है। विकृत समाज अच्छी शक्ल को भी खराब कर देता है। क्या वास्तव में समाज सिद्धान्तों पर खड़ा है ? शायद समाज के

सिद्धान्त झूठे होते हैं। संसार स्वार्थों पर टिका है। उपकार, प्यार, त्याग, बलिदान सबके मूल में स्वार्थ निहित है। यह संसार एक बदले का बाग है। कोई किसी को कुछ नहीं देता। जो कोई भी कुछ देता है, वह मूल्य लेकर देता है। माँ की ममता, बहिन का प्रेम, प्रिय और प्रिया का प्रणय सब में सौदा है। पिता पुत्र से बदला चाहता है। भाई भाई से अधिकार का नाता मानता है। तो फिर क्या है इस संसार में ? जान पड़ता है भ्रम की भट्टी में सारा संसार जला जा रहा है। धोखे की खूबसूरत वाटिका में मतिहीन भ्रमर भटकता फिरता है। फूल फूल पर रस का प्यासा काँटों की चुभन भूल जाता है।

लेकिन सिर्फ ऐसा ही तो नहीं है। अंधकार है तो प्रकाश भी है ही, बुरे हैं तो भले भी होते ही हैं। तुम असोच्य के लिये सोच क्यों करते हो ? दुनिया में मनुष्य आता है, सम्बन्ध जुड़ते हैं टूटते हैं, ऐसे ही जैसे डाली पर फूल खिलते हैं झड़ जाते हैं। कुछ समय से टूटते हैं, कुछ असमय में ही। कराल काल की आँधियाँ झूमती रहती हैं, घूमती रहती हैं।

दीपक के सामने भी आँधियाँ चक्कर काट रही थीं, मानो अनेकों आँधियाँ एक साथ किसी जलते हुए दीपक को बुझा डालना चाहती हों। किन्तु जो अग्निपान करता है वह क्या बुझ पाता है ! किसी को भी तभी तक दबाया जा सकता है जब तक वह दबता है। जब कोई दम भर कर हुंकारता है तो रास्ते साफ होते चले जाते हैं।

दीपक के रास्ते कठिन थे। वह भला भी था और भावुक भी। उसका लक्ष्य अनिश्चित था। उसकी सीमाएँ भावनाओं में खोई हुई थीं। वह संसार में खेल रहा था, उन खिलौनों से जो दीखने में सुन्दर, बोलने में मधुर किन्तु कच्ची मिट्टी के थे। दूसरे को तो क्या, दीपक को स्वयं अपनी दुनिया का ज्ञान न था। शायद किसी को भी

अपना संसार विदित नहीं होता। जीवन एक अद्भुत रहस्य है।

सोचते सोचते दीपक उठे। देवकी देवी की खाट के पास आये। देखा, वे रो रही थीं।

१०

"दीपक बाबू हैं?" किसी ने दरवाज़े के किवाड़ थपथपाते हुए कहा।

"नहीं, दिल्ली गये हैं।"

"मैं था दिवाकर, कब आयेंगे?"

"परसों आने को कह गये हैं।" देवकी देवी ने खाट पर लेटे ही लेटे उत्तर दिया।

"कैसी तबियत है आपकी?" दिवाकर ने थोड़ा सा दरवाज़ा खोलते हुए पूछा।

देवकी— "ठीक नहीं चल रही है, आइये, बैठिये!"

दिवाकर द्वार खोल अन्दर चले आये। देवकी देवी के पास ही पड़ी कुर्सी पर बैठ गये। बैठते हुए बोले— "बहुत तबियत ख़राब रहने लगी आपकी!"

देवकी— "हाँ, मुझे ब्लड प्रैशर है, चर्बी भी जाती है, डाक्टर ने नमक बन्द कर रखा है।"

दिवाकर— "ओ हो, बड़ा कष्ट है आपको! इलाज तो ठीक चल रहा है न?"

देवकी— "हाँ, ठीक चल रहा है। दीपक मेरा बहुत ध्यान रखते हैं। दिल्ली जाते जाते भी डाक्टर को दिखा कर गये हैं।"

दिवाकर— "लाइये, दवा मैं ला दूँ !"

देवकी— "नहीं, दीपक दो दिन की दवा लाकर दे गये हैं।"

दिवाकर— "कुछ फल वल ला दूँ !"

देवकी— "नहीं, रखे हैं।"

दिवाकर— "तो आज आपने अभी कुछ लिया थोड़े ही होगा ?"

देवकी— "नीरजा कालिज जाने से पहले चाय बना कर दे गई थी। अब आकर मौसमी का रस देगी। आती ही होगी।"

दिवाकर— "लाइये, मैं निकाल दूँ !"

कहते हुए दिवाकर उठे। सामने रखी मौसमियाँ उठाईं, प्याला उठाया और रस निकालने लगे।

रस निकालते निकालते बोले— "बड़ी भली हैं आप ! कितना ऊँचा चरित्र है आपका, व्यर्थ ही लोग आपकी निन्दा करते हैं।"

देवकी— "करने दो निन्दा, मेरा क्या लेते हैं। मैं तो दूसरे के दोष नहीं, अपने दोष देखती हूँ। मुझ में कोई कमी होगी, तभी तो मेरी निन्दा करते हैं।"

दिवाकर— "नहीं नहीं, यह आप क्या कहतीं हैं! इतने दिन मुझे आते हुए हो गये मैंने तो आप में कोई कमी नहीं देखी। आप तो देवी हैं, देवी!"

कहते हुए दिवाकर ने मौसमी का रस देवकी देवी को पिलाया और फिर बोले— "लाइये, आपके सिर में तेल लगा दूँ।"

देवकी— "नहीं, नीरजा आकर लगायेगी। आपने बड़ी तकलीफ़ की।"

दिवाकर— "तकलीफ़ की क्या बात है ! मैं कोई ग़ैर तो नहीं। दफ्तर जाने आने का यही रास्ता है। सुबह शाम होता जाया करूँगा और

अब तो मेरी तीन दिन की छुट्टियाँ हैं। अकेले आप का मन भी तो नहीं लग रहा होगा।"

देवकी— "सारी ज़िन्दगी अकेले ही तो बिताई है। मन का क्या है, जैसे लगा लो लग जाता है, नहीं लगाओ उचटने लगता है।"

दिवाकर— "लीजिये आपको कुछ चुटकले सुनाता हूँ, मन बहलेगा।"

और कहते ही कहते दिवाकर ने चुटकले सुनाने शुरू कर दिये। कुछ ऐसे लच्छेदार चुटकले सुनाये कि देवकी देवी को उनको पास बैठाने में रस आने लगा। थोड़ी देर बाद जब दिवाकर जाने के लिये कहने लगे तो देवकी देवी ने और बैठने का आग्रह किया, बोलीं— "और कोई बात सुनाओ।"

दिवाकर— "क्या बात सुनाऊँ देवकी देवी जी! बात यह है कि हर तरफ़ आपकी चर्चा है। क्यों आपने एक मुसीबत पाल रखी है? और दीपक को भी जाने क्या मिलता है, क्यों आप जैसी देवी को मुसीबत में डालता है? मेरी राय है, आप दीपक का यहाँ आना बन्द कर दीजिये।"

देवकी— "यह आप क्या कह रहे हैं! मुझे कहने वालों की परवाह नहीं है। दीपक मेरे लिये प्राणों से भी अधिक प्यारा है। लोग उसको नहीं पहचानते। और आश्चर्य यह है कि तुम उसके दोस्त होकर भी ऐसे गन्दे विचार क्यों रखते हो!"

दिवाकर— "गन्दे विचार नहीं देवकी देवी जी! मैं दीपक को अच्छी तरह जानता हूँ। मैं खूब समझता हूँ वह यहाँ क्यों आता है। वह बहुत स्वार्थी है। आप यह सब दीपक से मत कहना। असल बात यह है कि आप बहुत भोली हैं। अच्छा यही है कि आप उससे शराफ़त से कह दें कि तुम यहाँ न आया करो। वर्ना सतर्क किये देता हूँ कि अपने बहिष्कार के लिये तैयार रहें। लोग बहुत उतावले हैं। कुछ

और न समझना। मैं आपका और दीपक का हितैषी हूँ। इसीलिये सावधान कर रहा हूँ।"

देवकी— "कोई कुछ भी कहे और कुछ भी करे। दीपक को मैं अपने से दूर नहीं कर सकती। वह मेरे पेट से पैदा नहीं हुआ, पर अपनी माँ से ज़्यादा मेरी सेवा करता है।"

दिवाकर— "आप अपनी चिन्ता न करें, वह सब देख-रेख मैं कर लूँगा। अब ज़रा जाता हूँ। कुछ काम है। आध घंटे बाद फिर आऊँगा। डाक्टर को आपका हाल भी बताता आऊँगा। दवा आप के पास रखे जाता हूँ, पन्द्रह मिनट बाद खुराक ले लेना।"

दिवाकर चले गये। देवकी देवी सोच में पड़ गईं। यद्यपि वे रोगी थीं पर दिवाकर की बातों ने उनको और बोझिल कर दिया। वे सोचने लगीं— "कहीं दिवाकर ठीक तो नहीं कहते! हो सकता है मुझ से कहीं ग़लती हो रही हो। दीपक के कारण ही तो मुझ पर सब की कोप-दृष्टि रहती है। जहाँ जाती हूँ लोग मुझे कुछ तिरस्कार से देखते हैं। यह सही है कि दीपक मुझ में बड़ी भक्ति रखता है। वह किसी का बुरा नहीं चाहता, पर वह यह क्यों नहीं जानता कि बहुत भला होना बहुत खतरनाक होता है। पता नहीं क्या उसके दिमाग़ में है, हर वक्त खोया खोया रहता है। कुछ होश नहीं है उसे।"

देवकी देवी कुछ और भी सोचतीं, स्वयं से तर्क करतीं, पर नीरजा पढ़ कर आ गई। उसने जीने में से छत पर आते ही कहा— "कैसी तबियत रही?"

देवकी— "कुछ शान्ति है इस वक्त। वे दीपक के दोस्त दिवाकर आ गये थे। उन्होंने मौसमी का रस निकाल कर दिया। बेचारा बड़ा भला जान पड़ता है।"

नीरजा— "कोई कितना भी भला हो, पर दीपक बाबू से कोई भला नहीं हो सकता।"

देवकी— "पगली, तू अभी तक बच्चा ही है। दीपक सामने होते हैं तो लड़ती है। दूर होता है तो उसकी तारीफ़ करती है। एक दिन नहीं आता तो खाना पीना छोड़ देती है। कितना प्रेम है तुझे उससे! पर बावली, कितने क्षणों का! तेरी शादी हो जायेगी और फिर यह सारा खेल खत्म हो जायेगा।"

नीरजा— "नहीं, ऐसा मत कहो, यदि शादी होने का मतलब दीपक बाबू से अलग होना है तो मैं शादी को केवल स्वार्थ मानूंगी।"

देवकी— "तू नादान है, दुनिया को नहीं जानती। यह मुझे अभी चूंट चूंट कर खाये जाती है। साल दो साल तेरा विवाह नहीं किया तो जीना और मरना मुश्किल हो जायेगा। मैं जानती हूँ नीरजा! कि दीपक को भी तुझ से बहुत प्रेम है, उसकी तेरे लिये बड़ी पवित्र भावनायें हैं, पर अब यह खेल खत्म किये बिना काम नहीं चलेगा। तेरा विवाह करके ही मैं और दीपक श्वास लेने योग्य रह सकते हैं।"

देवकी देवी ने देखा कि नीरजा की आँखों से आँसू निकल पड़े। उन्होंने बात बदलते हुए कहा— "मुझे कुछ भूख सी लग रही हैं, ज़रा सा दूध गर्म कर दे।"

नीरजा रसोई में गई। आग सुलगा कर दूध गर्म करने लगी। तभी दिवाकर दुबारा आ गये। छत पर आते ही पहले उन्होंने नीरजा की ओर देखा फिर देवकी की तरफ; और फिर नीरजा के पास रसोई में जाते हुए बोले— "कैसी तबियत रही इनकी?"

नीरजा ने धीरे से उत्तर दिया— "अच्छी है।"

दिवाकर ने आग सुलगाती हुई नीरजा का हाथ पकड़ हटाने का

बहाना करते हुए कहा— "तुम अभी थकी हुई कालिज से आई हो, लाओ दूध मैं गर्म किये देता हूँ ।"

नीरजा ने हाथ छुड़ाते हुए कहा— "आप माँ के पास अन्दर बैठिये, मैं दूध गर्म करके अभी लाती हूँ ।"

पर दिवाकर हटे नहीं । नीरजा के गाल पर हल्के से अपनी उँगलियाँ रखते हुए बोले— "बहुत काम करती हो ।"

और फिर आँच पर पंखा झलते हुए वहीं बैठ गये । पंखा झलते झलते दिवाकर का दूसरा हाथ नीरजा के शरीर पर चलता जाता था । कभी वह नीरजा के सर पर हाथ रखता था, कभी कमर पर, कभी हाथ पर, कभी घुटने पर और कभी कहीं इधर उधर हाथ बढ़ाता था ।

तंग आती हुई नीरजा ने जल्दी से कुछ कम गर्म ही दूध गिलास में किया, मीठा मिलाया और देवकी देवी के पास लेकर चली आई ।

दिवाकर भी साथ ही साथ अन्दर कमरे में चले आये । उन्होंने देवकी देवी को उठाया । नीरजा ने दूध का गिलास उनके मुँह से लगा दिया । देवकी देवी दूध पीकर लेट गईं । नीरजा उनके पास खाट पर ही बैठ गई । कुछ क्षण चुप रहने के बाद दिवाकर ने कहा— "तबियत को कुछ शान्ति है ?"

देवकी देवी— "हाँ, इस समय कुछ ठीक तो लगती है । पर ऐसे ठीक होने से क्या ! किसी वक्त ठीक हो जाती है, किसी वक्त फिर खराब ।"

दिवाकर— "बड़ी मुसीबत में हैं आप ।"

देवकी— "मुश्किलें न हों तो ज़िन्दगी बोझ हो जाये ।"

फिर नीरजा की तरफ़ देखती हुई बोलीं— "अरी, इनके लिए कुछ चाय वाय बना दे । अलमारी में से कुछ खाने को निकाल ला ।"

क्षण भर चुप रहने के बाद नीरजा उठी और दूसरे कमरे में चली गई। उसने अलमारी खोली, पीछे पीछे ही दिवाकर भी अलमारी के पास पहुँचे। जाते ही उन्होंने अपनापन प्रकट करते हुए नीरजा को अपनी भुजाओं में भींचा, यही नहीं उन्होंने उसके मुँह से अपने ओठ भी छुआये।

नीरजा छिटक कर जल्दी से प्लेट में कुछ ले बाहर चली आई। उसने उपेक्षा भाव से दिवाकर के सामने एक स्टूल पर खाने की सामग्री रख दी और फिर किताब पढ़ने लगी।

धीरे धीरे अँधेरा हो गया। दिवाकर बोले— "दीपक कब आयेंगे ?"

देवकी— "आज भी आ सकते हैं, कल भी और परसों भी। जाने के बाद उनके आने का कोई पता नहीं रहता।"

दिवाकर— "बहुत ग़ैर-ज़िम्मेवार आदमी है। वह तो आपने मुँह लगा रखा है, नहीं तो सब उसकी निन्दा करते हैं। हम तो दोस्ती की वजह से उसके साथ रहते हैं, वैसे उसके साथ रहने से लोग हमें भी अच्छी दृष्टि से नहीं देखते।"

देवकी— "लोगों का क्या है, अच्छे को बुरा बना दें, बुरे को अच्छा।"

दिवाकर— "दुनिया में रहते हैं तो दुनिया का ध्यान रखना ही पड़ता है। अपनी आदत ही कुछ ऐसी है कि इन्सानियत ही अच्छी लगती है। आपकी तबियत खराब है तो मेरा यहाँ से उठने को मन ही नहीं करता। आप अकेली रहेंगी, सोचता हूँ मैं आज यहीं सो जाऊँ।"

देवकी— "नहीं, हम तो रोज़ ही अकेले से ही रहते हैं। आप क्यों तकलीफ़ करते हैं ?"

दिवाकर— "इसमें तकलीफ़ की क्या बात है। आदमी ही आदमी के काम आता है। मैं आज घर नहीं जाऊँगा, यहीं रहूँगा।"

कहते हुए दिवाकर ने जूते उतार दिये। कोट खूँटी पर टाँगा। और देवकी देवी के बराबर में बिछी खाट पर लेट गये। इधर नीरजा को बैठे बैठे काफी देर हो गई थी। देवकी देवी और दिवाकर तो बातें करते रहे पर नीरजा गुमसुम ही बैठी थी। इधर रात के नौ से अधिक बज चुके थे। देवकी देवी ने कहा— "अरी उठ, नीरजा! जा अपनी खाट पर सो जा।"

नीरजा को भी आलस्य तो आ ही रहा था। देवकी देवी के कहते ही उठ खड़ी हुई और अपनी खाट पर आ मुँह ढँक कर लेट गई। थोड़ी देर में नीरजा को नींद आ गई। देवकी देवी भी खुर्राटे भरने लगीं। पर दिवाकर की आँखों में नींद नहीं थी। उसके मन में शैतान जाग रहा था।

जब उसने समझ लिया कि देवकी देवी गहरी नींद में सो रही हैं और नीरजा भी नींद में बेहोश है तो धीरे से उठ नीरजा की खाट पर जा बैठे। आहिस्ता आहिस्ता अपना हाथ उसके पैर पर रखा। शब्द किये बिना वे हाथ आगे बढ़ाने लगे। जब हाथ नीरजा की कटि के निकट पहुँचा तो वह एकदम चौंकी और आवाज़ दी— "माँ!"

नीरजा की आवाज़ सुनते ही देवकी देवी ने भी चौंक कर उत्तर दिया— "क्यों? क्या बात है नीरजा!"

नीरजा— "मेरी खाट पर कोई था, अभी अभी भागा है।"

देवकी— "जल्दी से बिजली जला!"

नीरजा ने उठ कर बिजली जलाई। देवकी देवी ने देखा कि कोई भी नहीं है। दिवाकर अपनी खाट पर चुपचाप खुर्राटे भर रहा था।

देवकी देवी ने कहा— "बिजली बुझा कर सोजा, स्वप्न में डर गई होगी।"

नीरजा— "नहीं माँ, मैं डरी नहीं। सचमुच मेरी खाट पर कोई आया था। अब मैं अपनी खाट पर नहीं सोऊँगी, तुम्हारे पास सोऊँगी।"

देवकी— "तो आजा, मेरे पास ही लेट जा।"

नीरजा अपनी खाट से देवकी देवी के पास आ लेट गई। देवकी देवी ने उसे अपने हृदय से लगा कर अपने को और उसे शान्ति दी। किसी ने सत्य ही कहा है— सन्तान का स्पर्श भी कितना सुख देता है! फिर जब कोई ऐसे बालक को अपने सीने से लगाता है जिसे वह धर्म, कर्म और जीवन से अपना मानता हो तो उसे बड़ी शान्ति मिलती है।

नीरजा निडर थी और देवकी देवी को मानो ब्रह्मानन्द मिल रहा था। बालक निरीह होता है। वहाँ दोष नहीं होते। किन्तु मनुष्य की कुत्सित दृष्टि कहाँ नहीं पड़ती! दिवाकर की बुरी नज़र नीरजा को ऐसे देख रही थी जैसे कोई बेईमान अपने कब्ज़े में पराई धरोहर को देखता है।

पाप की दृष्टि मनुष्य का विवेक हर लेती है। कामान्ध को उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रहता। किन्तु यह अपराध है या लाचारी? न जाने कौन मनुष्य के मन में एक विलक्षण मद भर देता है। रूप की मदिरा मनुष्य को बेहोश बना देती है। यह वह मदिरा है जो बिना पिये पी जाती है।

फिर भी मनुष्य को होश तो रखना ही चाहिये। पुरुष तो वह है जिस पर मद सवार न हो सके। उचित-अनुचित का ध्यान अनिवार्य है। वह जीवन ही क्या जो रूप पर शलभ बन कर जल जाये! जीवन तो वह है जो दीपक की रोशनी को और ज्योति प्रदान कर सके, जो

रूप को रोशनी देने में समर्थ हो।

कैसी विचित्रता है! उचित-अनुचित का तर्क होते हुए भी विजय प्रायः काम की ही होती है। काम पर जय पाना सरल नहीं। महर्षि पराशर और नारद जैसे जब बहक सकते हैं तो फिर किस को दोष देना उचित हो सकता है! पर उससे घृणा करने वाले पाप के भागी बनते हैं। उठती हुई जवानी एक ऐसी शक्ति रखती है जो अडिग को भी डिगा देती है।

दिवाकर काँप भी रहे थे और जोश में भी थे। रात भर वे जागते-उठते, उछलते और डरते हुए परेशान रहे। सुबह उठे, पर ऐसे जैसे कोई चोर उठता है। वे झेंप रहे थे और झेंप उतार भी रहे थे। अपराध अपराधी को झँझोड़ता रहता है। जिसके प्रति अपराध होता है उसकी उदारता चाहे दोषी से कुछ न कहे किन्तु दोष करने वाला स्वयं घबराया रहता है। वैसे तो दंड के अनेकों विधान हैं पर आत्मग्लानि भी दैविक दंड विधान का एक विधान ही है। लेकिन यह दुनिया है, इसमें बेशर्मों की कमी नहीं। लोग अपराध पर अपराध करते हैं।

देवकी देवी ने दिवाकर से कुछ नहीं कहा। नीरजा ने भी सुबह उनका तिरस्कार नहीं किया। बल्कि उनको सादर चाय वगैरह पिलाई। उसी प्रकार प्रेम से बातें कीं जैसे वे इस घटना से पहले किया करती थीं।

किन्तु यह तो संसार है, इसमें दूध पीकर काटने वाले साँपों की कमी नहीं। शायद भलाई करना भी एक अपराध है। वाणी पर रस और हृदय में विष— यही तो आज के मनुष्य का रूप है।

देवकी देवी से कुछ दुःख-दर्द की बातें कर दिवाकर उनके घर से बाहर निकले। दस पाँच कदम ही चले होंगे कि चौधरी बाबू, गजाधर और अर्जुनसिंह दिखाई दिये। तीनों ही ने दिवाकर को देखते ही कहा—

"क्यों भैया, आज हमें छोड़ अकेले ही अकेले ···! दीपक कहाँ है ?"

दिवाकर ने हँसते हुए उत्तर दिया— "मज़ा कर रहा है। तकदीर का धनी है।"

गजाधर कहने में नहीं चूका करते थे। किसी के मन के भाव समझने में वे ज्योतिषी थे। कड़क कर बोले— "अबे, तुझे कुछ मिला नहीं दीखता तो जलन हो रही है।"

दिवाकर— "हाँ, जलन तो होती है, जलन क्यों न हो! ख़ूबसूरत जवानी को देखकर कौन नहीं जलता! और फिर अन्धेर है अन्धेर।"

गजाधर— "क्या अन्धेर है बे, आज तो तू कुछ उलटा उलटा बोल रहा है।"

दिवाकर— "अन्धेर नहीं है ? दीपक सारा दिन देवकी देवी के यहाँ पड़ा रहता है और आश्चर्य तो यह है कि समाज इसे सहन क्यों कर रहा है!"

गजाधर— "तो तेरे बाप का क्या बिगड़ता है बे!"

दिवाकर— "बिगड़ता कैसे नहीं, मैं दीपक का फजीता कर दूँगा।"

गजाधर— "मरे फजीता करने वाले।"

चौधरी बाबू बोले— "अरे भई, बात क्या है! आज तो दीपक बाबू पर बहुत तैश खा रहे हो। कहीं कुछ देवकी देवी के यहाँ से धक्के मिल गये क्या ?"

दिवाकर— "अजी धक्के तो उसे मिलेंगे जो वहाँ पर जाना पसन्द करे। ऐसी के यहाँ मैं जाना पसन्द नहीं करता।"

गजाधर— "अबे रहने दे, तुझे वहाँ पूछता ही कौन है। वह तो हमारी वजह से तुझे वहाँ घास पड़ जाती है। नहीं तुम इस काबिल तो

हो नहीं कि किसी भले घर में तुम्हें आने जाने दिया जाये। अच्छा ये तैश की बातें तो हो लीं, अब असली बात बता, क्यों गुस्सा आ रहा है?"

दिवाकर— "गुस्सा इसलिये आ रहा है कि मैंने अपनी आँखों से जो कुछ देखा वह कह नहीं सकता।"

अर्जुनसिंह— "अरे, क्या देखा तूने?"

दिवाकर— "अरे यार, ज़रा दीपक से दोस्ती है न, इसलिये मुँह से नहीं कहता।"

गजाधर— "देख बे! अब बहुत हो चुकी। आगे ज़बान खोली तो तू समझ ले मेरा नाम गजाधर है।"

दिवाकर— "तो यह भी याद रखो बेटा, मेरा नाम भी दिवाकर है।"

गजाधर— "बेटा तो तुम्हारा तुम्हारा बाप भी है साले! पर इतना बताये देता हूँ आगे कलाम मत करियो! नहीं तो ......"

बात बिगड़ती देख अर्जुनसिंह ने दोनों को रोका। मामला सँभालते हुए कहा— "आपस में इस तरह की बात न करो, कोई क्या कहेगा!"

गजाधर— "कहेगा क्या अर्जुनसिंह! जब इसने अपनी उतार धरी तो दूसरे की उतारने में क्या देर लगती है। हम तो समझते थे यह दोस्त है, पर निकला आस्तीन का साँप।"

अर्जुनसिंह— "चलो इस समय बात करना उचित नहीं, इधर उधर लोग देख रहे हैं, क्या कहेंगे!"

चौधरी बाबू गजाधर और अर्जुनसिंह के कन्धे पर हाथ रखते हुए बोले— "चलो यहाँ से।"

गजाधर, अर्जुनसिंह और चौधरी बाबू दूसरी ओर बातें करते हुए

चले गये। पर वातावरण तो दूषित हो ही चुका था। इधर उधर लोग जुड़ गये। दो चार दिवाकर के पास आकर खड़े हो गये, बोले— "क्या बात है. बाबू साहब !"

दिवाकर— "बात कुछ नहीं साहब ! अन्धेर है।"

लोगों को तमाशा देखने में बहुत मजा आता है। ज़रा सी बात होती है तो भीड़ जुड़ जाती है। झगड़ा बढ़ाने वाले यदि झगड़ा घटाने लगें तो दुनिया में शायद झगड़े ही न हों।

एक ने कहा— "बात तो बताओ बाबू जी ! वैसे हम समझते सब हैं।"

दिवाकर— "तो फिर मुझसे मुँह से ही क्या कहलाते हो ! दीपक मेरा दोस्त है, इसलिये कुछ मुँह से नहीं कहता। मुझे तो आश्चर्य यह है कि आप सब ये सहन कैसे करते हैं। यह भले आदमियों की बस्ती है। कहने को दीपक बाबू बहुत बड़े आदमी कहे जाते हैं पर कर्म ऐसे करते हैं जो कहे नहीं जा सकते।"

एक महोदय ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा— "अजी, हम सब समझते हैं। इस देवकी देवी ने यहाँ जो कौतुक रच रखे हैं उनकी बात मत पूछो। जैसे यह घर नहीं, कोई बाज़ार की दूकान है।"

दिवाकर— "आपने तो साफ ही कह दिया। खुद ही सोचिये बिना मतलब क्या दीपक बाबू यहाँ रहते। और मैंने तो अपनी आँखों से देखा है।"

बुरे जहाँ होते हैं वहाँ कोई न कोई भला भी निकल ही आता है। भीड़ में से एक बिचारे बूढ़े बोले— "कभी कभी आँखों देखी बात भी गलत होती है बाबू साहब !"

तभी एक बालक ने कहा— "दीपक बाबू को बुरा बताते हो, उनसे

भला तो यहाँ एक भी नहीं।"

लेकिन दोनों की आवाज़ नगाड़खाने में तूती की तरह रह गई। यद्यपि उलटा कुछ लोग उनको ही दबाने लगे, लेकिन सच्चाई की राह पर चलने वाले क्या असत्य से दबते हैं ! चाहे कितना भी कठोर प्रहार हो, सत्य तो व्यक्ति को निडर होकर कहना चाहिये। और निडर रहना ही मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है।

सत्य के रास्ते में एक से एक आपदायें सहनी पड़ती हैं। जीवित आग में जलना पड़ता है। यही इन बिचारे बूढ़ों के साथ भी हुआ। दीपक का अधिक पक्ष लेने लगे तो एक शैतान ने जोश में इनके एक चाँटा मार दिया।

फिर तो बात बढ़ गई। हर एक की नज़र झगड़े के कारण पर जाने लगी। लोग देवकी देवी के मकान की ओर उंगली उठा उठा कर मामले को तूल देने पर उतारू हो गये।

शोर सुनकर देवकी देवी ने नीरजा से कहा— "अरी, ज़रा छज्जे पर जाकर देख तो क्या झगड़ा है।"

नीरजा छज्जे पर गई। भीड़ ने एकदम उसकी ओर देखा। ऐसे जैसे अपराधी निर्दोष को दोष की दृष्टि से देखते हैं।

नीरजा ने देवकी देवी के पास आकर कहा— "पता नहीं, क्या बात है ! सब हमारे घर की ओर घूर रहे हैं। यही नहीं, मेरा, तुम्हारा और दीपक का नाम भी ले रहे हैं।"

देवकी ने लम्बी साँस लेते हुए कहा— "पता नहीं ये मेरे पीछे क्यों पड़े हैं !"

नीरजा— "भौंकने दो, आप थक कर चुप हो जायेंगे।"

देवकी— "चुप रहने के अलावा मैं इनसे कहती ही क्या हूँ!"

नीरजा— "तुम कुछ कहतीं नहीं, इसीलिये तो इनकी ज़बान खुली हुई है। ज़माना चुप रह कर बर्दाश्त करने का नहीं हैं। जब तक ईंट का जवाब पत्थर से नहीं दिया जाता तब तक ठोकरें ही खानी पड़ती हैं।"

देवकी देवी और नीरजा बातें कर ही रही थीं कि पाँच सात आदमी देवकी देवी के घर में आ गये। आते ही एक ने कहा— "देखिये देवकी देवी जी! या तो आप दीपक का यहाँ आना बन्द कर दीजिये या आप भी मकान छोड़ कर चली जाइये।"

देवकी देवी बीमार थीं, वृद्धा थीं पर उनका आत्मा तपते हुए सूर्य के समान था। किसी की कड़वी बात सुनने की आदत उन्हें नहीं थी। कहने वाले की तरफ़ सिंहनी की दृष्टि कर बोलीं— "बदमाश कहीं के! यह घर तेरे बाप का है। खबरदार जो मेरे घर में पैर रखा! निकल यहाँ से! दीपक बाबू यहाँ आयेंगे। जो तुम्हें करना है कर लो।"

देवकी देवी की दृष्टि में और बोली में कुछ ऐसा तेज था कि कहने वाला ऐसा खड़ा हो गया जैसे मरा हुआ खड़ा हो। बात का मारा हुआ हिल नहीं सकता। डाट सुनकर जो दो चार और थे वे तो उलटे पैरों भाग लिये। कहने वाला कुछ लज्जित सा होकर बोला— "आप तो नाराज़ हो गईं!"

देवकी— "जा, जा, यहाँ से। कलाम मत कर मुझ से। उस दिन दस रुपये ले गया था, वे तो अब तक दिये नहीं। अब कभी मेरे दरवाज़े पर पैर रखा, तो ख़बरदार!"

आने वाले ने समझ लिया कि अगर अब कुछ भी बोला तो देवकी

देवी धक्का दे देंगी। इज़्ज़त उतारने आया था, इज़्ज़त उतरवा कर चला गया। किसी की प्रतिष्ठा पर हमला करने वाले महानीच होते हैं। जो अपने दोष न देखकर दूसरों के दोष देखते हैं, भगवान उनका कभी भला नहीं करता। बातों के जूते खाकर जाता जाता वह आप ही आप कहने लगा— "किसी को दूसरों के दोष देखने से पहले अपनी बुराइयाँ देखनी चाहियें और अच्छा तो यह है कि मनुष्य दूसरों के गुण और अपने अवगुण देखे।"

देवकी देवी को गुस्सा आ ही रहा था, वे न जाने किस साहस से अपनी पीड़ा दबाये भगवान का भजन कर रही थीं। किसी से कुछ लेती देती नहीं थीं, किसी को सताती नहीं थीं। फिर भी दुनिया के झूठे ठेकेदार उनको सताने आने लगे। देवकी देवी की आँखें भर आईं। आप ही आप कहने लगीं— "कैसी मौत आ गई! लोग चैन ही नहीं लेने देते। कोई यह पूछने वाला तो रहा नहीं कि तुमने पानी पिया है या नहीं, उलटे प्यास पर आग सुलगाने आ गये। न जाने दीपक और मैं इनकी आँखों में क्यों खटकते हैं। कोई इनसे पूछे कि क्या मैं भी तुम्हारी ज़िन्दगी में कोई दखल देती हूँ, क्या तुम्हें कभी सताती हूँ? फिर एक अनाथ को ये क्यों सताते हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि दुनिया में जो भले होते हैं वे ही सताये जाते हैं? कोई काम नहीं रह गया इन सब को, हर वक्त दीपक और मेरे घर की चर्चा करते हैं। लेकिन जब तक मैं ज़िन्दा हूँ कोई दीपक की ओर आँख नहीं उठा सकता। औरत हूँ तो क्या हुआ! कोई इधर आँख उठा कर तो देखे, जला कर राख कर दूँगी।"

जिसमें साहस है उसे ही जीने का अधिकार है। धरती पर वही चल सकता है जो एक हाथ में दया और दूसरे में वज्र रखता है। असमर्थ रह कर जीना मरने से बदतर है। चाहे आँखों में कितने भी आँसू हों लेकिन उनमें आग भी होनी चाहिये।

नीरजा भी समझदार हो गई थी। अच्छा बुरा पहचानती थी। दुःख सुख का उसे अनुभव होने लगा था। देवकी देवी को दुखी देख उसने कहा— "बकने दो इनको! परेशान क्यों होती हो। हम कुछ किसी से माँगने थोड़े जाते हैं। इन्होंने समझा दीपक यहाँ नहीं हैं, झगड़ा करने चले आये। आयेंगे तो सबको ठीक कर देंगे।"

देवकी— "उनको भी शान्ति नहीं। तू आते ही उनसे यह सब मत कहियो।"

नीरजा— "उनको क्या मालूम नहीं है, सब जानते हैं। ये जो आये थे रोज़ तो अपने काम के लिये उनके पास आते हैं। कैसे बदमाश हैं ये! उस दिन पुलिस पकड़ कर ले गई तो दीपक बाबू के पास हाथ जोड़ते आये और आज दीपक बाबू पर ही दोष लगाते हैं। आप भी सबको मुँह लगा लेती हैं। ये इस योग्य नहीं कि इनको दरवाज़े पर भी चढ़ने दिया जाये। आज अच्छा किया जो फटकार दिया, अब पैर नहीं रखेंगे।"

देवकी— "क्या करूँ, बीमारी ने शरीर से मजबूर कर दिया। जाने क्यों वे मुझे अकेली छोड़ कर चले गये। जब तक वे ज़िन्दा थे कोई आँख नहीं उठा सकता था। तू तो तब बहुत छोटी थी नीरजा! एक बार दो शराबी उनसे उलझ गये। मैं खिड़की में से देख रही थी। उन्होंने दोनों को इतना मारा कि एक तो उस सामने वाले पत्थर से जा टकराया कि उसका सिर फट गया। दूसरा उन पर चाकू लेकर झपटा तो उन्होंने उसका चाकू छीन कर उसे ऐसा धक्का दिया कि कलाबाज़ियाँ खाता हुआ नाले में गिर पड़ा। वह तो लोगों ने बचा दिया, नहीं तो उस दिन उसे वे जान से मार देते। बड़े बहादुर थे वे, बस कभी कभी शराब पीने की लत थी। वैसे उनमें बहुत से गुण थे।"

नीरजा ने देखा कि कहते कहते देवकी देवी की आँखों से आँसू निकल पड़े हैं। जैसे उनको अपने बीते दिनों की याद ने रोने को मजबूर

कर दिया हो। सच है आपत्ति में जब कोई किसी निर्दोष को सताता है तो आँसू रोके से नहीं रुकते।

देवकी देवी ने मुँह चादर से ढक लिया और तब तक रोती रहीं जब तक नींद ने उनको बेखबर न कर दिया।

११

मनुष्य रहता कहीं है, होता कहीं है, देखता कहीं है, बात किसी से करता है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह मनुष्य की लाचारी है, नादानी है या बुद्धिमानी! पर इतना अवश्य है कि हर मनुष्य दूसरे को धोखा देने का प्रयत्न करता है और स्वयं धोखे खाता है। कम से कम प्रणय के बारे में तो यह सत्य है कि चाहे कर्म से सभी न हों मन और वचन से तो सभी धोखा देते और धोखा खाते हैं। यदि बहुत अधिक साफ़ साफ़ कहा जाये तो प्रणय में हर व्यक्ति रंग बदलता है।

प्रणय में ही क्या, शायद रंग बदलना ही मनुष्य का अर्थ है। आदर्शों और वास्तविकता में बड़ा अन्तर है। कहा जा सकता है कि मनुष्य अपने को दिखाता आदर्श है और होता है व्यावहारिक। न उसकी कामनाओं की इति होती है और न कर्मों की। असन्तोष का अन्त नहीं होता।

प्राणी सुख और शान्ति की खोज में भटकता फिरता है। वह सुख के लिये दुःख उठाता डोलता है। मनुष्य को जो कुछ मिल जाता है उससे भी और आगे कुछ खोजने का प्रयत्न करता रहता है और उसका यह प्रयत्न कभी समाप्त नहीं होता। दिल्ली के एक बस स्टैंड पर दीपक की आँखें उर्मिल को ढूँढ रही थीं। यह वही स्थान था जहाँ दीपक ने इंडिया गेट पर तीन बजे उर्मिल को मिलने के लिये लिखा था। तीन बज कर कुछ मिनट पर उर्मिल एक बस से उतरी। दीपक ने उर्मिल

को और उर्मिल ने दीपक को इस तरह देखा जैसे प्राय: प्रीति के प्यासे एक दूसरे को देखते हैं। एक दूसरे के साथ घूमते हुए चले और पानी की उस झील के किनारे आ गये जो इंडिया गेट से कृषि भवन की तरफ जाती है। रास्ते में दोनों ने बहुत सी बातें कीं। पर दीपक कहते थे कि मुझे तो तुमसे बहुत कुछ कहना था किन्तु सामने आते ही सब कुछ भूल गया और यही वाक्य उर्मिल भी दोहराती थी।

दोनों किनारे पर घास में बैठ गये। दीपक ने कहा— "मैं रहता वहाँ हूँ, पर मन तुम्हारे पास पड़ा रहता है।"

उर्मिल ने उत्तर दिया— "तभी तो इतने दिन बाद हमारी याद आई।"

दीपक— "याद तो रोज़ आती थी।"

उर्मिल— "शायद नौजवान लड़कियों के सामने पुरुषों का यह रटा हुआ वाक्य है। याद आती तो बिना बुलाये आते।"

दीपक— "यह भी तो एक चाह होती है कि कोई किसी को बुलाये।"

उर्मिल— "आप जानते हुए भी क्यों न समझ पाये। यही तो मैं चाहती थी।"

दीपक— "बहुत बार मनुष्य का मनचाहा नहीं होता। चाह कुछ और होती है, होता कुछ और है। मैं आना चाहता था पर न आ सका, फँस गया।"

उर्मिल— "फँसाने वाले फँसते कहाँ हैं! क़ैद तो मैं हो गई। क्या तुम्हें मेरी दशा का पता है? मैं न घर की रही हूँ, न बाहर की।"

दीपक— "और मैं घर का भी हूँ और बाहर का भी। बात यह है उर्मिल! मैं मुक्त नहीं हूँ, घर और बाहर के उत्तरदायित्वों से बंधा हूँ।

मुझ पर ज़िम्मेवारियाँ हैं।"

उर्मिल— "सब कुछ कहा, पर यह न कहा कि उर्मिल तेरी भी ज़िम्मेवारी मुझ पर है।"

दीपक— "तुम तो स्वयं समर्थ हो।"

उर्मिल— "पुरुष समर्थ होते हैं और स्त्री असमर्थ। चाहे स्त्री कितनी भी कर्मठ क्यों न हो, उसके लिये पुरुष का सहारा आवश्यक है। आप को क्या मालूम कि मैं कितने ताने सहती हूँ, कितनों की विषैली आँखें मुझे घूरती हैं। बोलो दीपक, क्या तुम मुझे इस तरह परेशान होते देखते रहोगे? अब मैं तुम से दूर रहना नहीं चाहती। अपने साथ ही ले चलो मुझे।"

सुनकर दीपक के हृदय की लौ काँप उठी। भड़क कर बोले— "यह कैसे हो सकता है उर्मिल!"

उर्मिल— "जैसे वह हो सकता है। यदि किसी पुरुष में किसी स्त्री को निभाने का दम नहीं है तो उसे उससे खेलना नहीं चाहिये। आख़िर उस दिन तुमने मुझे क्यों मजबूर किया?"

दीपक— "यह हर मनुष्य की विवशता है।"

उर्मिल— "किसी को विवश करके अपनी विवशता का प्रदर्शन करना कहाँ तक उचित है? यदि वह विवशता थी तो यह भी विवशता है।"

दीपक— "उचित और अनुचित का निर्णय नहीं हो सकता। हर व्यक्ति अपने अनुसार उचित या अनुचित मानता है। विवशता मेरी जितनी उस दिन थी उतनी ही आज भी है। ठीक वह है जो तुम कहती हो, अनुचित यह है जो मैं कह रहा हूँ। पर मैं एक कायर हूँ, कमज़ोर। शायद प्रणय के बिगुल बजाने वाले शिष्ट पुरुष मेरे जैसे ही होते हैं।

सभ्य कहलाने वाले मानव जब अपना मुँह शीशे में देखते हैं तो उनके चेहरों पर ऐसी ही झाँकियाँ दिखाई देती हैं। कैसी विडम्बना है, मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम मुझे, एक दूसरे को प्यार करते हैं, दोनों का दूर रहना दुर्भर है। लेकिन डरते भी हैं, समाज से, दुनिया से काँपते भी हैं। हम प्रेम का अमृत भी पीना चाहते हैं और मान भी रखना चाहते हैं। समझ में नहीं आता यह छल हम में क्यों है! चन्द्रमा की आकृति में यह कलंक किस विधि ने रचा है! तुम ही बताओ उर्मिल! मुझे क्या करना चाहिये?"

उर्मिल— "रास्ता तो एक ही है और वह है शादी।"

"शादी! निश्चित यही एक रास्ता है, किन्तु यह भी कौन सहन करेगा? घर, बाहर, समाज और देवकी देवी क्या कहेंगी? कुछ समझ में नहीं आता। इधर कुआँ है और उधर खाई। साँप के मुँह में छछूंदर आ गई है, खाये तो मरा और छोड़े तो मरा। उर्मिल! जिसके इंगित में आनन्द ही आनन्द है, जो गंगा की तरह पवित्र और फूल की तरह सुन्दर है, जो साहस और श्रम की देवी है। और एक मैं हूँ, जो पलायन कर रहा हूँ, डरता हूँ, अपराध करता हूँ।"

सोचते सोचते दीपक ने कहा— "तुम में सत्य भी है और सौन्दर्य भी। जो कुछ कहा वह ध्रुव है। क्या नारी की इन विशेषताओं का कोई उत्तर है? उर्मिल! तुम मुझे कितना जानती हो?"

उर्मिल— "जितना कोई पुजारी अपने देवता को जानता है।"

दीपक— "उर्मिल! मैं छली हूँ।"

उर्मिल— "ग़लत है।"

दीपक— "मैं कामी हूँ।"

उर्मिल— "नहीं।"

दीपक— "उर्मिल ! मुझे तुमसे मोह है, लोभ है।"

उर्मिल— "यह सब झूठ है, झूठ है।"

दीपक— "यह सब भावुकता में कह रही हो, सत्य वही है जो तुम पहले कह रही थीं।"

उर्मिल— "वह भी सत्य था और यह भी सत्य है।"

दीपक— "यह तुम्हारी महानता हो सकती है। पर यह समझ लो उर्मिल ! कि मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकता। वह प्रकरण एक आवेग था।"

उर्मिल— "अच्छा, तुमने चाहे कभी कुछ भी कहा हो, लेकिन आज मैं यह सच सच जानना चाहती हूँ कि वास्तव में क्या तुम मुझसे शादी करना नहीं चाहते ? क्या यह तुम्हारे मन का उत्तर है ?"

दीपक— "नहीं देवी ! मन का नहीं, डर का। सच तो यह है कि तुमसे शादी करने का अर्थ है किसी के हृदय को चोट पहुँचाना और वह मैं कभी नहीं कर सकता। तुमसे विवाह करने का अर्थ है अपने यश को धूल में मिलाना, जिसकी कल्पना से मैं काँप जाता हूँ।"

उर्मिल— "यह तुम्हारा सामाजिक अपराध होगा, कानूनी अपराध होगा या मानवीय ?"

दीपक— "शायद तीनों ही तरह के अपराध होंगे।"

उर्मिल— "कल तक तो तुम कहते थे प्रेम पुण्य है, आज प्यार को अपराध बना कर उसका तिरस्कार कर रहे हो।"

दीपक— "यहाँ के रीति रिवाज ही ऐसे हैं।"

उर्मिल— "रीति रिवाज स्थायी और व्यापक नहीं होते। अच्छा तो यह होता कि तुम मुझे उपदेश देते। पर मैं तुम्हें बता दूँ कि केवल

शाश्वत नियम ही व्यापक और स्थायी हैं, बाकी सब बदलते रहते हैं। विवाह की प्रणाली विश्व भर में एक ही तो नहीं, सदा से एक ही तो नहीं चली आ रही। कितने प्रकार के विवाह हैं विश्व में!"

दीपक— "पर हम जहाँ रहते हैं वहाँ के क्या तरीके हैं! हमारे रीति रिवाज, हमारे सामाजिक ढंग, हमारे नियम पाश्चात्य सभ्यता से पृथक् हैं।"

उर्मिल— "यह कहते तो अधिक अच्छा होता कि हम अपराध को न्याय मानते हैं, पाप को पुण्य कहते हैं, अनैतिकता को नैतिकता बखानते हैं। यदि ऐसा ही था तो तुमने उस दिन क्यों न सोचा? मुझे लाचार क्यों किया?"

दीपक— "यही प्रश्न मेरे दिमाग में चक्कर काट रहा है। उस दिन मैंने तुम्हें क्यों लाचार किया? आज मैं क्यों लाचार हूँ? इस लाचारी में भी मन वही चाहता है जो तुम चाहती हो, फिर भी विवशता है।"

उर्मिल— "तुम कर नहीं सकते, तो कहते क्यों हो? लिखते कुछ हो, बोलते कुछ हो, मन में विद्रोह की ज्वाला, वाणी पर क्रान्ति के गीत और जब क्रियात्मक प्रसंग उठता है तब पलायन कर जाते हो। समाज से डरना आसान है, उसे बदल नहीं सकते। ख़ैर, शायद संसार में ऐसा ही होता है। अब यह संदर्भ न छिड़ेगा। न मेरी शक्ल दिखाई देगी, न मेरे शब्द सुनोगे। जो तूफान उठा है या तो मैं उसे स्वयं में समा लूँगी या उसमें नष्ट हो जाऊँगी। तुम शब्दों के अंगारे उगल उगल कर संतोष मानते रहो। मैं तो उस समुद्र को मीठा करने चलती हूँ जिसके खारी पानी से किसी की प्यास नहीं बुझती।"

और फिर उर्मिल एक तूफान की तरह दीपक से मुँह फेर कर चल दी। दीपक ने उसे रोकना चाहा पर अब तीर छूट चुका था। कुछ देर

दीपक खड़े खड़े सोचते रहे। उधर को दौड़े जिधर उर्मिल गई थी, यहाँ वहाँ देखा, पर क्या कटा हुआ पतंग उड़ाने वाले के हाथ आसानी से आता है!

दीपक को संसार फीका लगने लगा। मनुष्य के सामने न जाने कितने क्षण आशा के और कितने निराशा के आते हैं। कभी वह स्वप्नों के महल बनाता है, कभी वैराग्य के गीत गाता है। घटनाएँ अदलती-बदलती रहती हैं।

दीपक ने आप ही आप कहा—"परिणामों से मनुष्य को सबक़ लेना चाहिये। आख़िर मनुष्य के जीने का लक्ष्य क्या है? उर्मिल मुझसे मिली, सुख का क्षण आया, दुःख की घटायें घिरीं, जैसे यह सब स्वप्न था। यह जागरण का स्वप्न था किन्तु नींद के स्वप्न से भिन्न तो नहीं था। कौन मुझे यह सब करने की प्रेरणा देता है? किसने मुझ से कहा था कि उर्मिल को आलिंगन में बाँध ले, किसने मुझे समाज का डर दिया, किसने मुझमें यश की चाह भरी, किसने मुझे यह अनर्थ करने की आज्ञा दी? सचमुच यह एक अनर्थ है। कितना अनर्थ होता है आज के संसार में! धोखा, व्यभिचार, लूट, कुरीतियाँ! पिसा जा रहा हूँ मैं इन पाटों में। उर्मिल ने ठीक कहा है, कथनी में विद्रोह है, करनी में नहीं। मैं दुनिया को बदलूँगा, विद्रोह करूँगा।"

कहता कहता दीपक हँसा, आप ही आप कह उठा—"मूर्ख! दुनिया को तो बाद में बदलेगा, पहले अपने आप को तो बदल! दुनिया को तू नहीं बदल सकता, अपने को बदल सकता है। बाहर की दुनिया देखने से पहले अपने अन्तर में झाँक! कितना स्वार्थ भरा है वहाँ, कितनी विषमता है! मनुष्य समाज से नहीं, अपने स्वार्थों से डरता है। अपने को श्रेष्ठ समझने वाला कितना कलुषित होता है! जाति, धर्म, धन, दौलत छाये पड़े हैं मनुष्य की महानता पर। खो दिया मैंने वह अमूल्य

रत्न जो जीवन में बहार लेकर आया था।

"अब क्या करूँ? मुझे अपने आप से ग्लानि हो रही है। उर्मिल निकट आकर भी दूर हो गई। नहीं, मैंने उसे दूर कर दिया। अब वह सोचती होगी कि दीपक कितना क्षुद्र है। सचमुच मैं क्षुद्र हूँ।

"आज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि दुनिया को नहीं स्वयं को बदलूँगा, अपने आँसुओं से अपने दागों को धोऊँगा। रास्ते साफ़ और निश्चित हैं। सबसे पहला रास्ता आज से सत्य का अपनाता हूँ। मैं जीवन में कभी झूठ नहीं बोलूँगा, झूठ नहीं बोलूँगा, झूठ नहीं बोलूँगा।

"और, और मैं किसी के सुख में नहीं, सभी के दुःखों में भागीदार बनूँगा। यह क्या! जान पड़ता है मेरा बोझ हलका हो गया, मेरी आत्मा में बल आ गया है, मुझ में आत्म-विश्वास उमड़ रहा है! कितनी शक्ति है मनुष्य की दृढ़ता में! उर्मिल गई पर एक रास्ता दे गई। क्या मैं उसके ऋण से उऋण हो सकूँगा!"

मनुष्य जब आत्म-समीक्षा करता है तो उसे सत्य का प्रकाश मिलता है। दीपक को उजाला मिला। यही तो आत्म-दर्शन है। दीपक को अपने कर्त्तव्यों का ध्यान आया। उसने बस का टिकिट लिया और दो घंटे बाद देवकी देवी के सामने आ खड़ा हुआ।

काफी रात हो चुकी थी लेकिन देवकी देवी तो पूरा पूरा दिन और रात रात भर दीपक का इन्तज़ार करती रहती थीं। दीपक को देखते ही उन्होंने कहा— "कह कर दो घंटे को गये थे, दो दिन लगा दिये। कहाँ रुक गये थे?"

क्षण भर मौन रहने के बाद दीपक की आँखों से आँसू निकल पड़े। उसने आँसू पोंछते हुए कहा— "मैं अपराधी हूँ, दंड के लिये आपके सामने उपस्थित हूँ।"

देवकी— "क्या अपराध किया है तुमने? और इतने उद्विग्न क्यों हो रहे हो?"

दीपक— "बहुत बड़ा अपराध किया है। व्यभिचारी हूँ मैं।"

देवकी— "कौन है वह जो व्यभिचारी नहीं है? संसार में प्रायः व्यभिचारी और अत्याचारी ही तो होते हैं।"

दीपक— "मैं एक लड़की से प्रेम करने लगा था। मानसिक सम्वन्ध शारीरिक भी हो गया।"

देवकी— "कहाँ है वह लड़की?"

दीपक— "मैंने उसे पृथक् कर दिया। शायद वह मुझसे सदा सदा के लिये दूर हो गई हो।"

देवकी ने चौंक कर कहा— "क्या उसने आत्म-हत्या कर ली?"

दीपक— "नहीं, उसे मुझ से घृणा हो गई।"

देवकी— "क्या तुमने कोई ऐसा काम किया जिससे उसे तुमसे नफ़रत हुई?"

दीपक— "हाँ, मैंने उसका और उसके प्यार का तिरस्कार किया। इस पर वह दुखी होकर दूर चली गई।"

देवकी— "अच्छा होता यदि तुम प्यार करके उसे निभाते भी। ख़ैर, ऐसा भी हो जाता है। यह कोई अक्षम्य अपराध नहीं।"

दीपक— "मैं समझता था यह सुनकर आप मुझसे नफ़रत करने लगेंगी।"

देवकी— "कोई किसी को अपना माने और उससे घृणा भी करे, यह क्या सम्भव है? अच्छा, परेशानी छोड़ो। और दिल्ली से आये खाली हाथ चले आये, नीरजा के लिये कुछ नहीं लाये?"

दीपक— "मन कुछ ऐसा उचटा कि एकदम चला आया। मुझे भूख लगी है।"

देवकी— "आँच सुलग रही है, आटा मँडा रखा है, नीरजा ने भी खाना नहीं खाया है। अभी पराँठे सेक कर देती हूँ।"

कहते हुए देवकी देवी ने अँगीठी पर तवा रख पराँठे सेंकने शुरू कर दिये। नीरजा और दीपक ने बहुत मना किया पर देवकी देवी शरीर से बीमार रहती हुई भी मन से काम करने को आकुल रहती थीं। दीपक यहीं से खाना खाकर गया था। वैसे दिल्ली में इधर उधर कुछ खाया था पर उससे क्या पेट भरता है! गर्म गर्म पराँठे पेट भर कर खाये, खूब खाये।

खा पीकर जब खाट पर लेटे तो देवकी देवी ने कहा— "पीछे से तुम्हारे दोस्त आये थे।"

दीपक— "कौन?"

देवकी— "दिवाकर।"

दीपक— "उससे तो मैं कह गया था कि दिल्ली से दो दिन बाद आऊँगा।"

देवकी— "बड़े गहरे मित्र हैं न तुम्हारे। इसलिये तुम्हारे पीछे से हमारी देखरेख को चले आये।"

दीपक— "क्यों, क्या आपकी तबियत कुछ अधिक खराब हो गई थी?"

देवकी— "नहीं, लेकिन दीपक! ऐसे दोस्तों के साथ न रहा करो जो दोस्ती को कलंकित करें। दिवाकर अच्छा आदमी नहीं है। उसने तुम्हारे पीछे यहाँ झगड़े खड़े कर दिये, मेरा यहाँ रहना मुश्किल कर

दिया। उसने सबको विरोधी बना दिया, वह चरित्रभ्रष्ट यहाँ बुरी नीयत से आया था। फिर भी मैंने उसे आदर दिया। इस पर भी उसने हम पर लांछन लगाये। कुछ गुण्डे यहाँ आये, कहने लगे दीपक को घर से निकाल दो।"

दीपक— "कितना अखरता है संसार को मेरा और आपका प्रेम ! किसे अपना मानें ! संसार में जब दोस्त ही दुश्मनी करने लगे तो किस पर भरोसा करें ! जहाँ जाता हूँ वहीं कोई न कोई प्रश्न खड़ा हो जाता है। शान्ति मिलती ही नहीं। अच्छा यह है कि यहाँ से कहीं दूर चला जाऊँ। आपको भी मेरे कारण परेशान होना पड़ता है।"

देवकी— "ऐसा न कहो। मेरे लिये सबसे बड़ी परेशानी यदि कोई हो सकती है तो यही कि तुम मुझसे दूर चले जाओ।"

दीपक— "कितना पवित्र प्रेम है आपका ! जिससे प्रेम करती हैं उसके अवगुण नहीं देखतीं। आप वास्तव में माँ हैं, माँ !"

देवकी— "मैंने जो कहा था, वह कुछ किया ? लिखा पढ़ी में देर मत करो।"

दीपक— "कल करूँगा। कचहरी चलकर जैसे आप कहेंगी वैसे करा दूँगा।"

देवकी— "हाँ, कल रजिस्ट्री ज़रूर करा दो। और नीरजा की ज़िम्मेवारी से भी मुक्त होना चाहती हूँ।"

दीपक— "मुझे स्वयं यह चिन्ता है। रजिस्ट्री तो कल अवश्य करा दूँगा। नीरजा के बारे में भी एक बात मेरे दिमाग में आई है। वह प्रदीप है न !"

देवकी— "कौन प्रदीप ?"

दीपक— "वही जो अपना रिश्तेदार भी है, कई बार यहाँ आया

है। इधर तो वह मुझसे चिपका ही रहता है।"

देवकी— "अच्छा-अच्छा, समझ गई। पर ......"

दीपक— "पर क्या?"

देवकी— "पर यह लड़का सुन्दर नहीं है।"

दीपक— "असुन्दर भी तो नहीं है और फिर लड़के का क्या सुन्दर, क्या असुन्दर, भला होना चाहिये।"

देवकी— "मुझे तो वह भला भी नहीं लगता।"

दीपक— "शायद आपने उसे ध्यान से नहीं देखा, पढ़ा लिखा है।"

देवकी— "तुम जानो। पर पढ़ा लिखा होते हुए भी न जाने क्यों दिमाग में नहीं बैठता। यह बात नहीं कि मुझे वह चेहरे से ही सुन्दर नहीं लगा, मन का भी कुछ काला लगता है।"

दीपक— "यह बात नहीं है, वह बहुत सीधा है।"

देवकी— "तुम बहुत भोले हो। जान पड़ता है भोले भगवान की पूजा करते करते तुम पर उनकी भंग का भी असर हो गया है।"

दीपक— "क्या मतलब?"

देवकी— "मतलब यह कि जैसी देवी वैसे पुजारी। उन्होंने भी तो न जाने किस किस को वरदान दिये थे।"

दीपक— "आपकी राय नहीं है तो कोई ज़रूरी थोड़े ही है।"

देवकी— "मेरी तो अपनी राय वही है जो तुम्हारी है।"

दीपक— "मैं प्रदीप को बुलाकर आपसे बातें करा दूँगा। सब प्रश्न साफ़ साफ़ खोल लेंगे।"

देवकी— "जैसी तुम्हारी इच्छा।"

दीपक— "मैंने यही सोचा कि प्रदीप अपना रिश्तेदार है। हममें उसकी भक्ति भी जान पड़ती है। फिर भी नीरजा से पूछ लेना चाहिये।"

नीरजा दूसरे ही कमरे में बैठी थी। देवकी देवी ने उसे आवाज़ दी। दीपक से बोली— "प्रदीप को इसने देख तो रखा ही है, साफ़ साफ़ पूछ लो।"

नीरजा आकर देवकी देवी के पास खाट पर बैठ गई। दीपक ने कहा— "प्रदीप से तुम्हारी शादी कर दी जाये? अपनी इच्छा साफ साफ बताओ।"

नीरजा— "जो आप दोनों की इच्छा है, मेरी तो वही इच्छा है। लेकिन, यह प्रार्थना अवश्य है कि मुझे आप दोनों से पृथक् न रहना पड़े।"

दीपक और देवकी देवी ने देखा कि कहते कहते नीरजा की आँखों से टप टप आँसू निकल पड़े। देवकी देवी और दीपक भी गम्भीर हो गये। क्षण भर के लिये नीरवता छा गई। फिर दीपक धीरज देते हुए बोले— "मिलना और बिछड़ना तो सृष्टि का क्रम है। फिर भी यह तो ध्यान रखा ही जायेगा कि तुम्हें कोई दुःख न हो। यहाँ से पृथक् होने में जितना दुःख तुम्हें होगा, क्या उससे कम इस घर को होगा?"

देवकी देवी ने देखा कि कहते कहते दीपक की भी आँखें भर आई हैं। उन्होंने कुछ कहा नहीं, पर जल उनकी आँखों में भी छलक आया। आँचल से आँसू पोंछते हुए वे इतना कह ही उठीं— "मुझ से नीरजा की जुदाई नहीं देखी जायेगी।"

जिसकी चर्चा मात्र से इतनी करुणा उपस्थित हो उसकी वास्तविकता से होने वाले दुःख की क्या कोई कल्पना कर सकता है! लड़की भी क्या ही कोमल धरोहर है?

थोड़ी देर में नीरजा सो गई पर देवकी देवी को नींद नहीं आ रही थी। दीपक भी मानसिक उधेड़बुन में लगे हुए थे। कुछ देर बाद देवकी देवी ने कहा— "शरीर से तो मैं बीमार हूँ ही पर शरीर से अधिक मैं मन ही मन में बहुत घुलती हूँ। नीरजा से मुझे कितना स्नेह है यह कहने की बात नहीं, बस इतना ही कह सकती हूँ कि अगर मुझे दुनिया चूँट चूँट कर न खाती तो मैं नीरजा की शादी शायद अपने जीते जी न करती। फिर यह भी सोचती हूँ यदि मैं मर गई और नीरजा की शादी न हुई तो नीरजा का क्या होगा ?"

दीपक— "ऐसा क्यों सोचती हैं आप ? मैं तो हूँ, मेरे होते नीरजा को कोई तकलीफ न होगी।"

देवकी— "तुम तो हो, पर मेरे मरते ही तुम कुछ भी नहीं रहोगे। मेरे बाद जो कुछ होगा वह मुझे दिखाई दे रहा है। नीरजा चूँट चूँट कर खाई जायेगी और तुम पर पत्थर बरसेंगे। लोग कहेंगे तुम नीरजा के कौन होते हो ?"

दीपक— "कहेंगे कैसे ? मैं नीरजा का सब कुछ होता हूँ। कहने वालों का मुँह तोड़ दूँगा।"

देवकी— "कुछ भी नहीं कर सकोगे। मेरे मरते ही कोई तुम्हें नीरजा के पास भी नहीं खड़ा होने देगा।"

दीपक— "न तुम रहोगी, न नीरजा, फिर मैं रहकर क्या करूँगा ?"

देवकी— "वही तो मुझे चिन्ता है, मैं तो श्वास श्वास में तुम्हारे साथ हूँ। मेरे बाद तुम कहीं के नहीं रहोगे। इसलिये एक उपाय सोचती हूँ। यदि ऐसा हो जाये तो समस्या हल हो सकती है।"

दीपक— "वह क्या ?"

देवकी— "वह यह कि शादी से पहले प्रदीप से साफ़ साफ़ बातें

कर लो, मैं भी उससे साफ़ साफ़ कह दूँगी।"

दीपक— "क्या ?"

देवकी— "यही कि जब तक हम जीवित हैं नीरजा यह घर नहीं छोड़ेगी।"

दीपक— "तो फिर प्रदीप को यहाँ रहना पड़ेगा।"

देवकी— "हाँ। और दूसरे यह कि विवाह के बाद भी नीरजा की पढ़ाई बन्द नहीं होगी। मैं उसकी शादी करना चाहती हूँ। इसका यह अर्थ नहीं कि उसे परावलम्बी बनाना चाहती हूँ। वह स्वावलम्बी रहे, साहस और सुख से जीवन व्यतीत कर सके, अपने और दूसरों के लिये सुख से जी सके, इसके लिये उसे पूर्ण शिक्षा मिलनी ही चाहिये।"

दीपक— "प्रदीप से बात करूँगा।"

देवकी— "हाँ, बात खुलासा कर लेना। मैं नीरजा का विवाह उसकी इच्छाओं को कत्ल करके नहीं करना चाहती। मैं जैसी खुद हूँ वैसी बहादुर उसे बनाना चाहती हूँ। कोई उसे सताये तो वह उसे उसका उत्तर दे सके। किसी के आश्रित न रहे।"

दीपक— "प्रदीप बुरा लड़का नहीं है। उसके विचार नये जान पड़ते हैं। फिर भी उससे आपकी इच्छानुसार सब खुलासा कर लेंगे। नीरजा की और उसकी भी बातें करा देंगे।"

देवकी— "तुम जानो।"

दीपक— "आप एक विचार सामने रख देती हैं, उचित-अनुचित को दिखा देती हैं। फिर भी अपनी भावनायें सागर में छिपे रत्नों की तरह तूफानों के साथ बाहर नहीं निकालतीं।"

देवकी— "यह देश पराया है, इसमें सदा तो किसी को रहना नहीं है। बेकार ही है यह सब तमाशा। मुझे मरने में कोई दुःख भी नहीं है। बस तुम्हारा और नीरजा का क्या होगा, इसका दुःख अवश्य है। ईश्वर मेरा यह दुःख दूर कर दे, यही उससे प्रार्थना है।"

दीपक— "ईश्वर तो सब के दुःख दूर करता है, वह तो परम पिता है। मनुष्य का कुछ भी उससे छिपा नहीं है। सर्वत्र उसकी गति है। वह एक होते हुए भी अनेक है।"

देवकी— "ईश्वर तो सब पर दया करते हैं पर किसी किसी से वे अकारण ही न जाने क्यों रूठ जाते हैं। किसी को इतना सुख देते हैं कि वह भोगता भोगता थक जाता है और किसी किसी को इतने दुःख देते हैं कि वह दुःख उठाता उठाता भी नहीं थकता।"

दीपक— "चार दिनों का मेला है, फूस की झोंपड़ी है यह संसार! चिन्गारी लगते ही भस्म हो जाता है। इस काँटों भरी डाल में मनुष्य भौंरे की तरह फूल फूल के लिये पीड़ित होता फिरता है।"

देवकी— "अपनी तो बीत ली, थोड़ी सी रही है वह भी बीत जायेगी।"

दीपक— "इस काजल की कोठरी में से जो भी बिना दाग़ लगे निकल जाये, वह बड़ा भाग्यशाली है।"

देवकी— "बावले हो, काजल की कोठरी में यदि दाग़ न लगे तो अन्तर की आँखों को अंजन नहीं मिलता। यहाँ कहीं अँधेरा है, कहीं उजाला। तम से प्रकाश का महत्व है और प्रकाश से तम ज्योतिर्मय होता है।"

दीपक— "इस समय तो आप बड़ी दार्शनिक हो रही हैं।"

देवकी— "मैं तो दार्शनिक का अर्थ भी नहीं समझती। जैसा मन कहता है बोल पड़ती हूँ। अच्छा अब सो जाओ, बहुत रात हो गई। सुबह तुम्हारे लिये मूँग की दाल का हलवा बनाऊँगी। बस, अब सो जाओ।"

तभी सामने वाली मस्जिद में मुल्ला ने बाँग दी, मुर्गा बोला और घड़ी ने टन टन पाँच बजाये।

१२

कोई धुन में खोया रहता है और कोई धुन में कुछ खोजता फिरता है। जीवन एक धुन है। हर व्यक्ति को कोई न कोई धुन लगी हुई है। प्रत्येक कुछ न कुछ पाने के लिये परेशान रहता है। मनुष्य की पूर्ति कभी नहीं होती। शायद असंतोष का ही नाम जीवन है। अतृप्ति में ही गति जान पड़ती है। जिसमें चाह है उसी में लगन है, उसी में आग होती है, वही खोकर कुछ खोजता है।

अजीब उलझन है संसार में मनुष्य का जीवन। वह उलझन को जितना सुलझाना चाहता है उतना ही उलझता चला जाता है। कोई कितना भी विरक्त रहे पर संसार चक्र में फँसे बिना नहीं रह सकता। कोई कितना भी शान्त रहना चाहे पर अशान्ति उसका पिंड नहीं छोड़ती। संघर्ष संसार के सिद्धान्त हैं। प्रश्नोत्तर मानव का जीवन है।

दीपक के दिमाग में उधेड़बुन मची हुई थी। उर्मिल की स्मृति उसके हृदय में कौंध कौंध जाती थी। नीरजा का प्रश्न उसे उद्वेलित कर जाता था। समाज की आँखें उसे घूर घूर जाती थीं। मानवता उसके अधरों पर बार बार मुस्करा कर दुःख-सुख के गीत गाती थी। आदर्श और यथार्थ उसकी राह में लड़ते झगड़ते चलते थे।

कुछ ऐसे होते हैं जिनको केवल अपनी ही चिन्ता रहती है। कुछ को अपने साथ साथ दूसरों की भी चिन्ता होती है। और कुछ ऐसे होते हैं जो न अपनी चिन्ता करते हैं न दूसरों की। फिर भी उनको फुर्सत

नहीं होती, उनका धर्म कर्म दूसरों का अनिष्ट करना होता है।

मनुष्य को पहचानना बड़ा कठिन है। देवता दीखने वाले दैत्य भी होते हैं और दैत्य समझे जाने वाले देवता भी हो सकते हैं। यहाँ किसी को किसी का कुछ पता नहीं। पता करने की आवश्यकता भी नहीं है। इधर उधर देखने की बजाय अपनी राह चलना अच्छा होता है।

दीपक अपनी राह चले जा रहे थे। लोग उन्हें देख रहे थे पर वे अपनी धुन में बढ़े जा रहे थे, ऐसे ही जैसे कोई भावुक दार्शनिक बढ़ा चला जाता है। रास्ते में कितनी ही ऐसी आवाज़ें आईं जिनसे उनका मन दुखी हुआ। वे आवाज़ें घृणा और हँसी की थीं। कठोर शब्दों में इनको वे वाक्-बाण भी कह सकते हैं जो पवित्र मनों को चीरते चले जाते हैं।

कहा जाता है कि 'भलाई नौ कोस और बुराई सौ कोस'। किन्तु यह गलत है। 'भलाई सौ कोस और बुराई नौ कोस' ऐसा कहना चाहिये। असत्य का अस्तित्व नहीं है, सत्य का अस्तित्व है। सत्य की जड़ सदा हरी है। अपयश असत्य के सहारे नहीं चल सकता। एक न एक दिन सत्य अपयश का अँधेरा चीर कर प्रखर दिनमान की तरह प्रकट होता है।

दीपक कुछ ही कदम आगे बढ़े थे ज़िलाधीश ने उनके पास आकर कार रोकी। सरकारी अधिकारियों को इस प्रकार दीपक के पास रुकते देख चारों ओर से भीड़ जमा हो गई। ज़िलाधीश ने ससम्मान दीपक बाबू को नमस्कार किया। वे नम्रता से हाथ जोड़कर बोले— "मैं तो आपके ही पास जा रहा था। राष्ट्रपति ने आपको 'पद्मभूषण' की उपाधि से विभूषित किया है। उनका आदेश आया है कि मैं आपको सूचित कर आऊँ।"

दीपक मुस्कराये। उत्तर में धन्यवाद कहा। थोड़ी ही देर में रेडियो

और पत्र आदि से भी यह सूचना आ गई। क्षण भर पहले दीपक की निन्दा हो रही थी, अब स्तुति होने लगी। उनके गले में फूलों के हार पड़ने लगे। जहाँ तहाँ से बधाई के तार आने लगे।

गजाधर, चौधरी बाबू, अर्जुनसिंह और दिवाकर भी तारीफ़ के पुल बाँधने आ पहुँचे।

"वाह दीपक जी, ख़ूब प्रतिभा पाई है आपने! सरकार ने उपाधि देकर आपको सम्मान देने से बड़ा सम्मान अपनी उपाधि को दिया है। यह तो आपके लिये बहुत छोटी सी बात है। आपकी कला का मूल्यांकन तो युग युग करेंगे। चमत्कार है, चमत्कार!"

इस प्रकार न जाने कितनी प्रशस्तियाँ बखानी गईं। दिवाकर ने कहा— "आज शाम को इस सम्मान-प्राप्ति के उपलक्ष में मेरे यहाँ एक जलपान-गोष्ठी चलेगी। खूब रंग रहेगा। क्यों दीपक जी, स्वीकार है न?"

दीपक ने मन ही मन में कहा— "संसार में शायद कला का मूल्य नहीं, सरकार की दी हुई उपाधि का मूल्य है। कला पर भी राजनीति राज्य करती है।"

फिर मुस्कराते हुए बोले— "आपकी दावतें खाते खाते तो पेट बहुत भर चला है दिवाकर जी!"

गजाधर ने अट्टहास करते हुए कहा— "अजी, इनसे दावत क्या, इनसे तो अदावत कीजिये। बड़े आये धन्ना सेठ के बच्चे जलपान-गोष्ठी करने वाले! अभी अभी तो बिना लगाम बोल रहे थे। अब कलक्टर को दीपक का सम्मान करते देखा तो सुर में बोलने लगे।"

दीपक गजाधर के स्वभाव को जानते थे। समझ गये कि क्षण दो क्षण में ही गालियाँ बकने वाले हैं। विषयान्तर करते हुए बोले—

"मिठाई में मिर्च मत मिलाओ। अब फिर मिलेंगे। ज़रा बहुत ज़रूरी काम से जा रहा था।"

तभी प्रदीप ने आकर दीपक के गले में फूलों का हार डाला। प्रदीप बधाई का वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि दीपक ने कहा— "मैं तो तुम्हारे ही पास जा रहा था।"

प्रदीप— "हुकुम करिये! कष्ट की क्या आवश्यकता थी, तलब कर लेते।"

दीपक— "मुझे तुमसे कुछ ज़रूरी काम है।"

और फिर अन्य सभी की ओर देखते हुए बोले— "अच्छा मैं चलता हूँ, फिर मिलूँगा।"

प्रदीप को साथ ले दीपक चल दिये। काफी दूर तक चले गये, शायद दो तीन मील। फिर एक मैदान की घास पर बैठ गये। रास्ते भर प्रदीप दीपक की स्तुति बखानते रहे, उनके गुण गाते रहे, उनकी कृपाओं के आभार मानते रहे। जब दोनों घास पर बैठ गये तो कुछ क्षण मौन रहने के बाद दीपक ने कहा— "अधिकार प्रेम का होता है या आज्ञा का?"

प्रदीप— "आप मुझसे प्रेम करते हैं, अतः जो आज्ञा चाहें दे सकते हैं।"

दीपक— "क्या वास्तव में मेरा तुम पर अधिकार है?"

प्रदीप— "मुझ पर मेरी इच्छा से भी अधिक आपका अधिकार है। आपने मुझे आश्रय दिया है, प्यार दिया है और रास्ते दिये हैं। मेरा रोम रोम आपका ऋणी है।"

दीपक— "अगर मैं तुम्हारा क़त्ल कर दूँ?"

प्रदीप— "मैं चूं नहीं करूँगा।"

दीपक— "अगर मैं तुम्हारा सर्वस्व ले लूँ ?"

प्रदीप— "यह तो मेरा बड़ा सौभाग्य होगा।"

दीपक— "अगर मैं जन्म भर तुम से सेवा चाहूँ ?"

प्रदीप— "यही तो मेरी जीवन की इच्छा है।"

दीपक— "यह सब तुम भावुकता में तो नहीं कह रहे हो ?"

प्रदीप— "नहीं, वर्षों तक आपके साथ रहकर मैं निर्णायक उत्तर दे रहा हूँ।"

दीपक— "यदि तुम्हारा मन तुमसे कहे कि दीपक बुरा है तो ?"

प्रदीप— "सब बेकार होगा। मुझ पर मन की नहीं आपके प्रेम की विजय है, आपकी प्रतिभा की विजय है। मेरी आप में भक्ति है, भक्ति।"

दीपक— "फिर सोच लो, मैं कुछ कहूँ उससे पहले यह समझ लो कि मैं तुम्हारा क़त्ल करने जा रहा हूँ।"

प्रदीप— "आप जो भी कहेंगे वही मुझे मान्य है।"

दीपक— "मनुष्य लाख उपकार सहन कर सकता है पर एक अपकार सहना बड़ा कठिन होता है। तुम मेरी लिहाज़ मानकर मुझे वचन न दो।"

प्रदीप— "मैं अपनी दृढ़ता से कह रहा हूँ।"

दीपक— "तो सुनो, मैं नीरजा से तुम्हारी शादी करना चाहता हूँ किन्तु कुछ शर्तों पर।"

नीरजा से शादी की बात सुनते ही प्रदीप को मानो स्वर्ग मिल गया। उसने तुरन्त कहा— "मुझे हर शर्त स्वीकार है।"

दीपक— "देखो प्रदीप! मैं नीरजा से बहुत प्रेम करता हूँ।

विवाह के बाद भी मैं चाहता हूँ कि मैं, तुम और नीरजा साथ ही रहें। लोग इसे बुरा भी समझ सकते हैं।"

प्रदीप— "समझने दो लोगों को बुरा। हम सब साथ ही रहेंगे।"

दीपक— "नीरजा उच्च शिक्षा पाने की बहुत इच्छुक है, उसकी पढ़ाई बन्द नहीं होगी।"

प्रदीप— "मैं स्वयं पढ़ा लिखा हूँ। वह जहाँ तक पढ़े वहाँ तक पढ़ सकती है।"

दीपक— "नीरजा अपना घर कभी नहीं छोड़ेगी, तुमको ही वहाँ रहना होगा। यह तो तुम जानते ही हो कि देवकी देवी बीमार चल रही हैं। नीरजा विवाह के बाद भी उनकी सेवा करेगी।"

प्रदीप— "नीरजा ही नहीं, मैं भी उनकी सेवा करूँगा।"

दीपक— "खूब सोच लो, इस गुलाब में काँटे ही काँटे हैं। कहीं बुलबुल बनकर गुलाब की पाँखुड़ियाँ न नोच डालना। मैं नीरजा को नहीं, तुम्हारे हाथों में अपने जीवन की तपस्या सौंप रहा हूँ। कहीं उस का तिरस्कार न कर बैठना।"

प्रदीप— "अजी, आप बेफिक्र रहें।"

दीपक— "तो फिर तुम तैयार हो?"

प्रदीप— "बिल्कुल।"

दीपक— "तो अच्छी बात है शाम को देवकी देवी के घर आना। वे भी तुमसे बातें कर लेंगी। नीरजा और तुम भी बातें कर लेना। देखो प्रदीप! धनुष से छूटा हुआ तीर वापिस नहीं आया करता। विवाह से पहले सब कुछ सोच लेना। यह समझ लेना कि हम अच्छे बाद में हैं, बुरे पहले।"

प्रदीप तो प्रसन्नता में फूले नहीं समा रहे थे। 'हाँ' करते हुए बोले—"शाम को किस समय आऊँ ?"

दीपक— "यही कोई छः साढ़े छः बजे।"

नमस्ते के बाद दीपक देवकी देवी के यहाँ चल दिये। प्रदीप मन ही मन लड्डू फोड़ने लगे। ऐसे ही जैसे कोई वर्षों की साधना के बाद सफलता पाकर प्रसन्न होता है। शाम को छः बजे देवकी देवी के घर जाने की तैयारी करने लगे। फ़र्स्ट क्लास हेयरकटर के यहाँ बाल कटवाये। सूट पर प्रेस करवाया। जूतों पर क्रीम लगवा कर पालिश करवाई। और फिर कठिनता से घड़ी देख देख कर छः बजाये। जब छः बजे तो शीशे के सामने बार बार मुँह देखा, क्रीम पाउडर लगाया। सचमुच विवाह के लिये लड़के या लड़की की पसन्दगी भी एक बड़ी सिद्धि है। शारीरिक सौन्दर्य भी बड़ा बलवान होता है। सुन्दरता से मनुष्य का स्वाभाविक अनुराग है न! श्रृंगार भी कितना आवश्यक है! किन्तु कोई कितना भी बन ले विधि के दिये हुए सौन्दर्य के सामने कृत्रिम सुन्दरता सुबह सुबह के तारे के समान ही होती है। सौन्दर्य भी विधाता का अद्भुत वरदान है।

नीरजा सुन्दर थी, बहुत सुन्दर। उस भोले सौन्दर्य में एक ऐसा अल्हड़पन था जैसा गुलाब की खिलने वाली कली में होता है, उस कली में जो खिल कर फूल बनने को पाँखुड़ियाँ खोलने लगती है। भोली सुन्दरता भी क्या ही अनोखी होती है! नीरजा मानो कोमल हृदय की प्रतिमा थी। जैसे मानसिक सत्यों ने आकार धारण कर लिया हो। बाह्य सौन्दर्य में यदि आन्तरिक सौन्दर्य मिश्रित न हो तो वह काटने को दौड़ता है। जिसे विधाता की दी हुई आन्तरिक और बाह्य सुन्दरता प्राप्त होती है उसे मानो लौकिक और पारलौकिक आनन्द मिल जाते हैं।

शुभ घड़ी बड़ी कठिनता से आती है। प्रतीक्षा के क्षण कल्प की तरह बीतते हैं। बड़ी मुश्किल से छः बजे। देवकी देवी और दीपक ने बड़ी लगन से प्रदीप के स्वागत की तैयारियाँ कीं। फल, मेवा, मिठाई, शर्बत आदि कलात्मक ढंग से सजा कर रखे थे। देवकी देवी पास ही एक खाट पर लेटी थीं।

प्रदीप ने घंटी बजाई। दीपक दौड़ कर द्वार पर गये। उसे आदर सहित अन्दर ले आये। बैठने के थोड़ी देर बाद बातचीत शुरू हुई।

देवकी देवी ने कहा— "अच्छी तरह हो ?"

प्रदीप— "आपकी दया है।"

देवकी— "क्या कर रहे हो ?"

प्रदीप— "दफ्तर में नौकरी कर रहा हूँ। दीपक बाबू ने अपना क्वार्टर मुझे दे दिया है, उसी में रहता हूँ।"

देवकी— "विवाह के बारे में क्या विचार है ?"

प्रदीप— "दीपक बाबू ने जैसा मुझ से कहा मैं तैयार हूँ।"

देवकी— "नीरजा को मैंने बड़े चाव से पाला है। उसे कोई कष्ट न हो। यह समझ लेना कि उसमें ग़लतियाँ ही ग़लतियाँ हैं। अतः अगर वह ग़लती करे तो उसको क्षमा कर देना। अपनी ही ग़लती की तरह उसकी ग़लती देखना।"

प्रदीप— "ठीक है।"

देवकी— "दूसरे यह कि दीपक मुझे नीरजा और तुम दोनों से अधिक प्रिय है। यह समझलो कि मेरे लिये जैसे तुम वैसे ही वे दोनों, एक ही आत्मा की तरह साथ रहना।

प्रदीप— "यह तो मेरे लिये बड़ी खुशी की बात है। दीपक बाबू

का साथ मिलना बहुत बड़ा सौभाग्य है।"

देवकी— "मैं बीमार हूँ। जीवन का कोई भरोसा नहीं। मेरे बाद यह घर बन्द न होने पाये।"

प्रदीप— "ऐसा ही होगा।"

देवकी— "एक बात और, नीरजा की पढ़ाई बन्द मत करना, उसे पूरी शिक्षा दिलाना।"

प्रदीप— "मैं स्वयं पढ़ाई का हामी हूँ। नीरजा की जब तक इच्छा हो पढ़े।"

देवकी देवी दीपक की तरफ़ देखती हुई बोलीं— "तो अब नीरजा को भी बुला लो। उसकी भी जो कुछ इच्छा हो बात कर ले।"

दीपक ने नीरजा को आवाज़ दी। अन्दर के कमरे का पर्दा हटाकर गुलाब के फूलों से लदी एक डाल सी नीरजा उस कमरे में आई। देवकी देवी के पास खाट पर बैठ गई। कुछ क्षण सब मौन रहे।

दीपक बाबू ने मौन भंग किया, बोले— "चुप क्यों बैठ गये, बात करो। ये प्लेटें प्रतीक्षा कर रही हैं, इनको भी कृतार्थ करो। देखिये उस अनन्त कलाकार की देन, इन सेबों में क्या ही सुन्दर रंग भरा है! ये सन्तरे, अनार और केले कितने सुन्दर और कितने सरस हैं! ये किशमिश, काजू और बादाम की गिरियाँ, अद्भुत गुण हैं इनमें! यदि मानव का मन भी ऐसा ही रसपूर्ण हो तो क्या ही कहने हैं!"

प्रदीप— "आपके तो शब्द शब्द में रस है। मैं तो बड़ा भाग्यशाली हूँ कि आपके साथ रहता हूँ और अब तो बिल्कुल ही साथ रहने का बानक बन गया।"

दीपक— "निकट रहने पर कहीं निरादर न कर बैठना। चन्दन

के बन में रहने वाली भीलनी चन्दन को जला डालती है। जो कुछ कह रहे हो वह झूठ न होने पाये, यही प्रभु से प्रार्थना है। अब आप दोनों आमने सामने हो, जो बातें करनी हों साफ़ साफ़ कर लो।"

प्रदीप— "मुझे कुछ बातें नहीं करनी। हर बात मंजूर है।"

नीरजा यद्यपि भोली थी, कम बोलती थी, फिर भी अवसर के अनुसार बोली— "विवाह से पहले मेरी कुछ शर्तें हैं।"

प्रदीप— "क्या ?"

नीरजा— "मेरी स्वतन्त्रता में कोई बाधा नहीं पड़ेगी। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रखूंगी।"

प्रदीप— "ठीक है।"

नीरजा— "दूसरे यह कि आप, मैं और दीपक बाबू साथ ही रहेंगे। और मैं अपनी पढ़ाई बन्द नहीं करूँगी।"

प्रदीप— "मैं तो स्वयं ही दीपक बाबू के साथ रहने में प्रसन्न हूँ, आपने तो मेरे मन की बात कही है। जब तक आपकी इच्छा हो पढ़ना।"

नीरजा— "जब तक माँ जीवित हैं मैं इनकी सेवा करूँगी। इनके जीते जी मुझ पर सबसे पहली आज्ञा इनकी चलेगी। इनके बाद आपकी और दीपक बाबू की। लेकिन आप दोनों में से यदि किसी ने भी एक दूसरे का अनादर किया तो जो अनादर करेगा वह मेरे अनादर का पात्र होगा।"

प्रदीप ने हर बात के लिये 'हाँ' भर ली। नीरजा ने अपने सम्पूर्ण बाह्य और अन्तर धन से उनको अपनाया। प्रदीप ने नीरजा से विवाह का प्रस्ताव स्वीकृत पा समझा कि उसे वह मिल गया जिसका वह

इच्छुक था।

सुन्दर लड़की, धन-मान पाकर कौन प्रसन्न नहीं होता! लेकिन पाने की इच्छा भी तभी तक बलवती रहती है जब तक कुछ अप्राप्य रहता है। जब तक किसी को कुछ मिलता नहीं तब तक वह उसके लिये दीन रहता है। जब वह उसे मिल जाता है तो उसमें अहंकार आ जाता है।

ठीक यही स्थिति उसकी होती है जिससे कुछ प्रिय वस्तु छूटती है। शाश्वत सत्यों और सामाजिक नियमों में बड़ा अन्तर होता है। यह नहीं कहा जा सकता कि अभीष्ट की प्राप्ति ईश्वर का वरदान है या समाज की विडम्बना!

दीपक बाबू भावुक थे, विचारशील थे, और दार्शनिक भी हो जाते थे। उनका कुछ ऐसा स्वभाव था कि जिसके होते थे उसे अपना सब कुछ सौंप देते थे। प्रदीप से नीरजा के विवाह की बात पक्की हो गई। दोनों ओर के परिवारों की स्वीकृति की मोहर लग गई। शादी की तिथि भी तय हो गई। विवाह में अभी तीन चार महीने की देर थी।

पर दीपक बाबू तो प्रदीप को अपना मान चुके थे। वे छाया और शरीर की तरह साथ रहने लगे। साथ खाते, साथ घूमते, साथ सोते, यहाँ तक कि श्वास श्वास में साथ थे।

सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक दीपक प्रदीप की प्रसन्नता में लगे रहते थे। दोनों जब भी मिलते थे तभी बातचीत का विषय प्रायः विवाह ही रहता था। वैसे दीपक बाबू आजकल गम्भीर हो गये थे। जब भी प्रदीप के साथ होते कहा करते— "संघर्ष करता करता थक गया हूँ, अब तुम्हें पाकर जैसे मैं संघर्षों से मुक्त हो गया।" कभी कभी भावुकता में यह भी कह देते थे— "विवाह के बाद बदल न जाना प्रदीप!"

प्रदीप दृढ़ता से उत्तर देते— "नहीं, बिल्कुल नहीं, आप हमेशा और हर स्थिति में मेरे आराध्य हैं।"

इधर देवकी देवी की तबियत धीरे धीरे बिगड़ने ही लगी। किसी दिन वे तनिक उभरतीं और किसी दिन बिल्कुल गिर जातीं। ऐसे ही जैसे दीपक का तेल जब ख़त्म होने लगता है तो वह बिचित्रता से जलता ढलता है।

एक दिन शाम के समय देवकी देवी, दीपक और नीरजा बैठे बातें कर रहे थे। देवकी देवी कह रही थीं— "कोठी की लिखा पढ़ी तुमने करा ही दी, शादी की बात भी पक्की कर दी, बस अब कोई काम बाकी नहीं रहा।"

सुनकर दीपक की आँखों से आँसू निकल पड़े। उसने आँसू पोंछते हुए कहा— "आप चली जायेंगी तो मैं तो निराश्रित ही हो जाऊँगा।"

देवकी— "नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैंने सब ठीक कर दिया है। नीरजा को अच्छी तरह समझा दिया है। प्रदीप से भी साफ़ साफ़ बातें करली हैं और फिर मैं अभी मर थोड़ी रही हूँ।"

दीपक ने देखा कि देवकी देवी सान्त्वना के लिये ऐसा कह रही हैं। वैसे अब दीपक में तेल नहीं है। देवकी देवी ने भी देखा कि दीपक आज बहुत उदास हैं। उनको ऐसा लगा जैसे दीपक समझ रहे हैं कि देवकी देवी के बाद वे भटक जायेंगे। अपने जीते जी देवकी देवी दीपक को परेशान देख कर उनकी परेशानी दूर करने के लिये विह्वल हो उठती थीं। "हर वक्त पागलों जैसी बातें करते हो। जाओ, तुम और नीरजा सिनेमा देख आओ।"

और फिर नीरजा की तरफ़ देखती हुई बोलीं— "चल उठ, वह जो जयपुर से तेरे लिये साड़ी लाई थी, बदल ले और सिनेमा चली जा!"

नीरजा ने उठ कर साड़ी बदली, बालों में कंघा किया और चलने के लिये चप्पलें पहनीं।

तभी प्रदीप ने कमरे में प्रवेश किया। दीपक बाबू को चप्पलें पहनते देख और नीरजा को उनके साथ कहीं जाने के लिये तैयार देख बोले— "कहाँ की तैयारी है?"

दीपक— "सिनेमा जा रहे हैं, अच्छा हुआ आप भी आ गये। चलिये देख आयें।"

प्रदीप— "हम आ गये तो चलें। बस अब आप ही देख आइये!"

दीपक— "यह बात नहीं है। अभी अभी प्रोग्राम बना है। मेरी तो इच्छा भी नहीं थी। पर इनकी आज्ञा कैसे टालता!"

प्रदीप— "हाँ, हाँ, देख आओ। मैं तो ज़रा थका हुआ हूँ। नहीं तो मैं भी चलता।"

दीपक— "सिनेमा देखना कोई ज़रूरी तो नहीं है। अब आप आ गये तो नहीं जाते। यहीं गपशप लड़ेंगी।"

पर नीरजा को न जाने की बात अच्छी नहीं लगी। उसने चिढ़ कर कहा— "नहीं जाना था तो पहले चलने की न कही होती।"

नीरजा को चिढ़ते देख प्रदीप ने कहा— "जाओ, देख आओ न! मैं तो वैसे ही कह रहा था। आप जाइये, मैं यहाँ माता जी के पास बैठता हूँ। बेफ़िक्र होकर जाइये!"

दीपक— "तो जब तक हम आयें यहीं मिलना, फिर साथ ही क्वार्टर पर चलेंगे।"

प्रदीप देवकी देवी के पास कुर्सी पर बैठ गये। नीरजा और दीपक सिनेमा देखने चल दिये। रास्ते में दीपक सोचने लगे, "अब से पहले

सैंकड़ों ही बार प्रदीप ने मुझे और नीरजा को सिनेमा में, बाज़ार में और मेलों में जाते देखा है। पर आज तो मुझे कुछ ऐसा लगा है जैसे वह सोचता है कि नीरजा मेरे साथ नहीं जानी चाहिये थी। तो क्या हुआ, आइन्दा मैं इस बात का ध्यान रखूँगा कि मैं उसी बात में प्रसन्न रहूँ जिसमें सब प्रसन्न हों। जीना तो सिर्फ़ इसीलिये चाहता हूँ कि खुशियाँ लुटाता रहूँ।" तस्वीर शुरू हो गई। नीरजा दार्शनिक विचार और भावुकता से दूर चित्र देख कर कभी भावुक होती थी, कभी हँसती थी और कभी आश्चर्यविभोर हो जाती थी। पर दीपक कुछ और ही देख रहे थे। देख रहे थे कल्पना और वास्तविकता का संसार, सोच रहे थे काव्य और जीवन में कितना अन्तर है। कल्पना वास्तविकता से बहुत दूर है। फिर सोचते क्या मनुष्य उतनी ही कल्पना करता है जितनी वस्तुतः सत्य होती है ?

१३

अधिकार और प्यार में बहुत बड़ा अन्तर है। सत्कार अधिकार से भी मिलता है और प्यार से भी। पर अधिकार में भय होता है और प्यार में उमंग। अधिकार से प्राप्त होने वाले सत्कार में मानसिक उपेक्षा और डर बना रहता है, और प्यार से प्राप्त होने वाले सत्कार में मोह एवं मानसिक आनन्द रहता है। किन्तु संसार में अधिकार का जो महत्व है प्यार उस स्थिति में व्यक्तिगत रह जाता है। समाज अधिकार का आदर करता है, प्यार का नहीं।

नीरजा अधिकार के बंधनों में एक प्रकार से बँध चुकी थी पर प्यार उसके संस्कारों में शामिल था। यह भी कहा जा सकता है कि अधिकार देह को बन्दी बनाता है और प्यार मन को बाँधता है। वैवाहिक बंधन प्रथम दैहिक बंधन होता है, उसमें मानसिक ऐक्य शनैः शनैः होता है। नीरजा का देवकी देवी और दीपक से मानसिक सम्बन्ध था, उनके प्रति उसका अटूट प्रेम श्वासों में समा चुका था। उसकी श्रद्धा अभेद्य हो चुकी थी। उसका भोला बचपन और बचपन का वह मधुर प्रेम तो असीमित था।

यद्यपि उसे विवाह की खुशी थी, पर विछोह का दुःख भी उसके हृदय में बराबर चुभ चुभ जाता था। वह सब कुछ चाहते हुए भी दीपक बाबू और देवकी देवी से दूरी नहीं चाहती थी। और न दीपक और देवकी देवी ही चाहते थे कि नीरजा उनसे इतनी दूर हो जाये कि वे उसके पीछे दौड़ते ही रह जायें। लेकिन अधिकार मन की नहीं सुनता।

विवाह तो दूर रहा, विवाह की पहली बात ही स्वत्व के पंजे फैलाने लगी थी। देवकी देवी और दीपक मन ही मन में एक वेदना सी, एक टीस सी महसूस करते।

अब देवकी देवी और दीपक की बातचीत का प्रायः एक ही विषय रहने लगा। नीरजा का विवाह हो जायेगा, वह परायी हो जायेगी। पता नहीं प्रदीप कल कैसा रहे। आज वह हर बात के लिये "हाँ, हाँ" करता है, कल कहीं "नहीं, नहीं" तो नहीं करने लगेगा ? हमने नीरजा को जितना प्यार दिया है कहीं वह अधिकार के अहंकार से उस पर अनर्थ तो नहीं करने लगेगा।

ये भावनायें तीव्र होतीं और देवकी देवी रो पड़तीं। दीपक के भी मन का बाँध टूट जाता। दोनों देर तक इस प्रश्न पर सोचते, बातें करते और दुखी होते।

बातें करते करते दीपक ने कहा— "कहीं प्रदीप बदल तो नहीं जायेगा।"

देवकी देवी जितनी कोमल थीं उतनी ही कठोर भी, तुरन्त ही बोलीं— "बदल जायेगा तो अपनी राधा को याद करेगा। मेरी नीरजा उसके अत्याचार सहने वाली नहीं है, वह असमर्थ भी नहीं है। तुम चिन्ता क्यों करते हो, मैंने उसे अच्छी तरह समझा दिया है। जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुम्हें परेशान होने की ज़रूरत नहीं। मेरे बाद मुझे नीरजा से ऐसी आशा नहीं कि वह तुम्हारे किये को भूल जायेगी। वह बड़ी समझदार लड़की है। वैवाहिक संबंध कोई दासता नहीं, बराबर का नाता है। अच्छा व्यवहार करेगा, अच्छा करायेगा। बुरा करेगा तो वह अपने घर राज़ी, यह अपने घर राज़ी।"

दीपक— "हम ऐसा सोच रहे हैं, पर यह नहीं लगता कि वह

अनीति पर उतारू होगा। हम लोगों के प्रति जैसी श्रद्धा, जैसा आदर और जैसा सेवा भाव उसमें है वह कोई अविश्वास का रूप नहीं लगता।"

देवकी— "छोड़ो ये बातें, अब तो तुम विवाह की तैयारियाँ करो। एक तो नीरजा के लिये ऐसा और इतना कपड़ा आना चाहिये जो नये से नया हो और वर्षों के लिये पर्याप्त हो। और बारात के लिये देसी घी का बढ़िया से बढ़िया खाना बनना चाहिये। दहेज के लिये बर्तन, साड़ियाँ सब तुम और श्याम जाकर ले आना। श्याम को चिट्ठी लिख दो कि छुट्टी के दिन चला आयेगा। जेवर भी नये फैशन का बनवाना। मैं तो कहीं जा आ नहीं सकती पर देखना कोई कमी न रह जाये। यह एक ही तो विवाह करना है मुझे। बेटा या बेटी नीरजा ही है मेरे लिये।"

दीपक— "आप चिन्ता न करें, किसी काम में कमी न रहेगी। नीरजा के विवाह के लिये मुझे अपने आपको भी बेचने में संकोच नहीं। उसे मैं बहुत खुश देखना चाहता हूँ। ईश्वर की कृपा से किसी को कुछ कहने का अवसर नहीं आयेगा। अच्छा मैं चला, प्रदीप के साथ आज वैजीटेरियन में खाने का प्रोग्राम है। मैंने कह दिया है तुम्हें स्टेशन से ले लूँगा। उसके बाद सिनेमा का कार्यक्रम है।"

देवकी— "क्या तुम भी हर समय प्रदीप प्रदीप के पीछे लगे रहते हो? जैसे तुमने अपने आपको उसके हाथों बेच ही डाला।"

दीपक— "हाँ, आप ठीक कहती हैं। मैंने अपने आपको उसके हाथों बेच ही डाला है। मेरा तन मन धन उसके लिये है। जब कोई व्यक्ति किसी को अपना मान ले तो अपना सम्पूर्ण स्वत्व उसे सौंप ही देना चाहिये। उसे समझ लेना चाहिये कि उसका अपना अब कुछ नहीं रहा। वैसे मुझे सभी को प्रसन्न देखकर खुशी होती है। पर नीरजा की खुशी के लिये और प्रदीप की प्रसन्नता के लिये तो शायद मेरा जीवन

ही बना है।"

देवकी— "जान पड़ता है आप भावुकता में पागल भी हो जाते हैं। मैं औरत होते हुए भी इतनी नहीं खोती कि कोई हलवा समझ कर निगल जाये। देखना मेरे बाद अपने को खो न देना। और यह भी ध्यान रखना कि नीरजा को मैं उसके हाथों में बाद में और तुम्हारे हाथों में पहले सौंप रही हूँ। उस पर आँच न आने पाये। अगर उसे कोई तनिक भी जलती आँखों से देखे तो तुम्हें मेरी शपथ है, नीरजा को उधर न जाने देना। क्या बताऊँ स्वास्थ्य ने जवाब दे दिया। नहीं तो तुम्हें किसी भी तरह परेशान न होने देती।"

दीपक— "अब भी जितना सुख आप देती हैं क्या वह किसी सुख से कम है! आप एक आधार हैं जिसके सहारे हम खेल सकते हैं, गलतियाँ कर सकते हैं, हँस सकते हैं, रो सकते हैं। बस यह सहारा बना रहे, फिर हमें कोई चिन्ता नहीं, कोई दुःख नहीं।"

देवकी— "अच्छा जाओ! जब लौट कर आओ तो दर्जी के यहाँ से नीरजा के ब्लाउज़ लेते आना, सिल गये होंगे। और सूट भी सिल गया हो तो लेते आना। चैस्टर के लिये सोचती हूँ दिल्ली चलूँगी तो वहीं से कपड़ा ले आऊँगी। काश्मीर जाने की भी बहुत इच्छा है। नीरजा को और तुमको भी काश्मीर दिखा लाऊँगी। वहाँ से कुछ गर्म कपड़ा भी ले आऊँगी। पर जाऊँ कैसे, शरीर तो चलता ही नहीं। अच्छा हो यदि काश्मीर दिखा लाते।"

दीपक— "स्वस्थ हो जाओ तो फिर चलें। और अब तो प्रदीप भी चलेंगे। खूब रहेगा।"

कहते हुए दीपक जाने लगे। तभी नीरजा अपनी किसी सहेली के यहाँ से आई। दीपक बाबू को जाते देख बोली— "मेरे आते ही चल दिये।"

दीपक— "हाँ, आज प्रदीप के साथ खाना है, मैंने उनको वैजिटेरियन में खाने के लिये निमंत्रित किया हुआ है।"

नीरजा— "अच्छा साहब, जाइये। अब तो आपको हर समय एक ही की रट लगी रहती है।"

दीपक— "क्यों, मैं तो पहले से ही हर समय प्रदीप के साथ रहता रहा हूँ, अब कोई नई बात नहीं है।"

नीरजा— "पहले से नहीं, यह कहिये तीन वर्ष से वे आपके साथ रहते हैं। मैं तो देखती हूँ कि हर समय वे आपके पीछे लगे रहते हैं। अब देख रही हूँ कि आप उनके पीछे लग रहे हैं। जाइये।"

दीपक— "लीजिये, जा रहा हूँ।" रास्ते भर वे सोचते रहे, "बस अब सब ठीक हो गया। प्रदीप सब सँभाल लेगा। मैं चाहता हूँ वह बहुत बड़ा आदमी बने। उसके पास दौलत हो, कार हो, इन्सानियत हो और नीरजा के लिये सम्पूर्ण तन, मन, धन हो।"

सोचते सोचते वे वहाँ आ गये जहाँ प्रदीप से मिलने को कहा था। लेकिन समय से एक घंटा अधिक हो गया पर प्रदीप नहीं आये। दीपक उत्सुकता से इधर उधर चक्कर काटते रहे। लगभग डेढ़ घंटे लेट प्रदीप वहाँ आये। आते ही बोले— "बहुत देर हो गई होगी आपको! मैं ज़रा एक दोस्त के साथ टहलता रह गया था।"

इस कृत्रिम उत्तर की स्पष्टता यद्यपि ऐसे ही थी जैसे बिजली दमक कर रोशनी करती है, पर दीपक ने सरलता से कहा— "कोई बात नहीं, इन्तज़ार में जो मज़ा है वह मिलन में कहाँ।"

और फिर उन्होंने एक रिक्शा रोकी। दोनों ने होटल में खूब ठाठ से खाना खाया। पर दीपक का ध्यान खाने में इतना नहीं था जितना प्रदीप को प्रसन्न करने में था।

दीपक प्रदीप को किसी स्वार्थ के कारण नहीं, कर्त्तव्य और प्रेम के नाते प्रसन्न कर रहे थे। प्रदीप भी दीपक की हर बात में 'हाँ' में 'हाँ' मिला देते थे। उनकी इस 'हाँ' में दीपक के प्रति श्रद्धा प्रतीत होती थी, उस श्रद्धा में कोई रहस्य लगता था।

दीपक बार बार प्रदीप से कहते— "मैंने तुम पर बहुत बड़ा विश्वास किया है। प्राय: अपना तप तुम्हें समर्पित कर दिया है। अब तक तुम मेरी ओर देखते थे, अब मैं तुम्हारी ओर देखूँगा। देखना बदल न जाना।"

प्रदीप बड़ी दृढ़ता से उत्तर देते— "मैं तो जीवन भर आपका सेवक रहूँगा। आपको मेरी ओर से कभी कोई कष्ट नहीं होगा।"

दीपक— "बात यह है कि मैं संघर्ष करता करता थक सा गया हूँ। भविष्य में संघर्षों से बचना चाहता हूँ।"

प्रदीप— "विवाह तक के सारे संघर्ष आप सँभाल लीजिये। उसके बाद सब कुछ मैं सँभाल लूँगा।"

इस प्रकार बातचीत करते घूमते घामते दोनों को काफ़ी रात हो गई। करीब दो बजे दोनों एक दूसरे से अलग हुए। प्रदीप ने अपनी राह पकड़ी और दीपक पुराने विचारों में तैरने लगे। व्यक्ति कितना भी व्यस्त रहे, कैसे भी विचारों में डूबे, पर कुछ न भूलने वाले प्रसंग प्रत्यक्ष होते ही रहते हैं। अमोलक बाबू की मित्रता, उर्मिल का प्यार, दुख-सुख की कहानियाँ और भविष्य की आशंकायें उनको झंझोड़ डालती थीं। कभी कभी वे सोचते, "कैसा अनोखा जीवन है! संसार का भी क्या ही विचित्र विधान है! मिलते हैं, बिछुड़ते हैं, दूर होते हैं और कभी कभी ऐसे बिछुड़ते हैं कि फिर वह साकार रूप ही नहीं रहता जिससे फिर मिला जाये। यहाँ मिलना बिछुड़ना भी अनोखा क्रम है। क्या अब उर्मिल

कभी नहीं मिलेगी? अमोलक बाबू भी अब बम्बई के ही हो गये। देवकी देवी का भी अब कोई भरोसा नहीं किस समय दूर चली जायें। फिर आखिर जीने का उद्देश्य क्या है? किस से यह पता चले क्यों जी रहा हूँ? ग्रंथों को पढ़ा, धर्मों में ढूँढा, सन्तों और महात्माओं से जानना चाहा पर सब अपनी अपनी बीन बजाते हैं। कोई यह रहस्य सुलझाता ही नहीं, जीवन और मृत्यु का भेद ही बना हुआ है। अस्पष्टता बनी रहती है, स्पष्ट कुछ होता नहीं। कभी कभी धर्म अधर्म लगता है। बहुत बार पाप पुण्य प्रतीत होता है। कितना विरोध है एक बात का दूसरी बात से। कहीं हिंसा ठीक है, कहीं अहिंसा। कहीं काम ग्राह्य है कहीं त्याज्य, कहीं मोह का महत्व है कहीं वैराग्य का। तो फिर ऐसे जीवन से क्या लाभ और मरने में क्या संतोष है? अब तो संसार से कुछ मन ऊबता सा जा रहा है। देवकी देवी न रहीं तो फिर क्या होगा! क्या प्रदीप की दया पर जीना अच्छा लगेगा। वह दुर्बल है जो जीने के लिये दूसरे का सहारा तकता है। इसलिये कुछ रास्ते बनाने चाहियें, ऐसे रास्ते जिन पर मनुष्य निडर होकर शान्ति से चल सके, जहाँ वह अशान्ति से हट जाये। अच्छा फिर, फिर क्या, संसार के लिये कुछ सिद्धान्त निश्चित करने चाहियें। विश्व को एक धरातल पर लाने के लिये एक नई पुस्तक की आवश्यकता है। उन सिद्धान्तों और नियमों की ज़रूरत है जिनमें मनुष्य को संतोष से जीने का आधार मिल पाये।"

सोचते सोचते दीपक बाबू ने महसूस किया जैसे अन्तर से कोई प्रकाश फूटता चला आ रहा है। कोई अदृश्य शक्ति कह रही है, 'सिर्फ सोचो मत काम भी करो, बदल कर संसार को बदलो, क्रान्ति के नये कदम आगे बढ़ाओ!'

जैसे दीपक बाबू के सामने कोई नई पिक्चर आकर खड़ी हो गई। वे घर आये। देवकी देवी उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं, पहली ही आवाज़

में बोलीं— "अच्छा।"

दरवाज़ा खुला। देवकी देवी ने कहा— "बहुत देर कर देते हो! घर से बाहर जाते हो तो आने का होश भी नहीं रहता।"

दीपक— "आज मुझे एक नई बात मिली है।"

देवकी— "तुम्हें तो रोज़ रोज़ ही कोई न कोई नई बात मिलती ही रहती है।"

दीपक— "नहीं, आज मुझे प्रकाश मिला है।"

देवकी— "कौन प्रकाश ?"

दीपक— "कोई प्रकाश नहीं, रोशनी मिली है, रोशनी।"

देवकी— "मैं नहीं समझी।"

दीपक— "मैं संसार को बदलूँगा।"

देवकी— "क्यों संसार के पचड़े में पड़ते हो, सुख से रहो। व्यर्थ संसार के पीछे अपनी शान्ति नष्ट करते डोलते हो। संसार, संसार, संसार! संसार तुम्हारे पीछे भौंकता फिरता है और तुम उसका राग अलापते फिरते हो।"

दीपक— "अच्छा आप सो जाओ, मैं कुछ सिद्धान्त लिखूँगा।"

देवकी— "अन्दर के कमरे में चले जाओ, दरवाज़ा बन्द कर लो। बिजली जलाकर जो कुछ करना है करो, मुझे तो नींद आ रही है। तुम्हें तो रात भर घूमने और जागने की आदत पड़ गई है।"

मुस्कराते हुए दीपक अन्दर के कमरे में आ गये। मेज़ के सामने एक कुर्सी पर बैठे और काग़ज़ पर लिखने लगे। उन्होंने लिखा— मानव को सर्वसुखी बनाने के लिये ये सिद्धान्त आवश्यक हैं: "प्रणय पर मन के अतिरिक्त कोई भी सामाजिक या वैधानिक बन्धन सर्वथा अनुचित है।"

"आर्थिक विषमता का अन्त अनिवार्य है।"

"धार्मिक विभिन्नताओं को एक रूप देने के लिये विश्व में एक धर्म की स्थापना होनी चाहिये।"

"प्रत्येक के लिये कर्म और प्रत्येक के लिये जीने के साधन जुटाने ज़रूरी हैं।"

"संसार में एक सरकार और सबको समान अधिकार मिलने ज़रूरी हैं।"

और भी न जाने क्या क्या दीपक ने लिखा। फिर उसने कुछ पत्र लिखे। इस तरह सुबह होते ही उसने जो कुछ लिखा था वह सब लेकर परमहंस के पास पहुँचा। उन्होंने वे सब सिद्धान्त सुने और कहा— "इनमें आग लगा दो! ब्राह्मण धर्म ने जो व्यवस्था दी है वही उचित है। प्रणय पर सामाजिक, कानूनी और धार्मिक बन्धन अनिवार्य हैं। धार्मिक विभिन्नताओं का अन्त नहीं हो सकता। विषमता की इति असम्भव है। सारे संसार में एक सरकार और एक से अधिकार न कभी हुए, न होंगे। विश्व के ठेकेदार मत बनो। तुमको सिर्फ अपने ऊपर अधिकार है। ऐसे संघर्षों को मोल न लो जिनको बर्दाश्त न कर पाओ। भजन करो, आनन्द लो!"

दीपक— "जो सिद्धान्त मैंने लिखे हैं वे तनिक तर्क की कसौटी पर तो कसिये!"

परमहंस— "प्रपंचों में मत पड़ो!"

दीपक— "राम और कृष्ण क्या प्रपंचों में पड़े थे?"

परमहंस— "मैं बहस नहीं करता, जो इच्छा हो करो।"

दीपक— "मैं तो आपका सहयोग चाहता हूँ। एक ऐसा विश्व

संघ बनाना चाहता हूँ जो इन सिद्धान्तों पर समाज का निर्माण कर सके।"

परमहंस— "नहीं, मैं बिल्कुल तैयार नहीं हूँ, आनन्द से रहता हूँ, शान्त हूँ, भगवद्भजन में बाधा नहीं डालना चाहता।"

दीपक— "लेकिन मनुष्य को झूठ, दुःख, विनाश और अपराध के रास्ते पर चलाने वाले वे सिद्धान्त हैं जिन पर चलना मनुष्य के लिये असम्भव है।"

परमहंस— "और मनुष्य को खुली छूट देने में तो उसमें और पशु में कोई अन्तर ही नहीं रहेगा।"

दीपक— "नहीं, जब किसी का पेट भरा होता है तो नीयत होते हुए भी और नहीं खा सकता।"

परमहंस— "मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं कोई बहस करना नहीं चाहता। जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो करो। मेरा इन सिद्धान्तों से नहीं तुम से प्रेम है। ईश्वर तुम्हें सुरक्षित रखे। मैं जानता हूँ कि तुम उज्ज्वल भावनाओं से प्रेरित होकर यह सोच रहे हो। अच्छा, अब जाओ, हम भजन करेंगे।"

दीपक उठकर चले आये। सामने वाले मरघट में देखा कलजुग चिलम फूँक रहा था। दीपक उसके पास जाकर खड़े हो गये। खाँसने के बाद कलजुग ने कहा— "ओहो दीपक बाबू! आज तो सुबह सुबह ही आ गये। कहिये कुछ खाओगे? रात सेर भर रबड़ी ले आया था। यहाँ आया तो नशे में रबड़ी अपने पीछे रखकर भूल गया। रात भर रबड़ी कहाँ गई, रबड़ी कहाँ गई, चिल्लाता रहा। सुबह नशा उतर गया तो पहले तो एक चेले से जलेबियाँ मँगा कर खाईं। अब श्रीमान् जी सामने आ गये तो लो खाओ प्रेम से रबड़ी।"

दीपक— "अभी तो मैं नहाया भी नहीं हूँ। और फिर यहाँ मरघट में ? वह सामने चिता जल रही है। बराबर में कुत्ता किसी की खोपड़ी से खेल रहा है।"

कलजुग— "अजी दीपक बाबू ! आप भी किस पचड़े में पड़े! आप एक चिता को कहते हैं, कल से तो ताँता लगा हुआ है। तुम्हें पता है, लाला करोड़ीमल, धन्ना सेठ और वे यशवन्तराय जिनके सारे शहर में झण्डे गड़े हुए थे कल ही तो मरे हैं। जब कल उन्हें जलाया जा रहा था तो मुझे बड़ी हँसी आई। था तो मैं नशे में पर चुपचाप हँस रहा था। उस दिन मैं किस्मत का मारा करोड़ीमल के पास चला गया, कहा 'एक चवन्नी दे दो। दो तरकून खाऊँगा।' मुझसे अकड़कर बोले, 'जाओ जाओ, यहाँ कोई तरकूनों की दूकान नहीं लग रही है। मेहनत करते नहीं मुफ्त की खाते फिरते हैं।' मैं भी चूकने वाला थोड़े ही था, वह फटकार सुनाई कि हर जन्म में याद रखेंगे। बेईमानी और चोरबाज़ारी से करोड़पति बने हुए थे।"

दीपक— "तुम भी विचित्र व्यक्ति हो कलजुग !"

कलजुग— "विचित्र क्या, आज के जमाने का सही चितेरा हूँ। और सुनाओ देवकी देवी तो ठीक हैं? बिचारी बड़ी भली हैं, जब जाता हूँ बिना माँगे कुछ न कुछ देती हैं।"

दीपक— "क्या सुनायें कलजुग ! कुछ नई सनक सवार हुई है। सारे संसार में एक मानव धर्म स्थापित करना चाहता हूँ।"

कलजुग— "तो जाओ करो, मेरी खोपड़ी इन बातों के लिये नहीं है। हम से तो नशे पानी और खाने पीने की बात करो। सुबह सुबह पक्के राग अच्छे नहीं लगते। हल्के फुलके गीत हों तो सुनाओ। कोई नया गीत लिखा है ?"

दीपक— "हाँ, लिखा है। उस दिन जो वह अधजली लाश देखी थी उस पर एक प्रगतिशील गीत लिखा है।"

कलजुग— "तो गाओ!"

दीपक— "गाना तो आता ही नहीं।"

कलजुग— "जैसा भी उलटा सीधा गा सकते हो गाओ! मुझे ही क्या गाना आता है! लेकिन कभी कभी धुन में पंचम राग अलापने लगता हूँ।"

दीपक गुनगुनाने लगे और कलजुग झूमने लगा।

१४

संसार के दो किनारे हैं। एक किनारे तक जीवन चलता है और दूसरे किनारे तक आते जीवन समाप्त हो जाता है। अन्त से पहले आराम नहीं मिलता। मृत्यु के अन्त में ही मनुष्य को विश्राम मिलता है। प्राणी शान्ति की खोज में भटकता फिरता है। पर जितना शान्ति पाने का प्रयत्न किया जाता है उतना ही अशान्ति उसे झँझोड़ती है। शान्ति की इच्छा ही अशान्ति की जड़ है। संसार और शान्ति दोनों का मूलभूत विरोध है। संघर्षों का नाम संसार है। यहाँ हर व्यक्ति जूझता है। जो जूझ नहीं सकता वह जी नहीं सकता। आँसू बहाने वाला कायर होता है।

देवकी देवी जीवन भर जूझी थीं। उनमें जीने का दम था। शरीर से बीमार पर मन से जैसे मृत्यु उनको छू नहीं सकती। मुस्कराती हुई बोलीं— "दीपक! यहाँ आओ, मेरे पास बैठो। नीरजा, तू भी यहाँ आ!"

दीपक और नीरजा देवकी देवी के दायें बायें बैठ गये। देवकी देवी मुस्कराईं, बोलीं— "तुम समझते हो मैं बीमार हूँ। पर मुझे कोई बीमारी नहीं। अब मैं सब बीमारियों से मुक्त हूँ, मेरी तबियत बिल्कुल ठीक है। सारे दुःख दूर हो चुके हैं। यह समझो कि रात बीतने वाली है। सुबह दीपक बुझ ही जाता है। काम पूरे हो चुके। आज कौनसी तारीख है?"

दीपक— "२१ जनवरी।"

देवकी— "२१ जनवरी सन् १९६० । रात के अभी साढ़े ग्यारह बजे हैं, आध घंटे बाद बाईस तारीख आ जायेगी। बस…"

देवकी देवी कुछ इस तरह से बोल रही थीं कि न जाने क्यों दीपक का मन कुछ घबरा सा रहा था। उसने रुँधे कंठ से कहा— "बस क्या ?"

देवकी देवी हँसी। "बावले हो, घबराने लगे! बस यह कि काम निमट लिया। तुम दोनों ने मेरी खूब सेवा की।"

फिर नीरजा की तरफ देख कर बोलीं— "नीरजा! दुनिया में रक्त का रिश्ता तो होता ही है पर इन्सानियत और प्यार का सम्बन्ध सबसे बड़ा है। देख, मेरे बाद रोने धोने में ही पागल मत बनियो। जहाँ मैं दीपक पर तुझे छोड़े जा रही हूँ वहाँ दीपक को भी तेरे ऊपर छोड़ती हूँ। जैसे हम तीनों ने निभाई है, वैसे ही तुम दोनों भी निभाना। घबराना नहीं, मुस्कराते हुए जीना। वैसे मैंने तुझे सब लायक कर दिया। दीपक एक मज़बूत इन्सान है। मुझे इन पर भरोसा है। इनके होते तुझे कोई कष्ट नहीं होगा। क्या बताऊँ, जीवन पर विश्वास नहीं रहा। नहीं तो मैं तेरा विवाह अभी कुछ और ठहर कर करती। प्रदीप के घर वाले मुझे बड़े लालची लगते हैं। अभी से कभी कहते हैं, 'सगाई में पाँच हजार नकद भेजना', 'लम्बरेटा भेजना', कभी कुछ कहते हैं, कभी कुछ कहते हैं। मैंने तो दीपक से कहा भी था। कह देते, हम शादी नहीं करते। आदमी कुछ अच्छे नहीं जान पड़ते। बेचारे दीपक की अभी से टाँगें तुड़वा दीं। खैर जो होनी होगी होगी वही। दीपक तो खुद ही मुझसे भी अच्छा विवाह करने को उत्सुक हैं। दहेज का कपड़ा खरीद ही लाये। जेवर भी तैयार हो गया, बर्तन, घी वगैरह सब आ ही गया है। शादी के दिन भी कितने रह गये! एक ही महीना तो बाकी है। लेकिन एक महीना हो या एक दिन, उसका समय नहीं चूकता। जाने वाला न जाने के लिये कितना भी ज़ोर लगाये पर ले जाने वाला तो एक

क्षण को भी नहीं छोड़ता। संसार में जो भी आता है उसको जाना तो पड़ता ही है, दो दिन पहले या पीछे। व्यर्थ ही मनुष्य मरने जीने में दु:ख-सुख मानता है। जीवन में मुझे सुखों से जितना प्यार रहा है, दु:खों से उनसे कहीं अधिक नाता रहा। मैं कभी दु:खों में घबराई नहीं। तुम भी दु:खों में घबराना मत। जीवन में जो भी मिले उसे ईश्वर का तोफा समझकर ग्रहण करना। इच्छा थी कि थोड़े दिन और रुक जाती। लेकिन इच्छायें क्या किसी की यहाँ पूरी हो जाती हैं? और जिसकी पूरी हो जाती हैं वह भी अतृप्त ही रहता है। मैंने बहुतों को देखा है। यहाँ जो भी मिले वे तभी तक अपने रहे जब तक स्वार्थ बने रहे। लेकिन जब ज़रा भी मेरी ज़रूरत पड़ी तो आँखें बदल कर बोले।

"देखो नीरजा! तुम बालक नहीं हो, समझदार हो, साहस मत छोड़ना। मेरे मरने के बाद धीरज से काम लेना। किसी के साथ अनुचित व्यवहार मत करना। इसका यह अर्थ नहीं कि किसी का अनुचित व्यवहार सहन करना। प्रदीप भी यदि तुम्हारे साथ अनुचित व्यवहार करे, यदि उसका दुर्व्यवहार सीमाहीन हो जाये, तो तुम बिना किसी बात की परवाह किये अपने पैरों पर खड़ी हो जाना। मैंने भुगता है, सम्बन्धों में स्वार्थ भी रहते हैं। लगातार पीने से शर्बत भी बुरा लगने लगता है। अधिकार का अहंकार पागल भी बना देता है। मधुरता में विष के अंकुर फूटते देर नहीं लगती। अधिक क्या कहूँ, जैसे ठीक समझो। जैसी पड़े उसी में हँसना और जीना। जीवन रोकर गुज़ारने के लिये नहीं, हँस कर बिताने के लिये है। ईश्वर तुम्हें सुखी रखे! मुझे इस विषैली दुनिया से जाने में सुख ही सुख है। दु:ख है तो सिर्फ इतना कि मुझे दीपक और नीरजा से जुदा होना पड़ेगा। वैसे संसार काँटों की तरह चुभता है। उसमें सिर्फ तुम ही मेरे लिये गुलाब के वे फूल हो जिन पर मुझे भय है कि खिलने से पहले ही आँधियाँ न आ जायें। अच्छा,

मुझे ज़रा सा पानी पिला।"

नीरजा ने पानी लाकर पिलाया। पानी पीकर देवकी देवी लेट गईं। दो मिनट बाद फिर बोलीं— "पानी और।"

इस बार दीपक ने पानी लाकर पिलाया। पर देवकी देवी की प्यास न बुझी। वे एक एक मिनट बाद पानी माँगने लगीं। पानी पीती पीती वे कहतीं— "मेरे पेट में घरर घरर हो रही है, जैसे रेल चल रही हो।"

उस दिन सुबह तक वे पानी पीती रहीं। सुबह आठ बजे के करीब वे मुँह हाथ धो खाट पर बैठीं, ईश्वर का भजन करने लगीं। दीपक से बोलीं— "तुम आज दिल्ली जाओगे?"

दीपक— "हाँ जाऊँगा तो, पर आपको डाक्टर को दिखा कर जाऊँगा। रात आपने पानी बहुत पिया है।"

देवकी— "मुझे एक काजू दे दो।"

दीपक ने उनको काजू लाकर दिये। उन्होंने एक ही काजू खाया। तभी नीरजा उनके लिये चाय का प्याला ले आई। दीपक यह कहते हुए नीचे डाक्टर को टेलीफोन करने चले गये— "तुम चाय पिलाओ नीरजा! मैं डाक्टर को बुलाता हूँ।"

नीरजा ने देवकी देवी को चाय पिलाई। उन्होंने तीन चार घूँट चाय पी। वे बोलीं— "बस अब तू भी चाय पी ले, मैं अब और नहीं पीऊँगी।"

नीरजा नहाने चली गई। कोई सात मिनट बाद दीपक डाक्टर को फोन करके लौटे। पर जैसे ही देवकी देवी के चेहरे पर निगाह डाली तो उसमें उन्होंने कुछ सदा से विचित्र चित्र देखा। जैसे वे हमेशा लेटी रहती थीं, उससे वह स्थिति बिल्कुल ही भिन्न थी।

दीपक ने चौंक कर नीरजा को आवाज़ दी, एक साथ छः सात। नीरजा नहा चुकी थी, दौड़कर आई। दीपक ने कहा— "माँ, माँ, माँ!"

उत्तर में देवकी देवी ने बोलने की कोशिश की। तीन चार बार 'हाँ' की सांकेतिक गर्दन हिलाई। दीपक बहुत घबराये। धीरे से नीरजा से यह कहते हुए कि "इनका कोई भरोसा नहीं है अब।" वे टेलीफोन पर दौड़े। नगर के सबसे बड़े डाक्टर, जिनके इलाज में वे थीं, आने के लिये मोटर में बैठ चुके थे। दीपक ने एक और डाक्टर को फोन किया। वे भी मोटर में बैठ देखने के लिये चल दिये। दस मिनट भी नहीं लगीं कि डाक्टर ने देवकी देवी के यहाँ प्रवेश किया। वे दूर से ही देवकी देवी को देख बोले— "ये तो जा रही हैं।" दूसरी बार बोले— "शी इज़ गोइंग (She is going)।"

तभी दूसरे डाक्टर ने भी प्रवेश किया। वे देखकर बोले— "कोरा-मिन का एक इन्जैक्शन लगा देता हूँ। शायद कोई असर हो।" लेकिन मृत्यु की क्या कोई दवा होती है! दोनों डाक्टर देखते रहे और देवकी देवी शान्ति से चली गईं। मृत्यु के सामने डाक्टरों की वह लाचारी कितनी दयनीय थी इसका चित्रण नहीं हो सकता। सब हाथ मलते रह गये और हंस उड़ गया।

नीरजा और दीपक फूट पड़े। पर यह तो वह विवशता थी जिसका कोई चारा नहीं। मौहल्ले वाले, रिश्तेदार, सगे सम्बन्धियों से मरने वाली का घर भर गया। सभी रो रो कर देवकी देवी की बड़ाई कर रहे थे। पर प्रतिध्वनि कहती थी कल तक तो तुम कुछ और कहते थे, आज कुछ और कहते हो। मृत्यु पर रोने वाले यदि जीवन में भी यह सोच लें कि मरना भी है इसलिये रुलाना नहीं चाहिये तो कितना अच्छा हो। पर मृत्यु का दुःख सभी को तो नहीं होता। कुछ किसी की मृत्यु पर रोते हैं, कुछ दिखाने को रोते हैं, कुछ लोक लिहाज को आँसू पोंछते हैं।

कुछ ऐसे भी रोते हैं जो किसी की मृत्यु पर जीवन भर रोते ही रहते हैं। वे खाते हैं तो रोते हुए, हँसते हैं तो रोते हुए, चलते हैं तो रोते हुए, बढ़ते हैं तो आँसुओं को पलकों के पीछे दबाये हुए। कुछ ऐसे भी हैं जो किसी की मृत्यु से खुश होते हैं, जिनकी किसी के मरने से उम्मीद पूरी होती है।

इधर देवकी देवी ने प्राण छोड़े, दीपक और नीरजा दुःखातिरेक से पागल से हो गये। उधर कहीं कहीं घी के दीपक भी जले। इधर दाह-कर्म की तैयारियाँ हो रही थीं, उधर कचहरी में दरख्वास्त दी जा रही थी। इधर आँसू बरस रहे थे, उधर देवकी देवी की जायदाद की प्राप्ति के सुनहरी स्वप्न खिलखिला रहे थे।

रोते हुए दीपक और नीरजा से कुछ लोग कह रहे थे "अब क्या रखा है भैया! मिट्टी बाक़ी है। रोना धोना बेकार है। मरना तो सभी को है और देवकी देवी तो अपनी खूब गुज़ार गईं।" लेकिन किसी के समझाने से क्या मृत्यु का घाव भरता है! एक क्षण की ना हमेशा हमेशा के लिये वियोग दे जाती है। फिर तो दोहराने के लिये कहानियाँ ही रह जाती हैं। दर्द के दीप जलाने को बाक़ी रह जाते हैं।

नीरजा दीपक को और दीपक नीरजा को देख देख कर फूटने लगे। नीरजा रो रो कर चिल्लाने लगी—"मुझे भी अपने साथ ले चलो माँ! मैं तुम्हारे बिना कैसे रहूँगी! हाय, क्या हुआ यह! तुम बोलतीं क्यों नहीं, क्यों नहीं बोलतीं माँ!" देवकी देवी के देह से लिपट लिपट कर नीरजा बिलखने लगी। दीपक रुक रुक कर फूटने लगे। पर आज देवकी देवी की लाचारी थी। जिनके होते हुए नीरजा और दीपक का एक आँसू भी नहीं निकल सकता था, आज वे रो रहे थे और देवकी देवी मजबूर थीं। मृत्यु एक रहस्य है। बोलता न जाने कहाँ चला जाता है! देवकी देवी आँखें बन्द किये चिर निद्रा में सो रही थीं। पता नहीं मरने

वाले की क्या स्थिति होती है! वह सुख में होता है या दुःख में, अपने सगे-सम्बन्धियों को रोता देख पाता है या नहीं, उनके रुदन की आवाज़ मृतक के कानों तक पहुँचती है या नहीं, वह दुःख से परे है या नहीं, कुछ नहीं कहा जा सकता।

कभी कभी न जाने कौन कह देता था, 'मरना सभी को है। यह समय रोने का नहीं, मृतक की आत्मा को शान्ति देने का है। उसे शान्ति देने के लिये उनके बताये हुए रास्तों को अपनाओ, उनके संदेशों पर चलो। सावधान दीपक! होशियार नीरजा! यही समय है जब तुम्हें कठोर परीक्षा देनी है।'

बड़ी कठिनता से दीपक ने नीरजा को रोने से कुछ रोका, देवकी देवी के प्रति कर्त्तव्य की भावना को उभारा। पर जितना ही वे दुःख दबाने का यत्न करते थे उतना ही वेदना का आवेश ऐसे ही फूट पड़ता था जैसे नदी की बाढ़ रोके से नहीं रुकती, प्रलय के समुद्र का प्रवाह दबाये नहीं दबता।

दीपक के सभी परिचित मित्र आ पहुँचे। सभी की आँखें प्रायः गीली थीं। वह तो पिशाच होता है जिसमें मृतक के प्रति भी भावना नहीं होती। मृतक न बुरा होता है, न भला। भलाई बुराई जीते जी की है। फिर भी किसी की मृत्यु आँखों में सदा सदा के लिये आँसू छोड़ जाती है।

देवकीदेवी के शव के पास कुछ रो रहे थे, कुछ बात कर रहे थे, कुछ मौन थे। तभी कलजुग ने दरवाजे से ही रोते-चिल्लाते प्रवेश किया—"चली गईं। तुम कितनी अच्छी थीं! मेरे लिये तो अब बस्ती ही सूनी हो गई। बस, अब शहर में क्यों आया करूँगा? देवकी देवी! तुम कितनी महान थीं, मुझसे कहती थीं शराब न पिया करो, सुलफा छोड़ दो और जब मैं बर्दाश्त न कर पाता था तो मुझे शराब और सुलफे के लिये पैसे

भी दे दिया करती थीं। तुमने कभी मुझसे घृणा नहीं की, उससे घृणा नहीं की जिसको आवारा समझा जाता है। मैं कभी तुम्हारे द्वार से खाली हाथ नहीं गया।"

देखने लायक बात यह थी कि कलजुग शोक में इतना डूबा हुआ था कि उसकी दृष्टि शव के अतिरिक्त और कहीं नहीं थी। सहसा उसने दीपक और नीरजा के रोने के स्वर सुने। उसका ध्यान हटा, वह एकदम अपना रोना बन्द कर दीपक से बोला— "मर्द होकर रोते हो! बावले हो, रोना छोड़ो, रोने से मरने वाले को दुःख होता है और यह रोना एक दिन का तो नहीं, ज़िन्दगी भर का रोना है। मैं तो कहता हूँ अच्छा हुआ वे मर गईं। देवकी देवी जैसी महान महिला के लिये इस पापी दुनिया से जाना ही अच्छा हुआ। यह दुनिया भले आदमी के रहने के लिये नहीं है। बहुत भला होना खतरनाक होता है। यहाँ तो कोई हम जैसा दसनम्बरियों का भी दादा ही रह सकता है।"

दीपक— "देवकी देवी बहुत अच्छी थीं कलजुग! बहुत अच्छी थीं। वे न होतीं तो शायद मेरे अक्षर न होते। वे न होतीं तो मैं कुछ भी नहीं होता।"

कलजुग ने अपनी आँख का आँसू पोंछते हुए कहा— "हाँ दीपक बाबू, बहुत अच्छी थीं वे।"

कहते कहते कलजुग ने बहुत बड़ी बड़ी दो तीन हिचकियाँ भरीं। दीपक ने कहा— "तुम तो मुझे कहते थे मत रोओ, अब तुम फिर रोने लगे।"

कलजुग— "हाँ दीपक बाबू! देवकी देवी के मरने पर मुझे बड़ा दुःख है। मेरे जैसा कठोर नरपिशाच क्या किसी की मृत्यु पर रो सकता था! लेकिन बहुत रोकने पर भी मेरा मन नहीं थमता। इतना

जानता हूँ रोने से अब कुछ नहीं होगा। जी चाहता है कि रोने के साथ साथ उन धूर्तों को खूब कोसूँ, खूब गालियाँ सुनाऊँ, जो देवकी देवी को सताते रहे, जो अपने काले मुँह न देख देवकी देवी के पवित्र प्रकाश पर धूल फेंकने का प्रयत्न करते रहे। लेकिन किसको कोसूँ, किस से बदला लूँ ? देवकी देवी कहा करती थीं— क्षमा, सबको क्षमा कर दो! वह दया की देवी सबको क्षमा कर गई। बस, अब हम किसी से कुछ नहीं कहा करेंगे। वे हमसे कहा करती थीं कि शराब मत पिया करना, आज से हम प्रतिज्ञा करते हैं कि शराब नहीं पिया करेंगे, कोई नशा नहीं करेंगे। बस चला तो किसी को अपनी शक्ल भी नहीं दिखाऊँगा।"

कलजुग और दीपक का शोक प्रकरण चल ही रहा था कि अमोलक बाबू भी उस दिन अकस्मात् बम्बई से आ पहुँचे। वे भी आते ही फूट पड़े। दीपक अमोलक से और अमोलक दीपक से चिपट कर फूट फूट कर रो पड़े। वे बोले— "यह क्या हुआ दीपक, यह क्या हुआ! मैं तो उस दिन ऐसा बिछड़ा कि उनसे फिर मिल ही न सका। तुम तो एक दिन के लिये भी देवकी देवी से अलग नहीं होते थे। मैंने तुमसे बहुत कहा कि बम्बई चलो पर तुम न माने। पर अब देवकी देवी तुम्हें ऐसे छोड़कर चली गईं जैसे कभी वे तुम्हारे साथ थीं ही नहीं। मैं तो बम्बई से न जाने क्या क्या उमंगें लेकर आया था। नई कार लाया था, सोचता था इसी में देवकी देवी को और तुम्हें बम्बई घुमाने ले चलूँगा। लेकिन मेरे तो सारे स्वप्न ही भंग हो गये। वे अपना प्रेम कितने दिनों तक मुझे देती रहीं। कितने प्रेम से हलवा और पकौड़ियाँ खिलाती थीं। लेकिन मैं उनके लिये कुछ भी न कर सका। जब उनके लिये चैन की घड़ियाँ आने को हुईं तब मृत्यु ने उन्हें हमसे छीन लिया। खैर, अब रोने धोने से क्या होगा! बारह बज चुके हैं। गंगा यहाँ से पच्चीस-तीस मील है, मोटर वगैरह का प्रबन्ध हो गया है या नहीं ?"

दीपक— "मुझे कुछ नहीं मालूम, सब गजाधर इन्तज़ाम कर रहे हैं।"

अमोलक— "और श्याम बाबू को खबर मिली?"

दीपक— "हाँ, फोन करा दिया है, आते ही होंगे।"

इतनी ही देर में श्याम भी आ गये। श्याम ने आते ही एक बार नीचे से ऊपर तक दीपक को देखा, फिर देवकी देवी के शव को देखा। जैसे कोई अनहोनी को देखता ही रह जाता है वैसे ही वे कुछ क्षणों के लिये मौन ही देखते रहे। फिर दीपक और श्याम चिपट गये। कुछ क्षण बाद अमोलक बाबू ने दोनों को समझाते हुए धीरज दिया। तब तक गजाधर सारा प्रबन्ध करके आ गये।

अर्थी बनने लगी। देखते ही देखते देवकी देवी को अर्थी पर रख दिया गया। उफ़! कितनी करुणा थी इस दृश्य में! हर उसकी आँख में आँसू थे जो देवकी देवी की आँख में आँसू देखकर खुश होता था।

सब रोते रहे और सामूहिक स्वर गूँज उठे: "राम राम सत्य है, सत्य बोलो मुक्ति है।" और 'राम राम सत्य' के घोषों में देवकी देवी की शव-यात्रा पूरी हो गई। जब सूर्य ढलने को था तो शव गंगा-तट पर रख दिया गया। दीपक ने उनका मुँह उघाड़ कर देखा। देवकी देवी बिल्कुल शान्त थीं। जैसे अभी अभी बड़े आनन्द में सोई हों। उनके चेहरे पर मृत्यु नहीं, शान्ति की ज्योति थी ज्योति!

गंगा कलनाद करती हुई अपनी गति से बह रही थी। उसकी लहरों में न जाने कितनी कहानियाँ मुखर थीं। दीपक ने देखा कि जहाँ देवकी देवी की चिता बनाई गई है उसके आसपास दूर तक कुछ चितायें दहक रही हैं, कुछ के जलने के निशान हैं, कुछ की हड्डियाँ किनारे पर तैर रही हैं, कुछ शव ला ला कर रखे जा रहे हैं, और कुछ चिताओं में

आग दी जा रही है।

देवकी देवी की चिता भी तैयार हो गई। शव चिता में रखने से पहले दीपक ने गंगाजल में स्नान कराया, उनके चरण छुए और फिर शव चिता में रख दिया गया। जब शव चिता में रख दिया तो दीपक ने एक बार फिर उनके दर्शन किये, पग छुए, परिक्रमा लगाई, हाथ जोड़े और फिर अग्नि लगा दी।

सूखे चन्दन, घी, सामग्री से अग्नि तुरन्त दहक उठी। लपटें हवा में फड़फड़ाने लगीं। दीपक दाह-दृश्य एकटक देखते रहे। उनके मन में बार बार उतार चढ़ाव आये। कभी सोचा, अब जीकर क्या करूँगा! कभी विचार आया, संसार निस्सार है, सन्यासी हो जाना चाहिये। कभी कुछ निश्चय किये और फिर नीरजा का ध्यान आते ही कर्त्तव्य की दुनिया में आ गये।

देखते ही देखते तत्व तत्व में मिल गये। पंचभूत शरीर का अस्तित्व लीन हो गया। राख का एक ढेर संसार को दर्शन पढ़ाने लगा। उपस्थित लोग वैराग्य के गुण गाने लगे। और फिर इन सत्यों में देवकी देवी की राख जल में प्रवाहित कर दी गई।

अमोलक बाबू ने कहा— "बस यहीं तक के सारे नाते हैं। यात्रा पूरी हो चुकी। हंस अकेला ही जाता है।"

दीपक के आँसू भी मन के तरह तरह के उतार चढ़ावों से, विचारों के झकझोड़ से उमड़ उमड़ कर आते थे।

गजाधर और अमोलक रोते भी जाते थे और दीपक को समझाते भी जाते थे— "बस भैया, तुम्हारा इतना ही सम्बन्ध था। खूब निभाई दोनों ने। एक ने दूसरे के लिये सर्वस्व समर्पित कर दिया।"

दीपक— "नहीं, उन्होंने बहुत किया, बहुत किया। मैं उनके लिये

कुछ भी न कर सका, कुछ भी न कर सका।"

गजाधर ने धीरज देते हुए कुछ बदल कर कहा— "रोया नहीं करते दीपक! उन श्राँसुश्रों को कलम में भर लो जिनको बेकार गिरा रहे हो।"

दुःख-सुख मरना-जीना चलता ही रहता है श्रौर चलता रहता है दुःखों की धधकती हुई राह पर सुख खोजता हुश्रा मनुष्य। गंगा-तट पर देवकी देवी के शव का दाह-संस्कार कर दीपक श्रपने सगे साथियों के साथ फिर उसी राह पर वापिस चले जिससे श्राये थे।

१५

मनुष्य की कहानी बस्ती से श्मशान तक और श्मशान से बस्ती तक की ज़मीन पर लिखी रहती है। मिट्टी में न जाने कितने इतिहास, कितनी जीवनियाँ तथा कितने ध्वंस और निर्माण दबे पड़े हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश का ही अस्तित्व है। ज़िन्दगी की कहानी बहुत छोटी है। उम्र का इतिहास जन्म और मरण की राह तक लिखा रहता है। पर इस छोटे से रास्ते पर ही प्रत्येक को न जाने कितने संघर्ष सहने पड़ते हैं, कितने पहाड़ों के बोझ ढोने पड़ते हैं। पग पग पर आपत्तियाँ आती हैं। यदि मनुष्य यह समझ ले कि दुःख ही संसार का अमर फल है तो वह सिद्ध हो सकता है। सुख की खोज में भटकता हुआ प्राणी पीड़ा के प्रहार सहता रहता है।

संसार केवल भावना के लिये नहीं, विचार के लिये भी है। भावुकता जब विवेक पर छा जाती है तो जीवन भटक जाता है। हर परिस्थिति में मनुष्य को मन समझाना पड़ता है, धीरज रखना पड़ता है। धीरज रखे बिना जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं होता। वह घर जो देवकी देवी के बैठे रहने से अपने आप में पूर्ण था, आज उसकी दीवारों से अपूर्णता प्रकट हो रही थी। उसकी दीवारों से कल की कहानियाँ बोल रही थीं। ईंट और पत्थरों का भी एक महत्व होता है। दीवारों का भी एक साया रहता है। मरने वाले की भावनाओं का सहारा भी जीने के लिये बल देता है।

आज देवकी देवी की मृत्यु को दूसरा दिन था। उस कमरे में जिसमें देवकी देवी लेटती थीं, बैठती थीं, चलती थीं, उनका फोटो लगा हुआ था। कम्बल पर बैठे दीपक बाबू गीता पढ़ रहे थे। नीरजा, श्याम, अमोलक, गजाधर आदि मित्र शान्ति से गीता श्रवण कर रहे थे। जीवात्मा और परमात्मा सम्बन्धी सत्य मुखर थे। लेकिन सभी उदास थे। सब जानते थे कि जिसका जन्म है उसकी मृत्यु निश्चित है, फिर भी देवकी देवी की मृत्यु के दुःख से सभी दुखी थे। नीरजा और दीपक तो जैसे अपना सब कुछ खोकर खाली खड़े रह गये थे, वे बात बात में रो पड़ते थे। अमोलक बाबू उनको बहुत समझाते, धीरज देते और ज़बरदस्ती कुछ खिलाते।

गीता पाठ के बाद अमोलक बाबू ने नीरजा और दीपक के सामने थाली लाकर रखी। थाली देखते ही दोनों रो पड़े। रो तो अमोलक बाबू भी पड़े पर उन्होंने अपने आँसू पलकों में ही छिपा लिये, बोले—"ऐसे कैसे काम चलेगा! मन को मज़बूत करो।"

दीपक और नीरजा उनसे चिपट कर कहते— "कैसे मज़बूत करें, कैसे समझायें मन को, हम तो लुट गये।"

तभी प्रदीप ने प्रवेश किया। वह द्वार पर आया भी नहीं था कि दीपक ने उसे चिपटा लिया। दुःखातिरेक में मनुष्य बड़ा दुर्बल हो जाता है। वह जिसे देखता है तुरन्त रो पड़ता है, और जिसे अपना समझता है उसके सामने तो वह बरस बरस कर बरसता है।

प्रदीप यद्यपि दीपक से छोटे थे फिर भी दीपक को ऐसा लग रहा था जैसे प्रदीप ही उनके लिये अब सबसे बड़ी आशा थे।

प्रदीप ने आते ही कहा— "मैं तो अभी अभी दिल्ली से आया हूँ। उसी दिन दिल्ली चला गया था। अभी जब घर पहुँचा तो खाना खाने

के बाद मुझे यह ख़बर मिली। बड़ी जल्दी चली गई बेचारी।"

दीपक— "हम तो चौराहे पर लुट गये। देवकी देवी हम से बहुत प्रेम करती थीं। हम उनके प्यार से कभी उऋण नहीं हो सकते।"

इस प्रकार एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, बराबर जो भी आता, उसी के सामने दीपक कातर हो जाते। चौथे दिन भजनानन्दी महाराज चन्द्र वहाँ आये। उन्होंने देवकी देवी के पूर्व जन्मों की अनेकों उपकथाएँ सुनाईं; दीपक, नीरजा और उनके पूर्व जन्मों की चर्चा की; जीवन और मृत्यु का रहस्य समझाया और कहा, "जीवन कुछ है ही नहीं। सारे मनुष्य नाव नदी संयोग हैं। सब अपने अपने भोग होते हैं। वहाँ आसन पर आया कर और जो कुछ काम करने हैं उनमें चित्त लगा। यह क्या, हर समय रोता रहता है। रोने से तो प्रेम और कलंकित होता है।"

महाराज चन्द्र के समझाने में कुछ ऐसा प्रभाव था कि दीपक विवेक से सोचने लगे। उन्होंने सोचा कि देवकी देवी तो अब वापिस आयेंगी ही नहीं। नीरजा के विवाह की तारीख वे निश्चित कर ही गई हैं, उसे टालने से भी क्या लाभ। अमोलक बाबू से उन्होंने चर्चा की। 'क्या विवाह आगे के लिये टाल दिया जाये?' उन्होंने दृढ़ता से कहा— 'नहीं क्या लाभ! विवाह की तैयारियाँ करो। सब काम अब निमटवा कर ही जाऊँगा। फिर गया गया न गया न गया। काम अब ऐसा तो चल ही रहा है कि मेरे अब न जाने से कोई बड़ा लाभ या हानि का डर नहीं। फिर बाद में जाना पड़ेगा, क्योंकि न जाने से व्यापार में कभी कोई गड़बड़ न हो जाये।' गजाधर ने भी अमोलक बाबू का समर्थन किया।

दीपक बाबू निश्चित तारीख पर विवाह के लिये प्रयत्नशील हुए। उन्होंने श्याम से जो कुछ देवकी देवी ने कहा था सब चर्चा की। श्याम

बोले— "बहिन से मेरी भी सब बातें हो ली हैं। जायदाद की रजिस्ट्री वे कर ही गईं। जो हो गया वह ठीक है। बाकी लोगों को जायदाद में आपके नाम का होना अखरता है। और मैं नहीं चाहता था कि नीरजा का नाम भी उसमें रहे।"

दीपक— "मेरे नाम के लिये तो आप ठीक कहते हैं, मैंने उनसे कहा भी था कि मेरा नाम न रखें, लेकिन वे न मानीं। पर नीरजा का नाम होना तो आवश्यक था।"

श्याम— "खैर जो हुआ सो ठीक है। अब मैं यह सोचूँगा कि नीरजा का विवाह यहाँ करूँ या मैं इसे अपने गाँव ले जाऊँ, वहाँ विवाह करूँ।"

दीपक भावुक थे, वे उड़ती चिड़िया पहचानते थे, बोले— "जैसी आपकी इच्छा! पर तारीख तय है और नीरजा के प्रति यहाँ सभी की भावनायें हैं तो विवाह यहीं होना ठीक है।"

श्याम चुप हो गये, पर न जाने क्यों जब से देवकी देवी का देहान्त हुआ नीरजा उनकी आँखों में खटकने सी लगी। दीपक के प्रति उनकी भावनायें कुछ खराब होने लगीं या खराब की जाने लगीं। नीरजा और दीपक को ऐसा लगने लगा, जैसे कल तक वे जिस मकान में मालिक थे आज उसमें ग़ैर हैं।

नीरजा से श्याम ने तालियाँ ले लीं। दीपक श्याम के प्रति पवित्र स्नेह रखते थे। उन्होंने श्याम की किसी बात का बुरा न माना बल्कि बार-बार वे उनको महत्व ही देते रहे।

किन्तु नीरजा को श्याम बाबू का यह व्यवहार अच्छा न लगता था। कई बार दीपक ने उसे उत्तेजित होने से रोका। दीपक बाबू अब अपनी स्थिति पहचानते थे। जानते थे कि नीरजा के सब कुछ होते हुए भी वे

अब कुछ भी नहीं हैं। उनका सारा प्रेम, उनकी सारी भावनायें, उनका सारा तर्क इस समय तिरस्कार के थपेड़ों में था। सभी की आँखों में वे खार से हो रहे थे। बस केवल नीरजा की आँखों में उनके प्रति श्रद्धा थी।

दीपक ने सोचा 'श्रेष्ठ रास्ता यही है कि नीरजा की शादी हो जाये। प्रदीप को सब कुछ सौंप मैं शान्ति पा जाऊँगा। जैसा कि देवकी देवी प्रदीप से पहले ही निश्चय कर गई हैं, प्रदीप अपना ही रहेगा।' अतः दीपक बाबू हर समय प्रदीप की प्रसन्नता में लगे रहने लगे। विवाह की तैयारियों में जुट गये। श्याम को सँभालने में दुःख सुख मानने लगे और उधर एक दूसरी ओर से देवकी देवी की कोठी के दावेदार खड़े हो गये।

नीरजा के भविष्य को सोचते हुए दीपक ने प्रदीप से फिर बातें कीं, बार बार बातें कीं, वह सिर्फ एक ही उत्तर देता था कि विवाह तक आप सँभाल लीजिये, उसके बाद मैं सब सँभाल लूँगा।

दीपक— "बदल तो नहीं जाओगे?"

प्रदीप— "नहीं, बिल्कुल नहीं, कसम से कहता हूँ।"

दीपक— "देखो प्रदीप, मैंने जीवन में बहुत संघर्ष उठाये हैं, अब आगे मैं इस समाज से जूझना नहीं चाहता।"

प्रदीप— "आपको कोई एक शब्द भी नहीं कह सकता।"

दीपक— "बहुत अच्छी तरह सोच लो, अभी समय है, फिर कुछ नहीं होगा।"

प्रदीप— "मैंने खूब सोच समझ लिया है।"

दीपक— "इस घिरे हुए अंधकार में मैं तुम्हें प्रकाश मान कर आमंत्रित कर रहा हूँ, अपने हृदय का समस्त स्नेह तुम में भर रहा हूँ,

कहीं भभक कर उसे फूक न देना।"

प्रदीप— "आप मुझसे निश्चित रहिये !"

होनी बलवान होती है। 'हाँ हाँ' का दिन नहीं आता, निश्चित किया हुआ दिन आ जाता है। दिन जाते क्या देर लगती है। आँखों के आँसू आँखों में ही थे कि बीस फरवरी के दो दिन रह गये। दीपक ने नीरजा को देखा, नीरजा ने दीपक को देखा और दोनों की आँखों से एक ही साथ पंक्तिवद्ध आँसू टूट पड़े।

नीरजा की आँख का आँसू उँगली से पोंछते हुए दीपक ने कहा— "नीरजा ! दो दिन बाद तुम भी पराई हो जाओगी। माँ कहती थीं नीरजा चली भी गई तो मैं तो तुम्हारे साथ रहूँगी। पर वे पहले ही चली गईं। तुम सुखी रहो, यह मेरी इच्छा है। पर मेरे होते हुए तुम दुखी हुईं तो मेरे जीने को धिक्कार है। यह घर जहाँ हम माँ के न होने पर भी आमने सामने रो तो सकते हैं, आज हमारे साथ गम्भीर है। यद्यपि इस घर की वे सब चीज़ें अब नहीं रहीं जिन पर तुम्हारा अधिकार था। सिर्फ दीवारें रह गई हैं या दो फोटो। एक देवकी देवी का और दूसरा उनका जो तुम्हारे धर्म पिता थे। घर में चीज़ें न रहीं, कोई बात नहीं। तुम्हारा विवाह शान से होगा। प्रदीप पर मेरी बड़ी आशायें हैं, पर कभी कभी सोचता हूँ कि कहीं प्रदीप कुछ और तो नहीं हो जायेगा।"

नीरजा ने जो दीपक के सामने प्रायः कम बोलती थी उनके कन्धे पर सर रख दिया, फिर सामने देखती हुई बोली— "जो आपका नहीं होगा, वह मेरा भी नहीं होगा। यदि किसी ने भी आपके प्रति कठोरता बरती तो उसके प्रति मेरी मृदुता हरगिज़ नहीं हो सकती।"

दीपक— "न जाने क्यों प्रेम पर प्रहार होते हैं, सत्य पर कुल्हाड़े चलते हैं।"

नीरजा— "लेकिन न प्रेम मरता है, न सत्य जलता है।"

दीपक— "सबके व्यवहारों से मुझे बहुत दु:ख होता है। आज देवकी देवी नहीं हैं तो अपने भी अपने नहीं रहे।"

नीरजा— "परेशान न होइये, मैं हमेशा आपका साथ दूँगी।"

दीपक— "घबरा नहीं रहा हूँ, किसी के साथ की भी कोई ऐसी बात नहीं। सिर्फ तुमसे मोह है। उसमें कोई आशा नहीं, अपितु तुम्हारे लिये कुछ करने की ही इच्छा है।"

नीरजा— "आप ऐसे क्यों हो रहे हैं! माँ नहीं रहीं तो हिम्मत से जीवन बिताना ही पड़ेगा। मेरे लिये तो आप ही एक रोशनी हैं। कहने वालों को कहने दो, सहने वाले बड़े होते हैं और फिर दो दिन की ही तो बात है, फिर तो मैं और वे दोनों ही आपकी आज्ञा और सेवा के लिये प्रस्तुत रहेंगे।"

दीपक— "न मुझे सेवा चाहिये, न मैं आज्ञा देना चाहता हूँ, बस चाहता हूँ यह कि तुम्हारे लिये मैं पराया न बन जाऊँ।"

नीरजा— "यह कभी नहीं हो सकता, यह हरगिज़ नहीं हो सकता।"

प्यार और वासना में बहुत बड़ा अन्तर होता है। प्रेम में विछोह का दु:ख होता है, वासना में जुदाई का दु:ख नहीं होता। प्रेम में मोह होता है, वासना में सिर्फ स्वार्थ रहता है। वासना में कायरता होती है, प्यार में वीरता। प्रेम निडर होता है। उसमें त्याग रहता है। प्रिय के सुख के लिये आत्म-समर्पण होता है। संसार की गति बड़ी विचित्र है! कहीं मातम होता है, कहीं दिवाली। जिस घर में आज रोना पीटना मचता है कल शहनाइयाँ बजती हैं। देवकी देवी की मृत्यु के आँसू अभी दीपक और नीरजा की आँखों में भर भर कर आ ही रहे थे कि नफीरियाँ बजने लगीं।

हृदय में वेदना की आग दबाये, पलकों में आँसुओं का समुद्र छिपाये दीपक नीरजा के विवाह में संलग्न थे। नीरजा प्रसन्न होगी, वह दुलहन बनेगी। देवकी देवी की आत्मा संतोष मानेगी। वे नहीं हैं तो उनके पीछे विवाह में कोई कमी न रहे। इसलिये हर तैयारी पूरी शान से की गई थी।

नीरजा के साथ दीपक प्रदीप को अपना हृदय-सर्वस्व समर्पण करने के लिये अभी यहाँ तो अभी वहाँ दौड़ते थे। विवाह भी समाज का कैसा विचित्र खेल है! अलग अलग डाल के दो फूल नुकीली सुई से धागे में जुड़ जाते हैं। बाजे बजे, बारात आई। दीपक ने तन मन धन से सब का स्वागत किया। और फिर फेरे भी फिर गये।

दीपक के हृदय में संतोष भी था और द्वंद्व भी। उनको ऐसा लग रहा था जैसे उनका वर्षों से सींचा हुआ गुलाब का पौदा तूफान के खेलों में डोल रहा है। मानो तेज़ पवन बेले की कली का घूँघट उठाने को आकुल है, अथवा कोई फूल अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ देवता के चरणों में चढ़ा दिया गया है।

विदा से पहले नीरजा ने दीपक को देखा। बहुत रोकने पर भी दीपक की आँखों के अविरल आँसू न थमे। नीरजा ने कहा— "मेरे पीछे रोना मत।" साथ ही अपनी एक प्रिय सहेली सुखवर्षा से बोली— "तुम इनका ध्यान रखना। मेरे जाने के बाद इनको खिलाने पिलाने की ज़िम्मेवारी मैं तुम पर छोड़ती हूँ। कल कल की बात है, परसों मैं आ ही जाऊँगी।"

दीपक ने आँसू पोंछते हुए कहा— "परेशानी की कोई बात नहीं है। तुम जाओ, सुख से रहो, मुझे कोई तकलीफ़ कैसे होगी। मन तो वैसे ही उमड़ उमड़ कर आ रहा है। तुम जा रही हो, देवकी देवी की याद आ

रही है। यह घर तो उजड़ सा ही गया।"

नीरजा— "नहीं, उजड़ कैसे गया! मैं इसी घर में रहूँगी।"

मन के गुबार अभी उमड़ ही रहे थे कि मर्द औरतों ने शोर मचाया। "जल्दी भेजो नीरजा को, ये लोग नाराज़ हो रहे हैं।"

दीपक और नीरजा चिपट कर रोते हुए अलग हुए। मन के सारे उद्वेग पर पाषाण रख धीरज समेट दीपक ने नीरजा का हाथ प्रदीप को पकड़ा दिया। कहा— "इसे कोई दुःख न हो। मैं तुम्हारी हर सेवा के लिये प्रस्तुत हूँ।"

फिर नीरजा को गाड़ी में बैठा दिया। नीरजा के हृदय की दशा इस समय ज्वारभाटे जैसी थी। सचमुच विदा का समय भी कैसा कठोर होता है। अपने आँगन की खेलती हुई ज्योत्स्ना मानो भोर को सौंप दी जाती है। दीपक और बेटी वाले खड़े देखते रहे।

विदा हो गई। वह घर आँखें भर लाया जो देवकी देवी के मरने पर भी जड़ पड़ा रहा था। वे कबूतर जो पल भर भी शान्ति से नहीं बैठते थे, पर फड़फड़ाते हुए कमरे में उड़ते रहते थे, झरोखों में से नीरजा की विदा देखते रहे। वे निर्निमेष थे। नीरजा को विदा कर जब दीपक उस कमरे में दीवारों से बातें करने लगे तो वे बिचारे उसी तरफ़ देखते रहे। उस दिन रात भर कमरा बन्द कर दीपक आँसुओं से मन समझाते रहे। न वे सोये, न कबूतरों ने उनका ध्यान छोड़ा। रात बीती, दिन बीता, न दीपक उठे, न कबूतर उड़े। न जाने उनकी चपलता, उनकी भूख, उनकी प्यास कहाँ चली गई थी!

संसार के भी कैसे कैसे विचित्र स्वर होते हैं। कभी उसमें किसी के हँसने की गूँज होती है। कभी किसी के आनन्द का नाद होता है। पर इन सब से ऊपर सुना जाता है कोई अनहद नाद, कोई आनन्द की धुन

है। कहा नहीं जा सकता कि वह अनुपम आनन्द कहाँ है जिसे मनुष्य खुशी से खोजता हुआ जीता है। कौन है वह जिसे पानी में आग नहीं मिली! डाली पर कलियाँ खिलती भी हैं और टूट कर गिरती भी रहती हैं।

१६

गुलाब का खिलता हुआ फूल देखकर दर्शकों के मुँह पर प्रसन्नता की लहरें दौड़ जाती हैं, पर जब वह मुरझा जाता है तब क्या किसी की आँखों में आँसू भी आते हैं! किसी के तप से खिलने वाले क्या उसकी तपन में भी शामिल होते हैं! गगन में सूर्य तपता है, सरोवर में कमल खिलते हैं। कोई नहीं कह सकता कि जीवन में अग्नि अधिक है या शीतलता।

आँखों में विरह के कण लिये, हृदय में मिलन की उमंगें समेटे, नीरजा ने नये घर में प्रवेश किया। यह नया घर नीरजा के लिये हर ओर से विचित्र था। ऐसे ही नया था जैसे खुली हवा में मुक्त विचरने वाले पक्षी के लिये कोई पिंजरा होता है। पहले ही कदम से नीरजा को बंधन की ध्वनि मिली— "भट्टा सा मुँह खोल रखा है, घूँघट काढ़ ले।"

नीरजा ने पल्ला कर लिया। आगे बढ़ी तो देवर और बहनोइयों की आँखें मचलने लगीं। सास ने उनके सामने घूँघट खोलने की आज्ञा दी। नीरजा सुन्दर थी, बहुत सुन्दर। देखते ही बहनोई साहब मचल उठे, सास से बोले— "खाना भेज दो, हम और ये साथ ही खायेंगे।"

नीरजा ने संकोच किया, पर सास ने तुरन्त खाना भेज दिया। बहनोई साहब की हरकतें शुरू हो गईं। अपने हाथ से नीरजा को ग्रास

खिलाने का प्रयत्न करने लगे।

बिचारी नीरजा सीधी थी, सच्ची थी, पर बहनोई साहब घाघ थे, पूरे शेखीबाज़! चाहे उन पर लोगों का कर्ज़ हो पर जेब से बटुआ निकला, उसमें संभवतः सौ डेढ़ सौ रुपये होंगे। नीरजा की ओर फेंकते हुए बोले— "रख लो इन्हें, शाम को ले लूँगा।"

और फिर शाम को सास से बोले— "इनको सिनेमा ले जाऊँ? कल आगरे जा रहा हूँ, ताज की सैर कराता लाऊँगा।"

सास तो बहू से ज्यादा दामाद को प्रसन्न करने के लिये हर तरह तैयार थी। बोली— "हाँ, हाँ, घूम आओ।"

किन्तु नीरजा सीधी अवश्य थी पर मूर्ख नहीं। उसने बहनोई के सारे आग्रह अस्वीकार कर दिये।

आज नीरजा के लिये ज़िन्दगी का एक नया दिन था, नई रात थी। प्रदीप के अहं का आज ठिकाना न था। विवाह होते ही उसने नीरजा पर अपने अधिकारों की पुलिस लगा दी। रात होते ही जब वह उस कमरे में पहुँचा जिसमें नीरजा हृदय की समस्त निधियाँ लिये उसके स्वागत को उत्सुक थी तो उसने प्यार के स्थान पर अधिकार और अहंकार के श्लोक बोलने शुरू किये।

आप आते ही बोले— "जूता खोल कर उतारिये मेरा!"

नीरजा को तो इस घर की हर आज्ञा स्वीकार थी। वह श्रद्धा से उठी, जूते के फीते खोले और प्रदीप के पैर से जूते निकाल दिये।

जूते उतार कर प्रदीप तन कर खड़े हो गये, बोले— "कोट भी उतार कर खूँटी पर टाँग दो।"

नीरजा ने कोट भी उतार कर हैंगर में लटका खूँटी में टाँग दिया।

उसके बाद प्रदीप अपनी दोनों टाँगें फैला एक आराम कुर्सी पर पधार गये। नीरजा उनके पैरों के पास आ बैठी। प्रदीप ने कहा—"अब तो मेरा तुम्हारा विवाह हो गया है, मेरी आज्ञा में चलोगी न?"

नीरजा— "मैं तो आपकी दासी हूँ।"

प्रदीप— "जो मैं कहूँगा वही करोगी?"

नीरजा— "आप इस समय ये कैसी बातें कर रहे हैं। ये आनन्द की घड़ियाँ हैं। यहाँ कचहरी की जिरह क्यों शुरू कर दी?"

प्रदीप— "मेरा मतलब है कि बस अब तुमको उस घर से कोई मतलब नहीं और न ही दीपक से तुम्हारा रिश्ता रहना चाहिये।"

सुनते ही नीरजा चौंक उठी, जैसे उसके अंग अंग को बिजली छुवा दी, बोली— "यह इस शुभ मुहूर्त में आप क्या कहने लगे! न मैं यह घर छोड़ सकती हूँ, न मैं आप से अलग हो सकती हूँ, न दीपक बाबू से।"

प्रदीप— "नहीं, उस घर से और दीपक से अब तुम्हारा क्या मतलब?"

नीरजा— "यह सब तो मैंने आप से विवाह से पहले कह दिया था कि मैं न घर छोड़ूँगी और न दीपक बाबू से रिश्ता तोड़ूँगी।"

प्रदीप— "मैं नहीं जानता कि क्या कहा था। ख़ैर, वह सब पुरानी बात है। यह तो तुम जानती ही हो कि हमारे बहनोई बड़े मालदार हैं। कारें हैं, कारख़ाना है। कल आगरे चलने को कहते हैं। अच्छा रहेगा, चलेंगे, घूम आयेंगे।"

नीरजा— "कोई हर्ज नहीं, दीपक बाबू को भी लेते चलेंगे।"

प्रदीप— "नहीं, हम तीनों ही चलेंगे।"

नीरजा— "आप नहीं जानते, मैं दीपक बाबू को बहुत परेशान छोड़

कर आई हूँ। अभी माँ को मरे महीना भर ही हुआ है, वे रात दिन रोते रहते हैं, मेरे भी आँसू नहीं थमते। हमारा कर्त्तव्य है कि उनको परेशान न होने दें। वे बहुत भावुक हैं, उनकी तरफ से मुझे डर लगा रहता है। कभी कभी वे बिल्कुल खो जाते हैं। उनका हम से कोई स्वार्थ नहीं है, एक मोह है।"

प्रदीप— "अच्छा, देखा जायेगा। मेरे लिये दूध तैयार कर लिया होगा, ले आओ।"

नीरजा— "जी हाँ, आपकी आज्ञानुसार छुहारों का दूध तैयार है।"

कहते हुए नीरजा ने दूध का गिलास लाकर प्रदीप को दे दिया।

दूध हाथ में लेते हुए प्रदीप ने जो नीरजा के मुँह की तरफ देखा तो सारा अहं हवा हो गया। नीरजा के चेहरे पर सौन्दर्य की जो आभा थी वह चमत्कारों से भरी थी। प्रदीप को एक धक्का सा लगा और वह शिथिल होकर ऐसे लेट गया जैसे सकल पदार्थों के होते हुए भी भाग्यहीन भटकता रहता है, या अभिशाप का मारा हुआ योग की सिद्धि के फल के समय अविद्या से नष्ट हो जाता है।

प्रदीप यद्यपि पराजित थे। पर अधिकार और झेंप से ज़रूरत से ज़्यादा उत्तेजित थे। उनका दिल धड़क रहा था। ऐसे ही जैसे बिगड़े हुए कलपुर्जों की मशीन खड़खड़ करती है। नीरजा ने उनके सीने पर हाथ रखा तो चौंक पड़ी। घबराकर बोली— "क्या हो गया आपको!" प्रदीप कुछ देर तक बोल न पाये, नीरजा ने लाकर पानी पिलाया। जब कुछ चेतन हुए तो बोले— "एक बार चोट लग गई थी, तभी से ऐसा हो जाता है।"

नीरजा— "कोई बात नहीं, इलाज कराइये, ठीक हो जायेंगे।"

नीरजा ने पूरी भक्ति से अपने को लगा दिया। पर ऐसा भी होता है कि जितना कोई किसी के प्रति अधिक भक्ति भाव रखता है उतना ही वह मदान्ध होता चला जाता है। कुछ तो प्रदीप अधिकार की आग से प्रचण्ड थे, कुछ उनको दायें बायें से भड़काने लगे। आश्चर्य तो यह है कि जिनको दीपक और नीरजा अपना सबसे अधिक हितैषी मानते थे वे ही आग में घी डालने लगे। जिनके लिये दीपक और नीरजा मर मर जाते थे उन्होंने ही मन्थरा का काम शुरू कर दिया। संसार में सगे से सगे भी सब कुछ बिगाड़ सकते हैं। आग लगाने में क्या देर लगती है, बुझाना कठिन होता है।

जिसमें घर की नहीं होती, उसकी बुद्धि कोई भी बिगाड़ सकता है। और तो और जिसने नीरजा को जन्म दिया था उसी ने भुस में आग लगा दी। प्रदीप के ऐसे कान भरे, नीरजा की ऐसी कहानियाँ घड़ीं, दीपक के वे किस्से रखे कि आग और भी धधक उठी।

इधर दो तीन दिन बाद जब दीपक बाबू नीरजा को लेने आये तो उन्होंने देखा कि वे शायद वहाँ आ गये जहाँ अपमान का चरम होता है। उनको गुस्सा भी आया और दुःख भी हुआ। उन्होंने प्रदीप से कहा—"चलो, उधर चलें।"

प्रदीप ने उपेक्षा से उत्तर दिया— "अब वहाँ जाकर क्या करेंगे और नीरजा भी जाकर क्या करेगी? वहाँ अब इसका क्या है?"

दीपक के लिये यह उत्तर हर पैने तीर से अधिक था। क्रोध और दर्द को दबाते हुए बोले— "क्या इतनी जल्दी बदल गये? कल तक तो तुम कुछ और कहते थे।"

प्रदीप— "हो सकता है मेरे समझने में कुछ फर्क रहा हो, और फिर कल की बात कल गई।"

दीपक— "तुम्हारे वायदे और वे शर्तें जिनके अनुसार तुमने शादी की थी ?"

प्रदीप— "मेरे कुछ वायदे नहीं, मैं कोई शर्त मानने को तैयार नहीं हूँ।"

दीपक— "अच्छा, मैं जाता हूँ।"

जब दीपक ने जाने का नाम लिया तो नीरजा बोली— "मैं भी चलूँगी।"

जब नीरजा ने चलने को कहा तो प्रदीप बोला— "नहीं, तुम नहीं जाओगी, अब तुम्हारा वहाँ क्या है ?"

नीरजा— "क्यों नहीं, मेरा घर है। जिनकी छाया में मैं सुख से सोई हूँ, सुख से उठी हूँ, सुख से बैठी हूँ, वे दीपक बाबू हैं। मैं नहीं जानती थी कि आपके यहाँ इनका इतना अनादर होगा। उनके अहसानों का अमानवीय बदला दिया है, न जाने यह घर कैसा है और इस घर वाले कैसे हैं !"

प्रदीप— "खबरदार, जो यहाँ के बारे में कुछ भी कहा।"

नीरजा— "और आप जो दीपक बाबू के बारे में कुछ भी कहते हैं। मैंने बहुत कुछ सुना है, मेरी मरने वाली माँ को आपने गालियाँ दी हैं। कहना नहीं चाहती, आपने घर आई दुलहन का प्यार से नहीं तिरस्कार से स्वागत किया। तुम्हारे आलिंगन में उस नाग जैसी लपेट के लक्षण दीखते हैं जो किसी को जकड़ कर मार डालना चाहता है। तुम्हारे अधरों में अधिकार के कठोर दाँत हैं, प्यार के मधुर चुम्बन नहीं। मेरा गला तक घोंटने को तैयार हो गये।"

दीपक— "बहुत नहीं बोला करते नीरजा! यह मत भूलो कि तुम अपनी सुसराल में हो।"

नीरजा की आँखों से आँसू निकल पड़े, वह फूट पड़ी। क्षण भर पहले जो उसका क्रोध था वह पानी बरस कर फूट पड़ा— "क्या पूछते हो भैया! मेरे तन से हर ज़ेवर निकाल लिया। कल जब तुम दिल्ली गये हुए थे तो मेरे ट्रंक से ताली निकाल मेरे घर से सामान उठा लाये। मुझसे दुलहन जैसा नहीं, दुश्मन जैसा व्यवहार करते हैं। आपका जो अपमान करते हैं वह मुझसे सहन नहीं होता।"

दीपक— "अपमान करने वाले से अपमान सहने वाला बड़ा होता है नीरजा! फिर प्रदीप को जब हमने अपना सर्वस्व सौंप दिया तो उनसे शिकायत कैसी?"

फिर प्रदीप की तरफ़ देखते हुए बोले — "नादानी अच्छी नहीं होती प्रदीप! समझदारी से काम लो। हम और कुछ नहीं चाहते, इतना चाहते हैं कि तुम खुश रहो। हमने अपने घर की वह पवित्र ज्योति तुम्हें दी है जिससे तुम्हारा तन और मन प्रकाशमान रहना चाहिये। उस पर कृपा करो तो अपना समझ कर, क्रोध करो तो अपना समझ कर और उसे मार भी डालो तो अपना समझ कर। लेकिन इतना समझ लो कि यदि तुमने उसे ग़ैर समझ कर उस पर कोई ज़ुल्म किया तो याद रखो उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।"

प्रदीप— "आप कौन होते हैं हमारे बीच में दख़ल देने वाले! चले जाइये यहाँ से!"

दीपक— "जहाँ आये का अपमान हो वहाँ तो किसी को भी आना ही नहीं चाहिये। पर बहुत बार आदमी को पहचानने में चूक हो जाती है। मैं नहीं जानता था कि जिसको मैं पैरों से उठा कर मस्तक पर लगा रहा हूँ वह चन्दन बनने योग्य नहीं, बंजर ज़मीन में डाल देने योग्य दीमक है। यदि रिश्ता ऐसा न होता तो जो शब्द तुमने कहे उनका

परिणाम यह होता कि कोई भी तुम्हें पास बैठाना स्वीकार न करता। ख़ैर, अब तो मुझे तुम्हारी हर बात सहनी पड़ेगी।"

दीपक का मन अन्दर ही अन्दर भर आया। नीरजा की तरफ देखते हुए बोले— "प्रदीप अपने ईमान से फिसल गया, पर तुम अपने धर्म से विचलित न होना। ईश्वर की इच्छा !"

किन्तु नीरजा केवल भावुक नहीं थी, उसमें गोपा जैसा आत्माभिमान भी था। सत्य की दीपशिखा की तरह प्रज्वलित हो बोल पड़ी— "सब कुछ सहूँगी, पर अपनों का अनादर नहीं सहूँगी, माँ का अपमान बरदाश्त नहीं करूँगी और क्योंकि अभी जुमा जुमा आठ दिन भी नहीं हुए और इनके ये नक्शे हैं तो मैं अपनी पढ़ाई बन्द नहीं करूँगी। आज समझ में आई यह बात कि माँ पढ़ने को क्यों कहती थी। जिसके पास अपना सहारा है उसके सब सहारे होते हैं, जो स्वावलम्ब छोड़ देते हैं परावलम्ब उससे दूर भागते हैं।"

दीपक— "अच्छा, अब मैं जाता हूँ। दो तीन दिन बाद फिर आऊँगा।"

नीरजा— "मैं भी चलूँगी।"

दीपक— "नहीं, अब की बार आऊँगा तो ले जाऊँगा, और इनकी राजी से।"

नीरजा— "किसी की राजी ज़बरदस्ती नहीं चलती। मैंने इनकी राजी ही करने के लिये विवाह किया था। पर ये समझ बैठे हैं कि पुरुष पति ही नहीं वह अधिकारी भी है जो अपनी इच्छा के लिये किसी को किसी भी तरह कष्ट दे सकता है। शायद ऐसे लोग नारी को एक खरीदी हुई चीज समझते हैं। क्या नहीं सहा मैंने ! आपका तिरस्कार, अपने सभी को गालियाँ, यहाँ तक कि इन्होंने मेरी जान तक लेने की चेष्टा की। आप

कहते हैं तो मैं फिर प्रयत्न करूँगी।"

दीपक— "वही महान है जो सब कुछ सह कर भी अपने आदर्श न छोड़े। मेरी कुछ लाचारी है, नहीं तो ये कह पाते कि तुम कौन होते हो! रिश्ता केवल रक्त का ही तो नहीं होता।"

और फिर प्रदीप की तरफ वेदना, उपेक्षा, स्नेह और स्वाभिमान से देखते हुए बोले— "बात बिगाड़ना आसान है, बनाना बहुत कठिन। अच्छा है बहकने से बच जाओ, नहीं तो फिर यह भी हो सकता है कि दूसरे को भी जैसे को तैसा व्यवहार करना पड़े।"

दीपक कह रहे थे और उनके हृदय में तरह तरह के भाव चक्कर काट रहे थे। सोचते थे कितना स्वार्थी है संसार! क्या मनुष्य स्वार्थ तक ही मनुष्य से सम्बन्ध रखता है!

दीपक का मन इतना उमड़ चुका था कि उनके आँसू रुकने कठिन हो रहे थे। सत्य और असत्य का मानो संग्राम छिड़ा हुआ था। वे एक-दम वापिस हो गये। रास्ते में उनके सामने अँधेरा सा आ रहा था। आँखों से बहते हुए अविरल आँसुओं ने उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया था। जैसे तैसे वे घर आये, ताला खोला, अन्दर से दरवाज़ा बन्द किया। बस फिर क्या था, हिचकियाँ बँध गईं, फूट पड़े, दीवारों से सर फोड़ने लगे।

पर न अब वहाँ देवकी देवी थीं, न नीरजा जिनके कानों तक उनके रोने की आवाज़ पहुँचती। सन्नाटे की तरह दीवारें उनके साथ उदास अवश्य थीं, वे बिना बोले ही उनके साथ सहानुभूति प्रकट कर रही थीं। वे कह रही थीं, "रोते क्यों हो, हम तो तुम्हारे साथ हैं। घबराओ नहीं, पुरुष हो। पीड़ा सहन करना ही तुम्हारा धर्म है। देवकी देवी तो स्त्री थीं। हमने उनसे शान्त रहना सीखा है। आँसू पोंछ लो, सो जाओ। नींद

नहीं आये तो ईश्वर का स्मरण करो। कुछ पढ़ो, कुछ लिखो, मन को समझाना ही पड़ेगा।"

पर परेशानियों में नींद कहाँ आती है। सोना तो अलग रहा, दीपक बाबू को तो श्वास लेने में भी पीड़ा हो रही थी, बेचैनी थी। कभी वे पूजा की चौकी के पास जा ईश्वर पर आँसू बरसाने लगे, कभी देवकी देवी के चित्र को आँसुओं से धोने लगे, कभी बीते हुए क्षण याद कर कर के फूटने लगे। रात भर रोते रहे, दिन भर रोते रहे। उनका दुःख चाँद ने देखा, सूरज ने देखा, दीवारों ने पहचाना, किन्तु सब मौन थे।

दिन निकला, रात हुई। रात गई, दिन आया। पर दीपक के प्रश्नों का उत्तर न आया। वही घर था, वही दीपक, पर जैसे मुस्कान उस घर से डरने लगी थी। चहल-पहल वहाँ आते हुए काँपती थी। बस, एक गीत छिड़ा हुआ था जिसमें पुरानी स्मृतियों की प्रतिध्वनियाँ गूंज गूंज जाती थीं।

१७

आपत्तियाँ आती हैं तो मनुष्य में जिन्दगी भी आती है। जब रास्ता नहीं रहता तो रास्ता पूछने वाले रास्ता बना भी लेते हैं। सीधे रास्ते पर चलने वाले को भटक कर ऊँचे नीचे रास्तों पर भी चलना पड़ता है। यह भी कहा जा सकता है कि जिसका कोई नहीं होता ईश्वर उसका साथ देता है। बुरा वक्त परख का वक्त होता है। दोस्त और दुश्मन की पहचान आपत्ति काल में ही होती है।

दीपक को आज खाना खाये तीन चार दिन हो गये थे। न वे नहाये थे, न खाट से उठे थे। यहाँ तक कि आई हुई डाक भी बन्द पड़ी थी। उन्होंने खोलकर पढ़ी तक न थी।

बड़ी कठिनता से दीपक बाबू ने साहस किया। उठे, मुँह-हाथ धोया, घर से बाहर निकले। पर उनके आश्चर्य का ठिकाना न था। उन्होंने देखा कि हर एक की नज़र उन पर ऐसे पड़ रही है जैसे अपराधी पर पड़ती है। दीपक बाबू समझ न पाये कि बात क्या है। पर चलते रहे। गजाधर की दूकान पर चौधरी बाबू खड़े थे, तभी अर्जुनसिंह भी वहाँ आ गये।

दीपक बाबू अपने मित्रों में गम्भीरता से जाकर खड़े हो गये। तीनों मित्र उनको देखकर हँस पड़े। गजाधर बाबू ने उपेक्षा से कहा— "क्या हाल है ?"

तभी सामने से दिवाकर ने आते हुए आवाज़ कसी— "लो साहब! सूरत देख लो।"

चौधरी बाबू और अर्जुनसिंह मौन रहे। दीपक बाबू धीरे से बोले— "आज तो आप लोग ऐसे देख रहे हैं जैसे इरादे अच्छे न हों।"

दिवाकर को मौका मिल गया। धधक कर बोला— "प्रदीप से पूछ लो अपनी करामात, बड़े बनते थे देवकी देवी और नीरजा के सगे। अब नीरजा को तुम्हारी छाया भी नहीं छू सकती।"

दीपक समझ गये कि अवश्य ही इस बीच में कुछ अनोखी घटनायें घटी हैं। निश्चित ही प्रदीप ने कुछ गलत प्रचार किया होगा। अपनों का ऐसा व्यवहार देख दीपक वहाँ न ठहरे, चल दिये।

रास्ते में उन्हें अमोलक बाबू की याद आई, बहुत याद आई। कभी कभी उर्मिल की स्मृति ने भी बेचैन किया और देवकी देवी को तो वे श्वास श्वास पुकारते रहे।

दीपक बाबू जब भी परेशान होते थे या घबराते थे तो उनके लिये श्मशान के बराबर वाला सूर्यकुण्ड ही एक स्थान था जहाँ वे जाकर शान्ति खोजते थे। दीपक भजनानन्दी महाराज चन्द्र के आसन पर पहुँचे। उन्होंने दीपक को दुखी देख धीरज देते हुए कहा— "क्यों भैया! आज तो बहुत दिनों में चक्कर लगाया, अच्छे हो?"

दीपक रो पड़े। भजनानन्दी महाराज शान्ति देते हुए बोले— "अरे बावले, क्यों रोता है! व्यर्थ ही माया-मोह में फँसा दुःख मानता है। माना कि देवकी देवी के मरने से तुम्हें बहुत दुःख है, पर मृत्यु तो सभी की निश्चित है। काम, क्रोध, लोभ, मोह त्यागे बिना परम शान्ति नहीं मिला करती।"

दीपक— "पर मैं क्या करूँ, मेरा मन नहीं समझता। जानता सब

कुछ हूँ, यहाँ के नाते भंगुर होते हुए भी नाते टूटने पर दुःख किसको नहीं होता! वियोग की पीड़ा तो राम जैसों से भी सहन न हुई। गोपियों पर क्या कृष्ण के ज्ञान-सन्देश का कोई असर हुआ! वियोग के समय भी प्रिय का सामीप्य भाता है।"

भजनानन्दी— "किन्तु कुछ परिणाम नहीं होगा। मृत्यु के बाद आँसू बहाना निरर्थक है। अब तो जीवन के अर्थ को पहचानो। इस जीवन मरण के बन्धन से छूटने का प्रयत्न करो। देखो उस कलजुग को, ब्रह्मानन्द में लीन मस्त पड़ा रहता है। वह निडर है, निडर। दुनिया जिस रूप में उसे देखती है उस रूप में वह नहीं है। वह रागद्वेष, माया, ममता, मोह सब से दूर है। कितना बेफिक्र है। शराब भी पीता है और न मिले तो उसके लिये दुःख नहीं मानता। जैसी पड़े वैसी भुगतनी चाहिये।"

दीपक— "पता नहीं मेरे मन में, मेरे तन में कैसी आग सी सुलग रही है। देवकी देवी चली गई और मेरे रोम रोम में तड़प कौंध उठी। क्या मरने के बाद मनुष्य नहीं मिल सकता?"

भजनानन्दी— "जिसका सोच नहीं करना चाहिये उसका सोच करता है! कहाँ किसी की मृत्यु होती है! यहाँ जो मृतक है वह सदा मृतक ही रहता है, जो जीवित है वह सदा जीवित ही है। शरीर तो मिट्टी मात्र है, वह तो मरा हुआ ही है। और आत्मा की तो कभी मृत्यु होती ही नहीं है। आत्मा को न अग्नि जला सकती है, न शस्त्र काट सकते हैं, न पानी गला पाता है। फिर क्यों बावले बनते हो?"

दीपक— "यह सब तो मैं जानता हूँ।"

भजनानन्दी— "जानते होते तो आँसू न बहाते।"

दीपक— "आँसू कोई बहाता नहीं महात्मा! यह तो हृदय का वह

दर्द है जो पहाड़ों को भी फोड़ कर बह निकलता है। मैं रो नहीं रहा हूँ, रुलाया जा रहा हूँ।"

भजनानन्दी— "मैंने पहले ही कहा था न सोच करने वाली बात के लिये सोच मत कर। भटकना छोड़ दे!"

दीपक— "तो क्या करूँ?"

भजनानन्दी— "मैं तुम्हें पहचानता हूँ, जीवन में तुमने जितनी सफलता प्राप्त की है उससे अधिक करो। असत्य का अस्तित्व स्वीकार न करो, सत्य पथ पर बढ़ते चले जाओ सेवा और प्यार देते हुए। मृत्यु से कभी न डरो, मृत्यु कुछ नहीं है।"

दीपक— "जान पड़ता है आप मेरे अंग से कोई बिजली छुवा रहे हैं। जैसे अन्धकार दूर होता चला जा रहा है, एक रोशनी सी आती चली जा रही है।"

भजनानन्दी मुस्कराये, बोले— "जब पहली बार तू आया था तब मैंने अपना कवि तुझे दे दिया था। जा, आज अपनी ज्ञान की ज्योति तुझ में जगाता हूँ। मेरे तप का तेज तेरे साथ रहेगा। पर सावधान, बल का दुरुपयोग न करना।"

दीपक— "यह सब आपने किस लिये दिया है, क्या एक अधीर को धीरज देने के लिये?"

भजनानन्दी— "नहीं, संसार के कल्याण के लिये, मानव समाज की सेवा के हेतु।"

दीपक— "मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ?"

भजनानन्दी— "पहले यह तय कर लो कि मोक्ष चाहते हो, आनन्द चाहते हो या संसार चाहते हो।"

दीपक— "बहुत अच्छे हाल चाल हैं कलजुग ! एकदम ठीक ।"

सुनकर कलजुग चौंक पड़ा, बोला— "क्यों प्यारे ! क्या कहीं देवकी देवी के मरने की ही बाट देख रहे थे कि उनके मरते ही ठीक हो गये । ऐसे तो तुम आज पहली ही बार बोल रहे हो ।"

दीपक— "हाँ कलजुग ! मैं ठीक हो गया हूँ और तुमको भी ठीक ठीक पहचानने लगा हूँ ।"

कलजुग— "क्या सी. आई. डी. में भरती हो गये हो ? अगर ऐसी बात है तो चलते फिरते नज़र आओ, नहीं तो उठाता हूँ चिता की जलती लकड़ी ।"

दीपक— "उलटी वाणी मत बोलो कलजुग ! अभी अभी सीधे बोल रहे थे, अब उलटे बोलने लगे । बात यह है कि भजनानन्दी महाराज चन्द्र जी ने मुझे ज्ञान की ज्योति दे दी है ।"

कलजुग— "कहीं आबकारी से तो नहीं आ रहे ? शराबियों की सी बातें क्यों करते हो ?"

दीपक— "नहीं कलजुग ! अब दीपक बदल गया है । अब तक वह विवेक का अनादर करता था, अब विवेक का सम्मान करने लगा । भजनानन्दी ने मेरे आत्मा से अपने आत्मा की बिजली छुआ दी ।"

कलजुग— "अरे, क्या सच ! तुम पर उनकी ऐसी कृपा कैसे हुई ? हम तो उनकी चिलम भरते भरते श्मशान में आ लगे । पर कभी बोतल तक को पैसे नहीं दिये और तुम को इतना धन दे डाला । तकदीर के धनी जान पड़ते हो दुश्मन ! अच्छा, अब तुम हमारे भी गुरु हो गये हो, बोलो क्या हुकुम ?"

दीपक— "हुकुम यह कि एक आश्रम खोलेंगे ।"

दीपक— "बुरा नहीं देखना चाहता, बुरा नहीं करना चाहता, बुरा नहीं सुनना चाहता।"

भजनानन्दी— "यह तुम्हारे अधीन है, बुरा न देखो, बुरा न सुनो, बुरा न बोलो। तुम्हारा मार्ग प्रशस्त है। आनन्द भोगो और आनन्द दो। बात तो तब है जब संसार, स्वर्ग और मोक्ष को अपने संगीत में साकार कर सको। अच्छा अब जाओ, हमारे ध्यान का समय है।"

भजनानन्दी अपने आसन पर ध्यान में बैठ गये। दीपक सर्वतोमुखी प्रकाश लिये उनकी कुटी से बाहर निकले। सामने श्मशान में चितायें जल रही थीं। कलजुग एक चिता के बराबर धुन में बैड़ दे रहा था। यद्यपि न वह कविता थी न संगीत, पर उसमें एक लय अवश्य थी। उसे पहेली भी कह सकते हैं और उलटी वाणी भी। वह कहता जाता था—

"दोस्त से दूर रहते हैं, दुश्मन के पास रहते हैं। पुण्य की परवाह नहीं करते, पाप हमसे डरते हैं। हम अलमस्त हैं, मदमस्त हैं। मरघट में जीते हैं, दुनिया में रीते हैं। रात दिन पीते हैं, ज़हर भी पीते हैं।"

बहकते बहकते कलजुग हिचकी बाँध कर रो पड़ा। रोता रोता बोला— "मैं पत्थर था पत्थर, पर वाह देवी! तुमने ऐसा प्रेम दिया, ऐसी सेवा दी, ऐसी पूजा छोड़ी कि ये आँखें बरस ही पड़ती हैं। पता नहीं दीपक कहाँ होगा, क्या करता होगा, औंधी खोपड़ी है। कल चलूँगा, ज़रा देखूँगा क्या हाल चाल हैं।"

तभी दीपक ने आकर कहा— "कलजुग गुरू!"

दीपक की आवाज़ सुनते ही कलजुग खड़ा हो गया, बोला— "वाह दोस्त! याद करते ही आये हो, बहुत उम्र है तुम्हारी। मैं तो समझता था कहीं तुमने आत्महत्या न कर ली हो। खैर, ज़िन्दा हो, बोलो क्या हाल चाल हैं?"

दीपक— "बुरा नहीं देखना चाहता, बुरा नहीं करना चाहता, बुरा नहीं सुनना चाहता।"

भजनानन्दी— "यह तुम्हारे अधीन है, बुरा न देखो, बुरा न सुनो, बुरा न बोलो। तुम्हारा मार्ग प्रशस्त है। आनन्द भोगो और आनन्द दो। बात तो तब है जब संसार, स्वर्ग और मोक्ष को अपने संगीत में साकार कर सको। अच्छा अब जाओ, हमारे ध्यान का समय है।"

भजनानन्दी अपने आसन पर ध्यान में बैठ गये। दीपक सर्वतोमुखी प्रकाश लिये उनकी कुटी से बाहर निकले। सामने श्मशान में चितायें जल रही थीं। कलजुग एक चिता के बराबर धुन में बैड़ दे रहा था। यद्यपि न वह कविता थी न संगीत, पर उसमें एक लय अवश्य थी। उसे पहेली भी कह सकते हैं और उलटी वाणी भी। वह कहता जाता था—

"दोस्त से दूर रहते हैं, दुश्मन के पास रहते हैं। पुण्य की परवाह नहीं करते, पाप हमसे डरते हैं। हम अलमस्त हैं, मदमस्त हैं। मरघट में जीते हैं, दुनिया में रीते हैं। रात दिन पीते हैं, ज़हर भी पीते हैं।"

बहकते बहकते कलजुग हिचकी बाँध कर रो पड़ा। रोता रोता बोला— "मैं पत्थर था पत्थर, पर वाह देवी! तुमने ऐसा प्रेम दिया, ऐसी सेवा दी, ऐसी पूजा छोड़ी कि ये आँखें बरस ही पड़ती हैं। पता नहीं दीपक कहाँ होगा, क्या करता होगा, औंधी खोपड़ी है। कल चलूँगा, ज़रा देखूँगा क्या हाल चाल हैं।"

तभी दीपक ने आकर कहा— "कलजुग गुरू!"

दीपक की आवाज़ सुनते ही कलजुग खड़ा हो गया, बोला— "वाह दोस्त! याद करते ही आये हो, बहुत उम्र है तुम्हारी। मैं तो समझता था कहीं तुमने आत्महत्या न कर ली हो। खैर, ज़िन्दा हो, बोलो क्या हाल चाल हैं?"

दीपक— "बहुत अच्छे हाल चाल हैं कलजुग ! एकदम ठीक ।"

सुनकर कलजुग चौंक पड़ा, बोला— "क्यों प्यारे ! क्या कहीं देवकी देवी के मरने की ही बाट देख रहे थे कि उनके मरते ही ठीक हो गये । ऐसे तो तुम आज पहली ही बार बोल रहे हो ।"

दीपक— "हाँ कलजुग ! मैं ठीक हो गया हूँ और तुमको भी ठीक ठीक पहचानने लगा हूँ ।"

कलजुग— "क्या सी. आई. डी. में भरती हो गये हो ? अगर ऐसी बात है तो चलते फिरते नज़र आओ, नहीं तो उठाता हूँ चिता की जलती लकड़ी ।"

दीपक— "उलटी वाणी मत बोलो कलजुग ! अभी अभी सीधे बोल रहे थे, अब उलटे बोलने लगे । बात यह है कि भजनानन्दी महाराज चन्द्र जी ने मुझे ज्ञान की ज्योति दे दी है ।"

कलजुग— "कहीं आबकारी से तो नहीं आ रहे ? शराबियों की सी बातें क्यों करते हो ?"

दीपक— "नहीं कलजुग ! अब दीपक बदल गया है । अब तक वह विवेक का अनादर करता था, अब विवेक का सम्मान करने लगा । भजनानन्दी ने मेरे आत्मा से अपने आत्मा की बिजली छुआ दी ।"

कलजुग— "अरे, क्या सच ! तुम पर उनकी ऐसी कृपा कैसे हुई ? हम तो उनकी चिलम भरते भरते श्मशान में आ लगे । पर कभी बोतल तक को पैसे नहीं दिये और तुम को इतना धन दे डाला । तकदीर के धनी जान पड़ते हो दुश्मन ! अच्छा, अब तुम हमारे भी गुरु हो गये हो, बोलो क्या हुकुम ?"

दीपक— "हुकुम यह कि एक आश्रम खोलेंगे ।"

दीपक— "बुरा नहीं देखना चाहता, बुरा नहीं करना चाहता, बुरा नहीं सुनना चाहता।"

भजनानन्दी— "यह तुम्हारे अधीन है, बुरा न देखो, बुरा न सुनो, बुरा न बोलो। तुम्हारा मार्ग प्रशस्त है। आनन्द भोगो और आनन्द दो। बात तो तब है जब संसार, स्वर्ग और मोक्ष को अपने संगीत में साकार कर सको। अच्छा अब जाओ, हमारे ध्यान का समय है।"

भजनानन्दी अपने आसन पर ध्यान में बैठ गये। दीपक सर्वतोमुखी प्रकाश लिये उनकी कुटी से बाहर निकले। सामने श्मशान में चितायें जल रही थीं। कलजुग एक चिता के बराबर धुन में बैड़ दे रहा था। यद्यपि न वह कविता थी न संगीत, पर उसमें एक लय अवश्य थी। उसे पहेली भी कह सकते हैं और उलटी वाणी भी। वह कहता जाता था—

"दोस्त से दूर रहते हैं, दुश्मन के पास रहते हैं। पुण्य की परवाह नहीं करते, पाप हमसे डरते हैं। हम अलमस्त हैं, मदमस्त हैं। मरघट में जीते हैं, दुनिया में रीते हैं। रात दिन पीते हैं, ज़हर भी पीते हैं।"

बहकते बहकते कलजुग हिचकी बाँध कर रो पड़ा। रोता रोता बोला— "मैं पत्थर था पत्थर, पर वाह देवी! तुमने ऐसा प्रेम दिया, ऐसी सेवा दी, ऐसी पूजा छोड़ी कि ये आँखें बरस ही पड़ती हैं। पता नहीं दीपक कहाँ होगा, क्या करता होगा, औंधी खोपड़ी है। कल चलूँगा, ज़रा देखूँगा क्या हाल चाल हैं।"

तभी दीपक ने आकर कहा— "कलजुग गुरू!"

दीपक की आवाज़ सुनते ही कलजुग खड़ा हो गया, बोला— "वाह दोस्त! याद करते ही आये हो, बहुत उम्र है तुम्हारी। मैं तो समझता था कहीं तुमने आत्महत्या न कर ली हो। खैर, ज़िन्दा हो, बोलो क्या हाल चाल हैं?"

दीपक— "बहुत अच्छे हाल चाल हैं कलजुग ! एकदम ठीक ।"

सुनकर कलजुग चौंक पड़ा, बोला— "क्यों प्यारे ! क्या कहीं देवकी देवी के मरने की ही बाट देख रहे थे कि उनके मरते ही ठीक हो गये । ऐसे तो तुम आज पहली ही बार बोल रहे हो ।"

दीपक— "हाँ कलजुग ! मैं ठीक हो गया हूँ और तुमको भी ठीक ठीक पहचानने लगा हूँ ।"

कलजुग— "क्या सी. आई. डी. में भरती हो गये हो ? अगर ऐसी बात है तो चलते फिरते नज़र आओ, नहीं तो उठाता हूँ चिता की जलती लकड़ी ।"

दीपक— "उलटी वाणी मत बोलो कलजुग ! अभी अभी सीधे बोल रहे थे, अब उलटे बोलने लगे । बात यह है कि भजनानन्दी महाराज चन्द्र जी ने मुझे ज्ञान की ज्योति दे दी है ।"

कलजुग— "कहीं आबकारी से तो नहीं आ रहे ? शराबियों की सी बातें क्यों करते हो ?"

दीपक— "नहीं कलजुग ! अब दीपक बदल गया है । अब तक वह विवेक का अनादर करता था, अब विवेक का सम्मान करने लगा । भजनानन्दी ने मेरे आत्मा से अपने आत्मा की बिजली छुआ दी ।"

कलजुग— "अरे, क्या सच ! तुम पर उनकी ऐसी कृपा कैसे हुई ? हम तो उनकी चिलम भरते भरते श्मशान में आ लगे । पर कभी बोतल तक को पैसे नहीं दिये और तुम को इतना धन दे डाला । तकदीर के धनी जान पड़ते हो दुश्मन ! अच्छा, अब तुम हमारे भी गुरु हो गये हो, बोलो क्या हुकुम ?"

दीपक— "हुकुम यह कि एक आश्रम खोलेंगे ।"

कलजुग—"क्या विधवा आश्रम ? अरे भैया, तू चलता फिरता नज़र आ यहाँ से, हमारा नशा ठंडा न कर।"

दीपक— "नहीं, तुम्हें बुरा लगता है तो आश्रम नहीं खोलते। मानव सेवा समाज की स्थापना करेंगे।"

कलजुग— "उसमें क्या करना होगा ?"

दीपक— "उसमें सब से पहले तुम्हें शराब पीनी छोड़नी होगी। नशा बिल्कुल बन्द।"

कलजुग— "तो फिर कलजुग का दम भी बन्द।"

दीपक— "बैड़ बन्द करो कलजुग ! देखते नहीं संसार त्राहि-त्राहि पुकार रहा है। विषमता और ईर्ष्या की आग धधक रही है। अकारण एक दूसरे को खाये जाता है।"

कलजुग— "जब किसी भूखे को कुछ खाने को नहीं मिलेगा तो आदमी को ही खायेगा। हम सा शान्त तो कोई होने से रहा कि मरघट में आ पड़ेगा।"

दीपक और कलजुग काफी देर तक नोंक झोंक लड़ाते रहे। फिर दोनों ने कुछ गम्भीर होकर बातें कीं। कलजुग ने अपने आप को दीपक के आगे समर्पित कर दिया। उसने शराब की बोतल फोड़ दी, चरस की चिलम फेंक दी, चंडू चिता में डाल दिया और अफीम में आग लगा दी। फिर बोला— "मैं नही जानता था मैं क्या हूँ, तुमने मुझे रास्ता दिखा दिया दीपक बाबू ! अब मैं तुम्हारे मानव सेवा समाज का एक सेवक हूँ। आज्ञा कीजिये क्या करूँ ?"

तभी एक बुढ़िया दौड़ती हुई आई। आते ही बोली— "मेरे लड़के को साँप ने काट लिया था, मैं भजनानन्दी महाराज की कुटिया में गई, उन

को बहुत हिलाया, झंझोड़ा पर न वे हिलते हैं न बोलते हैं।"

कलजुग बोला— "चल पहले तेरे बेटे को देखते हैं। भजनानन्दी महाराज की तू चिन्ता मत कर। फिर भी दीपक बाबू! तुम महाराज की कुटिया में जाओ, मैं इसकी झोंपड़ी में जाता हूँ।"

कहता हुआ कलजुग बुढ़िया के साथ चल दिया। तूफान की तरह बात की बात में वह उसकी कुटिया में पहुँच गया। सर्प-दंश से लड़का काला पड़ चुका था, मुँह से झाग निकल रहे थे। कलजुग ने जहाँ साँप ने काटा था वह स्थान मुँह से चूसना शुरू कर दिया। वह चूसता रहा और ज़हर उगलता रहा।

कुछ देर चूसने के बाद कलजुग ने उसका सारा ज़हर खींच लिया। लड़का उठ बैठा। इतने ही में भजनानन्दी महाराज की कुटिया से दीपक का रोदन सुनाई दिया। कलजुग उधर दौड़ा। भजनानन्दी महाराज पर पहली दृष्टि पड़ते ही कलजुग ने कहा— "अच्छा गुरु महाराज भी चल दिये।"

फिर बोला— "बहुत ऊँचे महात्मा हमसे दूर चल दिये। ख़ैर जाना तो सभी को है। गुरुदेव कहा करते थे अब जीवन आगे नहीं है, जान पड़ता है मोक्ष को प्राप्त हो गये। मुक्त तो वे जीते जी ही थे।"

दीपक की आँखों में आँसू देख दिलासा देता हुआ कहने लगा— "भाई, रोना धोना बेकार है। गुरु महाराज का उपदेश हमें तो याद है। कहा करते थे मृत्यु कुछ है ही नहीं, आत्मा मरती नहीं है, शरीर मरा हुआ ही है। तो भैया, छोड़ो सब धन्धे। महाराज के भक्तों को खबर करे देता हूँ, चन्दन ख़रीदे लाता हूँ। देह का दाह संस्कार कर इसी स्थान पर उनकी समाधि स्थापित कर दूँगा। मरघट में रहते रहते मुझे भी बहुत दिन हो गये। अब इस मन्दिर में आसन लगायेंगे, शराब छोड़ ही दी है, बस प्रभु के नाम की माला जपा करेंगे।"

भजनानन्दी महाराज के देहत्याग की सूचना थोड़ी ही देर में उनके भक्तों में फैल गई। थोड़ी ही देर में उनके प्रियजन आ पहुँचे। कलजुग ने अपने जोड़े जाड़े सब रुपये ला तथा और कुछ भक्तों से माँग चन्दन ख़रीदा।

ज़िन्दगी वर्षों तक चलती है पर प्राण छूटते ही देह का अस्तित्व देखते ही देखते अग्निसात् हो जाता है। चन्दन की चिता में महाराज का देह रख दिया गया। अग्नि लगाई गई। हवा की तेज़ी ने कुछ ही घण्टों में साकार को निराकार कर दिया।

चिता जल जाती है और निकटवर्तियों के कण्ठ में एक कहानी शेष रह जाती है। दोहराने के लिये कुछ किस्से, कुछ घटनायें, कुछ चमत्कार शेष रह जाते हैं। देखा जाये तो ज़िन्दगी की इति बहुत थोड़ी दूर पर ही होती है। जन्म की मंज़िल, मरण की राह मरघट तक रहती है।

दाह-कर्म के बाद भजनानन्दी महाराज के आसन पर उनकी कहानियाँ दोहराई जाने लगीं। रात भर, दिन भर और अब तक वे कहानियाँ दोहराई जाती हैं। उन पत्थरों पर, उन खंडित दीवारों पर, उन आसनों और ढूलों पर एक प्रकाश अंकित है। वह ज्योति जिसका मुखर सत्संग अमृत-दान करता था अब मूक सत्संग बनकर कह रहा है— "प्यार दो, विवेक का आदर करो, बल का दुरुपयोग न करो, बुरा न देखो, बुरा न सुनो, बुरा न करो।"

मनुष्य के मन का एक घाव भरता नहीं कि दूसरा हो जाता है। क्या हर मनुष्य की छाती छालों से छिली नहीं पड़ी! न जाने कितने हरे हरे घावों से छाती छलनी रहती है। दीपक को महसूस हो रहा था कि जैसे दुनिया अँधेरी होती जा रही है। सोचता था कि क्या सभी मुझसे दूर हो जायेंगे। विधाता का यह कैसा कोप है, या मेरे भाग्य की यह कैसी रेखा है कि हर आश्रय अतल बनता जा रहा है, किनारे मँझधार बनते

चले जा रहे हैं।

दीपक को रोते देख कलजुग ने उसे फटकारते हुए कहा— "पुरुष की परख पीड़ा में ही होती है। यह रोने का समय नहीं, परीक्षा का समय है। मैंने तुम्हारे कहने से नशा छोड़ दिया, तुम मेरे कहने से रोना छोड़ दो। बिल्कुल मत रोओ, जो होता है होने दो। बीती पर पश्चात्ताप मत करो, आज जैसी पड़ रही है वैसी भुगतो, कल के लिये कर्म करो। भोग चाहते हो तो कर्म करो, भगवान चाहते हो तो भजन करो, मोक्ष चाहते हो तो तप करो।"

दीपक— "मैं तो कुछ ऐसा खो गया हूँ कि मेरी यही नहीं समझ में आता कि मैं चाहता क्या हूँ।"

कलजुग— "तो तुम जब तक समझो तब तक मैं तुम्हें बताता हूँ कि मैं तुमसे क्या चाहता हूँ। जीने के लिये नशा एक सहारा था, वह तुमने छुड़ा दिया। अब तुम कुछ सुनाओ, कोई ऐसी कविता सुनाओ जिसमें सारे प्राणी जगत की पीड़ा बोलती हो।"

दीपक— "यह क्या, तुमने मुझसे क्या कहा, बहुत बड़ी बात कह दी। मैं समझता था कि मैं ही पीड़ित हूँ, तुमने यह कहकर मेरी आँखें खोल दीं। मैं तो बहुत कम दुखी हूँ। दुनिया में तो बहुत बड़े बड़े दुखी हैं। आज नहीं कल कोई ऐसी कविता सुनाऊँगा, जिसमें सारे प्राणी जगत का दर्द बोल उठेगा।"

दुःखातिरेक में कौन प्रलाप नहीं करता! कई दिन तक दीपक और कलजुग एक दूसरे को समझाते रहे। धीरे धीरे दर्द घटने लगा। समय बड़े से बड़ा दुःख घटा देता है। आज कई दिन बाद दीपक को दीवार के सहारे सहारे बैठे बैठे ज़रा नींद आ गई। कलजुग भी कोहनी का तकिया लगा लेट गये।

१८

पुरुष अधिकार चाहता है और स्त्री प्यार। एक प्रकार से पुरुष स्त्री को शासित रखने का अभ्यासी है। वह समझता है स्त्री मेरी दासी मात्र है। नारी के कोमल तत्वों को पुरुष के कठोर नियन्त्रण क्या पहचान पाते हैं। नर अपने हज़ारों दोष भी नहीं देखता, नारी की तनिक सी भूल पर भी वह आग-बबूला हो जाता है।

नारी सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति है। वह तप सकती है, सह सकती है और पुरुष की इच्छाओं के लिये गल सकती है। पर जब उसकी समस्त क्रियाओं पर पुरुष के नियन्त्रण अनर्थ पर अनर्थ करते नहीं थकते तब वह दहक भी उठती है। उस समय कोमल सुगन्ध में तेज़ तराश आ जाती है, शीतलता सुलग उठती है, अहिंसा हिंसा बन जाती है। प्यार में तलवार सी कौंध उठती है।

और जब नारी प्रतिहिंसा की दुधारी खींच लेती है तो फिर पुरुष के सारे शस्त्र बेकार हो जाते हैं। पुरुष समझदार हो तो नारी से अमृत ले सकता है और मूर्ख है तो वह उससे ज़हर बुझी कटारी के अतिरिक्त और कुछ नहीं ले सकता।

तब बड़ा कठिन होता है जब कोई प्यार से घृणा, सत्य से झूठ, ज्ञान से मूर्खता और बलिदान से स्वार्थ का संग्राम कराता है। विवाह के बाद नीरजा और प्रदीप के क्षण ऐसे ही बीतने लगे जैसे गुलाब और काँटों के बीतते हैं। प्रदीप नीरजा के हर काम को गलत बताता था।

यदि कोई किसी को गलत होने पर गलत समझे तो एक बात होती है। लेकिन यदि कोई ठीक को गलत बता कर सजा देनी चाहे तो उसका अपराध उसे कभी क्षमा नहीं करेगा।

नीरजा और प्रदीप का बात बात में झगड़ा रहने लगा। काफी दिन तक तो नीरजा ने प्रदीप को पूज्य मान उसके अत्याचार सहन किये। पर चोट खाते खाते उसका भी आत्माभिमान जाग उठा, अब वह भी प्रदीप का कहा मानने से इन्कार करने लगी। लेकिन उसकी नीयत यही थी कि शायद प्रदीप के समझने का यही रास्ता हो। उधर प्रदीप के मन में एक कुचक्र चक्कर काट रहा था। सोचता था नीरजा को उसके सारे अधिकारों से वंचित कर दूं। एक दिन उसने उसकी कोई चीज़ चुराई, दूसरे दिन कुछ उठाया, तीसरे दिन किसी वस्तु पर हाथ मारा। इस तरह वह हर कदम पर नया गुल खिलाने लगा। जब नीरजा ने देखा कि इसने तेरा सब कुछ हरण कर लिया है, आभूषण चुरा लिये, कपड़े निकाल कर ले गया, तेरी प्रतिष्ठा पर आक्रमण कर बैठा और अब जीवन पर हमला करने वाला है, तो वह भी सँभली।

एक दिन प्रदीप नीरजा से बड़े प्यार से बोले— "मैं एक बड़ा व्यापार कर रहा हूँ, नीरजा! उसी के लिये मैंने तुम्हारे सब ज़ेवर लिये हैं। उसमें और रुपये की ज़रूरत है। तुम अपनी कोठी से रुपया लेकर मुझे दे दो। बाद में जब व्यापार में रुपया आयेगा तो और बढ़िया कोठी बनवा लेंगे।"

नीरजा— "जैसे आप चाहें, पर इसके लिये मुझे दीपक जी से भी पूछना होगा। माँ मरते समय मुझसे कह गई थीं कि कोठी के काम में दीपक बाबू की सलाह के बिना कुछ न करना।"

दीपक का नाम सुनते ही पहले तो प्रदीप का रोम रोम झुलस उठा,

उसने अन्दर ही अन्दर दाँत पीसे। फिर बोला— "अब उससे क्या मतलब, कल ही यह काम होना ज़रूरी है। मैं काग़ज़ टाइप करा लाया हूँ, बस तुम्हें उस पर दस्तख़त करने हैं।"

नीरजा— "मैं किसी भी काग़ज़ पर जब तक दीपक बाबू से नहीं पूछ लूँगी तब तक हस्ताक्षर नहीं करूँगी।"

प्रदीप— "तो तुम्हारे लिये दीपक ही सब कुछ हैं, हम कुछ भी नहीं।"

नीरजा— "आपका स्थान और है और दीपक बाबू का और। इतना अवश्य है कि आप अपना ही अपना सोचते हैं और दीपक बाबू आपका और मेरा दोनों का हित सोचते हैं।"

प्रदीप ने देखा कि यह ऐसे हस्ताक्षर नहीं करेगी। थोड़ी उंगलियाँ टेढ़ी करनी पड़ेंगी। बोला— "आज तो थोड़ा सा शर्बत पीना चाहिये। बहुत अच्छा शर्बत लाया हूँ।"

कहते हुए जेब से बोतल निकाली। दो गिलासों में डाल एक नीरजा को पकड़ाने लगे।

शराब की गन्ध से नीरजा का दम घुटने लगा। बोली— "यह क्या शराब! न मैं पीऊँगी और न आपको पीने दूँगी।"

प्रदीप— "मैं भी पीऊँगा और तुम्हें भी पीनी पड़ेगी।"

नीरजा— "नहीं, ये ज़हर के गिलास फेंक दो।"

प्रदीप— "ये तो ज़िन्दगी के प्याले हैं। इनको पीकर वह मज़ा आता है, वह दुनिया मिलती है कि लबे बँध जाती हैं।"

नीरजा— "मैं सब समझती हूँ। इस शराब ने ही बहुत से इन्सानों को हैवान बना दिया, घर बर्बाद हो गये। उस दिन वे पढ़े लिखे पड़ौसी शराब पिये नाले में लोट रहे थे। कल रामदीन ने अपने चौके के बर्तन

बेच कर शराब पी थी। और आपने क्या कम आखरी उठा रखी है!"

नीरजा के लैक्चर का प्रदीप पर क्या असर होना था। वह तो कुछ और ही सोच कर तुला हुआ था। नीरजा के बार बार मना करने, लड़ने झगड़ने, रूठने और नाराज़ होने पर भी वह बाज़ न आया। वह नीरजा के साथ ज़बरदस्ती करने लगा।

उसने आलिंगन के बहाने नीरजा को जकड़ लिया, इस तरह दबाया कि वह बेबस हो जाये। उसका मुँह खोल गिलास मुँह से लगा दिया। किन्तु नीरजा मर सकती थी पर शराब नहीं पी सकती थी। उसने ज़ोर लगा गिलास छुड़ाने की कोशिश की। छीना-झपटी में गिलास का कोना उसके दाँतों से कट गया। इससे शराब बिखर गई व नीरजा के ओठों से खून बहने लगा।

नीरजा की ऐसी हठ देख प्रदीप को क्रोध आ गया। वह उस पर झपट पड़ा, टूट पड़ा। दोनों पंजों से उसका गला दबा दिया। जो उसके मन में था वह करने को आकुल हो उठा। बोला— "आज तेरा गला घोंट कर तुझे जान से मार दूंगा, फिर मेरा रास्ता साफ हो जायेगा।"

नीरजा प्रदीप का आदर करती थी, उससे कमज़ोर नहीं थी। देवकी देवी ने उसे दुश्मन से बचने की हर अंकटी समझा दी थी। वह ऐसे ही सचेत थी जैसे अफजल खाँ के सामने शिवाजी सावधान थे। पैंतरा बदल कर बच निकली और साथ ही प्रदीप ने तड़प कर किल्ली सी मारी।

कोई किसी पर तभी आक्रमण करता है जब वह समझता है कि मैं इससे बलवान हूँ। जब कोई समर्थ को सामने पाता है तो भीरु बन जाता है। प्रदीप समझ गया कि नीरजा भोली अवश्य है पर असावधान नहीं। बलपूर्वक उसका दमन असम्भव है। खीझा हुआ सा कह उठा—

"तुम चाहती हो कि मैं मर जाऊँ।" और फिर गुस्से से उसने अपनी उंगली चबाई। जब किसी का गुस्सा किसी दूसरे पर नहीं उतर पाता तो वह अपने ऊपर ही उतारता है। वैसे उसने नीरजा के शरीर को कई जगह से क्षत-विक्षत कर डाला था। कहीं दाँतों से, कहीं नाखूनों से और कहीं मुक्कों से। आखिर कोई कहाँ तक सहन करे! नीरजा का स्वाभिमान जाग उठा।

अधिक क्रोध और दुःख में जब लाचारी होती है तो मनुष्य रो पड़ता है। नीरजा से न थमा गया। वह रो पड़ी, ज़ोर ज़ोर से फूट पड़ी। उसके रोने में त्राहि त्राहि की ध्वनि थी। उसके मानस से एक आग भरी करुणा निकल रही थी। शरीर में एक भूचाल सा दौड़ा। उसे लगा कि जमीन घूम रही है, पर वास्तविकता यह थी कि उससे ज़मीन घूम रही थी। वह मूर्छित होकर गिर पड़ी।

शोर सुन कर मौहल्ले वाले इकट्ठे हो गये। रोने-धोने और लड़ाई-झगड़े में भीड़ जमा होते क्या देर लगती है! नीरजा बेहोश पड़ी थी, हिचकियाँ भर रही थी। कुछ बड़ी बूढ़ी औरतों ने उसके मुँह में जल डालना शुरू किया। बदन पर मार के निशान देख बोलीं— "आदमी नहीं, जल्लाद जान पड़ते हैं।"

उत्तर में नीरजा की सास बोली— "मेरे लड़के का कोई कसूर नहीं। इसने ही नाक में दम कर रखा है। ज़रा प्रदीप की उंगली तो देखिये, इसने दाँतों से चबा डाली।"

पर सत्य सत्य ही होता है और असत्य असत्य ही रहता है। नीरजा को मौहल्ले वाली पहचान चुकी थीं। प्रदीप को पहले से ही जानती थीं। किसी किसी ने कहा— "अरी रहने दे, हम सब जानती हैं जैसा तेरा लड़का है। उसके चाल-चलन का भी हमें सब पता है। ज़बान मत खुलवा। इस बेचारी को जान से मार कर ही तुम्हें चैन पड़ेगी।

हर वक्त सिर रहते हो इसके।"

इतने में नीरजा को कुछ कुछ होश आया। उसकी आँखों से एक दम पानी निकल आया। उसकी शक्ल पर मानो सारे दुःख एक साथ प्रकट हो गये। कुछ मूर्छित सी, कुछ जागती सी, रोती हुई बड़बड़ाने लगी—' 'मार डालो, मुझे मार डालो, घोंट दो मेरा गला, मैं कोठी के काग़ज़ पर दस्तखत नहीं करूँगी। तुम्हें दूसरा ब्याह करने की आग लग रही है तो कर लो। मैं अब यहाँ नहीं रहूँगी, बिल्कुल नहीं रहूँगी। मैं अपनी जान दे दूँगी पर इस घर में नहीं रहूँगी। ये आदमी नहीं, हत्यारे हैं। इनको सिर्फ पैसा चाहिये, पैसा। आज मेरी माँ नहीं है तो ये मुझ पर ज़ुल्म करते हैं, वे होतीं तो इन्हें कच्चा चबा जातीं।"

और फिर दुःखातिरेक में विक्षिप्त सी हो उठी— "माँ! तुम कहाँ हो? मुझे यहाँ क्यों छोड़ गईं, अपने ही साथ क्यों नहीं लेगईं? मैं यहाँ नहीं रहूँगी, अपने ही पास बुलालो मुझे। ऐसा जानती तो मैं उसी दिन चिता में तुम्हारे साथ जल जाती।"

कहते कहते वह अपना तन नोचने लगी। जब किसी को बहुत दुःख होता है तो वह अपना बदन खरोचने लगता है। कुछ समझदार पड़ौसियों ने उसे धीरज दिया— "रो मत बेटी! घबरा मत, सब ठीक हो जायेगा, ले पानी पी ले।"

नीरजा रोती हुई बोली— "आप समझते होंगे कि मैं दोषी हूँ, पर मैं दोषी नहीं हूँ। यहाँ मुझे सेवा के बदले तिरस्कार, प्यार के बदले धिक्कार, अधिकार के बदले अनादर और अपने सर्वस्व समर्पण के बदले कभी न पूरे होने वाले स्वार्थों की आग मिलती है। मेरा तन और विवेक झुलसा जा रहा है। यहाँ सेवा की अवहेलना और विवेक का तिरस्कार होता है। आप मेरे माँ बाप हैं, पूज्य हैं, मुझ पर दया करो, मुझे यहाँ से मेरी माँ के घर पहुँचा दो। दीपक बाबू तक खबर पहुँचा

दो कि नीरजा पर वह बीत रही है जिसकी वे आशा नहीं कर सकते। मैं नारी अवश्य हूँ, पुरुष के अधीन कर दी गई हूँ। पर इसका यह अर्थ नहीं कि मैं सबला नहीं हूँ, अपने अधीन नहीं रह सकती। मुझमें करुणा है, कोमलता है, तो कठोरता और शक्ति भी है। मुझे किसी का सहारा नहीं चाहिये। मैं नहीं जानती कि यह विवाह था या मुझ पर कोई अत्याचार! शायद शादी स्त्री पर पुरुष की एक ज़्यादती है, विवाह पुरुष के स्वार्थों का एक ढोंग! क्या पुरुष इसीलिये स्त्री को विवाह कर लाता है कि उसे नौकरानी बना कर रखे, उससे अपनी कुत्सित इच्छाओं की पूर्ति कराता रहे, पतिभक्ति के नाम पर उससे अपनी पूजा कराता रहे? मैंने वचन दिये थे, बराबर के अधिकार के, बराबर के प्यार के। किन्तु पुरुष स्त्री से दिये हुए वचनों की पूर्ति चाहता है और स्वयं स्त्री को दिये हुए वचनों को ठुकराता है। ये झूठे हैं, बेईमान हैं। जो अपनी ज़बान का नहीं वह चाहे कितना भी बड़ा दीखे पर इन्सान नहीं होता। मुझे आप सब क्षमा करना! जब मेरा रोम रोम झुलस उठा, जब मेरी सहनशक्ति पर इनके सारे अन्याय टूटते रहे, जब इनका धर्म केवल अपना स्वार्थमात्र रह गया तब मेरी ज़बान न रुकी। यह मैं नहीं बोल रही, एक कली की फुकी हुई सुगन्ध बोल रही है।"

दुनिया में भले बुरे सब एक से होते हैं। जब परखे जाते हैं तभी पता चलता है कि कौन भला, कौन बुरा। दीपक समझते थे कि प्रदीप अच्छा है, नीरजा को प्रदीप से शुभ आशायें थीं। पड़ौसी जानते थे कि प्रदीप क्या है। सब को पता था कि वह अपने स्वार्थ के लिये, अपनी इच्छाओं के लिये, अपनी ऐयाशी के लिये वह कर सकता है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। क्या पुरुष स्त्री के साथ चालाकी करना ही जानता है, उसे धोखा देना ही उसका अभीष्ट है? शायद पुरुष के लिये स्त्री एक गेंद है जो पुरुष के स्वार्थों के गदके खाती रहती है। पुरुष नहीं

चाहता कि स्त्री ज़रा भी ज़बान खोले।

नीरजा को बोलते देख प्रदीप को आग लग गई। उसने उसे गालियाँ देनी शुरू कर दीं। उसका जोश बढ़ गया। होश तो खोये हुए थे ही। उसने खींच कर एक तमाचा नीरजा के गाल पर मारा और फिर लोहे की कोई छड़ी सी उठा उस पर टूटने ही वाला था कि पड़ौसियों ने उसे धिक्कारते हुए पकड़ लिया।

नीरजा तो पहले ही धधकी हुई मोमबत्ती सी रिस रही थी। अब तो वह चोट खा कर और भी सुलग उठी। किसी के सामने जब पुरुष स्त्री का अपमान करता है तब स्त्री की पुरुष के प्रति सारी श्रद्धाएँ समाप्त हो जाती हैं। जब दोषी किसी निर्दोष पर जुल्म करता है तो निर्दोष भी ललकार उठता है। नीरजा भी हुंकार उठी। नारी हृदय का विद्रोह जाग उठा। कहा नहीं जा सकता कि किस परिस्थिति में कौन मनुष्य को क्या प्रेरणा देता है। ऐसा मालूम होता है कि कोई अदृश्य शक्ति पीड़ित हृदय से प्रतिध्वनित होती है।

नीरजा आँखें निकाल कर खड़ी हो गई, बोली— "जहाँ न आदर हो, न स्नेह, वहाँ रहना पाप है। मैं यहाँ नहीं रहूँगी।"

जिसमें विश्वास और सत्य होता है, उसमें शक्ति होती है। विश्वास से कही गई बात में अद्‌भुत बल है। नीरजा तड़प कर जो कुछ कह रही थी उसके प्रति श्रोताओं की सम्वेदना थी। नीरजा बिजली की तरह दमकी और तेज़ी से ऐसे चल दी जैसे बिजली कौंधती तो दिखाई देती है छिपती दिखाई नहीं देती। बादल गरजते रहे और बिजली चमक कर छिप गई।

११

एक छोटी सी चिनगारी कभी कभी भयंकर आग बन जाती है। व्यक्ति के मन की हलचल में एक बड़ा भारी विप्लव होता है। किसी के मन में कम्पन होता है और समाज में तहलका मच जाता है। किसी के मानस में बिजली कौंधती है और सारे संसार में बिजली तड़प उठती है। कोई सोचता है और विश्व में एक नया परिवर्तन आ जाता है। व्यक्ति की शक्ति समष्टि को एक स्वर में बाँध जब फुंकारती है तो कुछ से कुछ हो जाता है।

चाहे संसार में व्यक्ति व्यक्ति की कितनी ही कहानियाँ हों, हर व्यक्ति के साथ बहुत सी घटनाएँ होती ही हैं। कोई ऐसा नहीं, जिसके जीवन में हलचल नहीं, जिसकी ज़िन्दगी में कहानियाँ नहीं, प्रत्येक हँसता भी है और रोता भी है, गिरता भी है और चलता भी है, बुझता भी है और जलता भी है, पर कोई ऐसा भी नहीं है जिसके साथ औरों का सम्बन्ध नहीं है। हर व्यक्ति के साथ समाज भी है, राष्ट्र भी है और संसार भी है।

जब कोई बड़ी घटना होती है तो छोटी घटनाओं की ओर ध्यान नहीं जाता। दीपक और कलजुग अपने दुःख-सुख की कहानियाँ दोहरा ही रहे थे, संसार में क्या करना है यह सोच ही रहे थे कि बादल गरज उठे, बिजलियाँ कड़क उठीं, ओले बरसने लगे।

यह आकाश से नहीं, मानव हृदय से उनके देश की ओर बढ़ते हुए

तूफान थे। कलजुग ने कहा— "हम और तुम तो हिमालय पर चलने की सोच रहे थे, तपस्या के स्वप्न देख रहे थे, किन्तु वहाँ तो रक्त-स्नान हो रहा है। विदेशी भूखे भेड़ियों की तरह हिन्दुस्तान पर हमला करता चला आ रहा है।"

दीपक— "हाँ, आज हिमालय पर तोपों की गड़गड़ाहट सुनाई दे रही है, युद्ध हो रहा है। चीन ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया है। लद्दाख और नेफा में उनकी सेना समुद्र की लहरों की तरह प्रलय मचाती चली आ रही है। बेचारे निरीह नागरिक घर छोड़ छोड़ कर भाग रहे हैं, उन पर उनके जुल्म हो रहे हैं।"

कलजुग— "ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। हम उनको भाई कहते थे पर वे तो अन्यायी निकले। दोस्ती के बदले दुश्मनी दे रहे हैं। इनसे मानवता को खतरा हो गया।"

दीपक— "न्याय पर अन्याय की विजय कभी नहीं हुई। सत्य से असत्य कभी नहीं जीता। चाहे चीन कितना भी धोखा करे किन्तु अन्त में जीत भारत की ही होगी।"

कलजुग— "देखो दीपक! मैं कवि नहीं हूँ, कोरी भावुकता में कुछ नहीं कहता। वास्तविकता यह है कि जो स्वयं अन्याय करे वह कभी न कभी अन्याय का शिकार हो ही जाता है। चीन ने हिन्दुस्तान के साथ अन्याय किया है, हिन्दुस्तानी अपने देश के साथ अन्याय कर रहा है। झूठ, चोर-बाज़ारी, पूँजीवाद, अधिकार के लिये मतों का महायुद्ध, किसी को प्यार है देश से? सब अधिकार और स्वार्थों के लिये कट रहे हैं, मर रहे हैं। मैं कहता हूँ कि यदि हम अपनी कमज़ोरी निकाल दें तो चीन क्या कोई भी हिन्दुस्तान की ओर आँख उठाने का साहस नहीं कर सकता। हमें पहले मरने का डर निकालना होगा। जो गुरुदेव ने कहा है विवेक का आदर

करना होगा। जो हम दूसरे से न चाहें उससे स्वयं बचना होगा। तब फिर चीन में कितना भी सैन्यबल हो आत्मबल के सामने उसकी आँख नहीं उठ सकती। तुम कवि हो, गाओ, देश के लिये वे गीत गाओ जिनसे दुर्बलता की ऊँची ऊँची मीनारें धूलधूसरित हो जायें। मैं कभी सैनिक था, अब श्मशान में पड़ा रहता हूँ, जी चाहता है एक बार फिर कंधे पर बन्दूक रख लूँ, उन आक्रान्ताओं को मिटा डालूँ जो श्वेत हिमालय को लाल करना चाहते हैं। अहिंसा परमो धर्म मान कर सूने श्मशान में चला आया। पर अब लगता है मानव जीवन के लिये तलवार धर्म भी अनिवार्य है। वैसे मैं यहाँ भी फुंकारे बिना शान्ति से नहीं बैठ पाया। कोई भी डर के बिना किसी को जीने नहीं देता। हिमालय की ओर से चीन का हिन्दुस्तान पर आक्रमण ऐतिहासिक और वह हमला है जिसने धरती को हिला दिया। चाहे मैं बेपढ़ा सही पर हिमालय के शिखरों पर घूम चुका हूँ। यदि वह प्रहरी भारत की रक्षा में माथा ऊँचा किये दूर तक न खड़ा रहता तो न जाने धरती पर धर्म शेष रहता या नहीं, मानवता बचती या नहीं। सद्भावनाओं पर बहुत पहले प्रहार हो लिये होते। विवेक के ग्रन्थ फुंक गये होते। स्वतन्त्र जीवन का अन्त हो लिया होता। यहाँ भी वे ही भेड़िये होते जो साँप, कीड़े, मकौड़े, कुत्ते, चूहे और मनुष्यों के मांस खाते हैं। ख़ैर, शत्रु ने यदि बर्फ में आग धधकाई है तो हममें उसे बुझाने की ताक़त है। दीपक! दुश्मनों से डर नहीं लगता, भय नहीं कि चीन हिन्दुस्तान को हड़प लेगा। डर है तो केवल यह कि इस देश के कणों में जो ज़हरीले कण फैल गये हैं उनको कैसे समाप्त किया जाये। देश में बड़ी क्रान्ति की आवश्यकता है। आर्थिक विषमता हटाने की ज़रूरत है। धार्मिक मदान्धता हटानी ज़रूरी है। एकता की एकता चाहिये। एक ध्वज के नीचे सारे देश को लाये बिना आक्रान्ता का अन्त आसान नहीं। तुम कवि हो, क्या

नहीं देखते ! देशभक्ति अधिक है या आत्मभक्ति ? किसे परवाह है देश की ? सब अपने अपने रागों में, अपने अपने भोगों में, अपने स्वार्थों में डूबे पड़े हैं।"

कलजुग कुछ ऐसे भावावेश में था जैसे कोई बहुत बड़ा उद्वेग उगलने देना चाहता है। दीपक ने उसकी दशा देखते हुए कहा— "आज तो रंग बदल गया है कलजुग ! जान पड़ता है फ़क़ीरी छोड़ देना चाहते हो।"

कलजुग— "जब देश संकट में हो तो देश के लिये अपनी प्रिय वस्तु भी छोड़ देनी चाहिये। अच्छा दोस्त, हमारा तुम्हारा संयोग अब अधिक नहीं निभेगा, क्योंकि हम कल ही मिलिट्री में भरती होने जा रहे हैं। युद्ध-कुशल तो हम बचपन से हैं, रण-नीति भी जानते हैं। अच्छे अच्छे बन्दूकधारी को तो हम बिना बन्दूक के ही स्वाहा कर डालते हैं। एक बात कहना चाहते हैं, अगर हम युद्ध में शहीद हो जायें तो वैसे तो हमारे लिये कोई रोने धोने वाला है नहीं, तुमसे थोड़ा सा मोह है वह भी चलता फिरता, लेकिन यह जो मरघट में घूमता हुआ कुत्ता तुम देखते हो यह अपना दोस्त है। यह सिर्फ मैं ही जानता हूँ कि जब मैं सोता हूँ, तो यह जागता है, जब मैं कुछ खाने को देता हूँ तो यह खाता है। मैं कहीं चला जाता हूँ तो दो दो दिन तक भूखा पड़ा रहता है। मुझे चिन्ता है कि अगर मैं फौज में भरती हो गया तो इसका क्या होगा ? क्या तुम इसका उत्तरदायित्व ले सकते हो ?"

दीपक स्वयं पीड़ा से पिघला हुआ आँसू था, उसे अपने शरीर का बोझ ही अखर रहा था, फिर किसी की ज़िम्मेवारी उसके बस की कहाँ थी। लेकिन एकाएक जवाब भी कैसे देता, बोला— "कोई पालतू कुत्ता तो है नहीं, ऐसे ही तुम्हारे साथ लग लिया है। तुम न रहे तो दो चार दिन भटकेगा फिर भूल जायेगा। मनुष्य अपने प्रिय से प्रिय को भूल जाता है। हम उनको भूल गये जो जीते जी हम पर दम भरते थे।

समय की गति बड़ी विचित्र है। देवकी देवी की याद धुंधली पड़ती जा रही है, गुरुदेव की ज़िन्दगी कहानी मात्र रहती जा रही है।"

कलजुग अक्खड़ तो थे ही, दीपक का उपदेश सुनकर बोले— "ओ भैया लीडर! लैक्चर मत दे, सीधी सीधी बात बता दे, तेरे बस की कुत्ते की हिफाजत है या नहीं? हो तो हाँ कह दे, न हो तो ना कर दे। मैं इस साले को गोली मार किस्सा ही ख़त्म कर दूँगा।"

दीपक कलजुग की आदत जानता था, वह समझ गया कि अगर मैंने न कही तो कलजुग कुत्ते की क्रियाकर्म निबटा देगा, बोला— "अच्छा कलजुग! तुम सेना में भरती हो जाओ, मैं तुम्हारे कुत्ते की ज़िम्मेवारी लेता हूँ।"

कलजुग ने कुत्ते के कान में कहा— "देख भई दोस्त सतजुग! हम तो जाते हैं। या तो करके लौटेंगे या मरके। और क्योंकि देश का काम है इसलिये तू मान भी जायेगा ही। अब से तुझे दीपक बाबू खिलाया पिलाया करेंगे। और तुझे दीपक बाबू की हिफाजत करनी है।"

कलजुग उसी दिन जाकर फौज में भरती हो गया। उसकी करामातें देख उसके निर्वाचन में दिक्कत न पड़ी। भरती होने के दो चार दिन बाद ही पैतरेबाज कलजुग नई पुरानी सभी तरह की बन्दूकें चलानी सीख गया। जब उसे अस्त्र शस्त्र चलाने आ गये और सैनिक अधिकारियों ने देखा कि कलजुग बहुत दक्ष लड़ाकू है तो उसे सीमा पर लगा दिया गया।

आश्चर्य है जो कलजुग नशे के बिना एक पल भी नहीं रह सकता था, वह जाड़े की कड़कड़ाती सर्दी में हिमालय पर तैनात हो गया।

एक दिन रात के दो बजे कलजुग ने देखा कि वह जहाँ है उससे काफी ऊँचाई पर खड्ड के पार काफी संख्या में दुश्मनों ने चुपचाप मोर्चा

लगा लिया है। चट्टान की आड़ में छिपे हुए कलजुग ने समझ लिया कि यदि रात बीत गई तो ये दुश्मन सुबह हमारी फौज को भून डालेंगे। वह रेंगता हुआ पीछे की तरफ खिसका। ऊबड़ खाबड़ बीहड़ रास्ता रेंगकर तय करता हुआ वह अपने अफसर के शिविर में पहुँचा। अफसर सो रहा था, कलजुग ने आग्रह कर उसे जगाया।

जागने पर कलजुग ने अफसर को दुश्मन के मोर्चे की खबर दी और आग्रह किया कि वह कलजुग को इसी वक्त उस मोर्चे पर हमला करने की आज्ञा दे दे।

अफसर ने पूछा— "दुश्मन की संख्या कितनी होगी?"

कलजुग— "दो हज़ार से ज़्यादा दीखते हैं।"

अफसर— "तो हम तो यहाँ इस समय केवल आठ सौ की टुकड़ी लिये पड़े हैं, और फिर जनरल साहब की आज्ञा भी नहीं है कि हम यहाँ से एक कदम भी आगे बढ़ें।"

कलजुग— "नहीं बढ़े तो फिर पीछे हटने की हद भी नहीं रहेगी।"

अफसर— "अब हम हमला करें भी तो कैसे?"

कलजुग— "मैं सिर्फ दस जवानों के साथ इसी समय हमला करना चाहता हूँ। हमारे शरीर पर जितने भी हथगोले बाँधे जा सकें बँधवा दीजिये। यहाँ पहाड़ पर चढ़ने वाले मेरे साथ सिर्फ दस साथी ही हैं जो अँधेरी रात में चुपचाप बर्फीले पहाड़ पर चढ़ सकते हैं। दुश्मन वहाँ बे-फिक्र सोये हैं, शराब के नशे में चूर हैं। हम चुपचाप पीछे से हमला करते हैं, आप दूसरी ओर से सेना लेकर आ जाइये। दुतरफा मार से दुश्मन जहाँ है वहीं जलकर राख हो जायेगा।"

अफसर— "मगर इतने दुश्मन तुम्हारे पहले शब्द पर ही हम सब को जला डालेंगे।"

कलजुग— "नहीं साहब! आप कलजुग को नहीं पहचानते। मैंने ऐसे खतरे बहुत देखे हैं। पिछली जर्मन की लड़ाई में मेरे मोर्चे पर सब साथी मर गये थे। मैं अकेला ही बीस जर्मनों को गिरफ्तार करके ले आया था। मैं पागल हो रहा हूँ साहब! मुझे जल्दी आज्ञा दे दीजिये। जितनी देर हो रही है उतना ही मैं घबरा रहा हूँ।"

मेजर ने परिस्थिति की गम्भीरता और कलजुग के मन की स्थिति को समझते हुए आज्ञा दे दी। कलजुग ने अपने सभी साथियों के शरीर पर हथगोले बाँधे। एक एक जवान के शरीर पर लगभग सवा सवा मन बोझ था। और फिर कलजुग ने अपने दसों साथियों की कमान हाथ में ले ली।

रेंगते हुए ये जवान रपटने वाले बर्फ के पहाड़ पर इस तरह चढ़ गये जैसे छिपकली दीवारों पर चढ़ जाती है। चढ़ते चढ़ते कलजुग दुश्मनों के बिल्कुल बराबर ऐसे जा लगे जैसे दोपहर के बारह बजे किसी की परछाईं उसी में मिल जाती है। अपने और अपने साथियों को कलजुग ने आड़ में सुरक्षित कर लिया। और फिर सभी साथियों ने एक साथ धुँआधार गोले बरसाने शुरू कर दिये।

कलजुग के भयानक शब्द, गोलों के प्रचंड धमाके और मरते हुए दुश्मनों के चीत्कार से एक भयावह दृश्य दमक उठा। दूर से कलजुग के शिविर में मेजर ने वह प्रचंड कांड देखा। दुश्मन हड़बड़ा कर हमला करने की बजाय भाग खड़े हुए। कुछ ने भागते हुए बन्दूकों से गोलियाँ भी चलाईं। यद्यपि कलजुग और उसके साथी काफी सावधान थे फिर भी उसके आठ साथी खत्म हो गये। नवे साथी ने जरा गर्दन उठाई ही थी कि उसके माथे में गोली लगी। कलजुग ने उसे बचाने के लिये हाथ बढ़ाया कि उसके हाथ में एक गोली लगी। दूसरे हाथ में भी कलजुग के एक गोली लगी। फिर भी कलजुग और उसका साथी गोले फेंकते ही

रहे, तब तक फेंकते रहे जब तक दुश्मन काफी संख्या में राख नहीं हो गये। बचे-खुचे जान बचा कर भाग गये।

इधर जब सूर्य निकलने को हुआ तो दूसरी ओर से मेजर कलजुग की सहायता के लिये वहाँ पहुँचा। किन्तु वहाँ क्या धरा था, लाशों के ढेर! पहाड़ का वह भाग रक्त से लथपथ था। दुश्मनों के हथियार लहू में तैर रहे थे। इनमें बड़ा कठिन था किसी की भी लाश को पहचानना। मेजर कलजुग को ढूंढ रहा था। ढूंढते ढूंढते उसने अपने कुछ जवानों की लाशें देखीं और फिर आगे बढ़ कर देखा कि कलजुग मोर्चा जीत कर अपने शिविर की ओर जाने के लिये लालायित दशा में मूर्च्छित पड़ा है। उसके कदम मानो चलते चलते शिथिल होकर रुक गये हैं। वह फिसला है और खड्ड में गिरने से बचने के लिये उसने दोनों हाथों से इधर उधर के दो भाग जकड़ कर पकड़ लिये हैं।

मेजर ने सैनिकों को आज्ञा दी और उन्होंने तुरन्त कलजुग को अपनी पीठ पर उठा लिया। मुक्त कंठ से मेजर ने कलजुग की सराहना की। उसने कहा— "कलजुग! आज तुमने सारे देश की लाज बचा ली। यदि यह मोर्चा न जीता होता तो यह सारी ही लड़ाई जीतनी असम्भव हो जाती।"

दुश्मनों के छोड़े हुए बहुत से अस्त्र-शस्त्र साथ ले और कलजुग को पीठ पर लाद देश के सिपाही सुरक्षित वापिस आ गये। अमर हो गये कलजुग के दस साथी जो वीर गति को प्राप्त हुए। घायल और मूर्च्छित कलजुग को हैलिकोप्टर से सैनिक हॉस्पिटल भेज दिया।

२०

हर मनुष्य अकेला आता है और अकेला जाता है, लेकिन जन्म लेते ही प्रत्येक प्राणी के सम्बन्ध जुड़ जाते हैं। जन्म से मृत्यु तक न जाने कितने रिश्ते बनते हैं और कितने बिछुड़ते हैं। मिलना और बिछुड़ना जीवन का क्रम है, जुड़ना और टूटना सृष्टि का विधान है, दुःख और सुख नियति की रेखायें हैं। किसी को पता नहीं किस क्षण किस पर क्या पहाड़ टूट जाये, क्या मुसीबत आ जाये।

यह ऊपर की मंज़िल का छोटा सा क्वार्टर है। कौन जानता है इस छोटी सी कुटी में कितनी कहानियाँ बनीं और मिटीं? समय की शिला ने कितने चित्र बनाये, क्रूर नियति ने कितनी तस्वीरें मिटा डालीं? कितने आँसू बहे यहाँ, कितनी खुशियाँ जन्म ले ले कर सो गईं? अनोखा इतिहास है इस घर का। इसकी दीवारों में अर्चना के अनेकों दीप जले। कितने ही कलात्मक निर्माणों का प्रकाश फैला यहाँ से। दीपक के सुख-दुःख, उत्थान-पतन और विकास का केन्द्र है यह। इस पवित्र स्थान को अवश्य ही एक दिन तीर्थ की तरह प्रणाम किया जाया करेगा, किन्तु आज तो यह मानव दुःखों की कहानियों से जड़ हो गया है।

यह बोलता नहीं, पर दीपक को इसकी मौन भाषा समझाती रहती है। इसकी दीवारों से जैसे गीत से फूटते हैं, इसके आँगन से स्मृतियों की गंध उड़ती है। इसके वातायनों से कृति के चित्र झाँकते हैं, पक्षियों के संगीत आते हैं। शायद जहाँ कुछ यादें मूर्तिमान होती हैं वहीं से

कलाकार का विकास और राग होता है।

जब मनुष्य का सब से साथ छूट जाता है तो उसमें प्रबल आत्मबल उत्पन्न होता है। दुःखों के चरम से शाश्वत सत्यों के दर्शन होते हैं। सिर्फ सुखों से क्या किसी की तृप्ति हो सकती है! दुःखों में जीवन के दीप होते हैं।

कोई कितना भी ज्ञानी हो, कैसा भी कठोर हो, पर प्रेम की पीर उसे भी अधीर कर ही देती है। जो दुःखों में धीरज धारण कर सकता है वही योगी है, तपस्वी है, महान है। जो विजयी होते हैं वे दूसरों की राह नहीं, अपनी राह चलते हैं। जब तक कोई दूसरों से रास्ता पूछ कर आगे चलता है तब तक वह पग पग पर ठोकर खाकर गिरता पड़ता है। जब कोई साहस करके आगे बढ़ निकलता है तो पीढ़ियाँ उसके पदचिन्हों पर चलने लगती हैं।

यद्यपि दीपक का धीरज आँसुओं में डूब चुका था, पर गुरुदेव के बताये हुए मार्ग, कलजुग के सत्संग, देवकी देवी के प्रेम और जीवन की दुर्घटनाओं ने उसे सम्बल और धीरज दे अडिग बना दिया था। गुरुदेव का पार्थिव शरीर नहीं रहा तो क्या हुआ, उनके प्रवचन तो हैं। देवकी देवी दैहिक नाता तोड़ गईं तो क्या हुआ, उनके प्रेम का पवित्र प्रकाश और अमृत तो है।

दीपक रास्ता बदल कर कर्त्तव्य मार्ग पर डट गये, प्यार की वेदना कर्मों के दीपों में भर ली। अब उनका सबसे बड़ा दोस्त उनका अपना आत्मा था, अपने विचार थे, अपनी दृष्टि थी, अपना सत्य था।

जिस कमरे में देवकी देवी ने देह त्यागी थी उस स्थान पर आँसू बहाती हुई नीरजा से दीपक ने कहा— "दुनिया आँसू की नहीं साहस और कर्म की होती है। रोना बन्द कर दो!"

नीरजा— "कोई रोता नहीं, रुलाया जाता है।"

दीपक— "तो तुम ऐसी मूर्ख क्यों बनती हो जो किसी के रुलाने से रोती हो। बात तो तब है कि जब रोने वाला रुलाने वाले की आँखों में आँसू भर दे। यदि वह नहीं भर सकता तो मौन हो जाये, उसके मौन में भी एक आवाज़ होती है, जिससे धरा तक फट सकती है।"

नीरजा— "नारी की कहानी भी कितनी करुण होती है, उसका रोदन पुरुष की ठोकर तक जा मर जाता है।"

दीपक— "ऐसा नहीं है नीरजा! स्त्री के आँसू में बड़ी शक्ति होती है, वह जब रोती है तो प्रलय हो जाती है, फूटती है तो धरा फट जाती है। सीता का आँसू गिरा था और धरा फट गई थी।"

नीरजा— "वे जगजननी माता सीता थीं, और मैं एक भार हूँ।"

दीपक— "कोई किसी पर भार नहीं होता, फिर तुम तो स्वावलम्बी हो। देवकी देवी मरने से पहले तुम्हें स्वावलम्बी बना गई हैं।"

नीरजा— "वे होतीं तो आज मुझे कोई दुःख न होता, वे नहीं हैं तो आप पर भी कितनी परेशानियाँ आ पड़ीं।"

दीपक— "परेशानियाँ मुझ पर नहीं, तुम पर हैं। तुम जैसी पवित्र ज़िन्दगी पर भी इतना आघात! खैर, कोई बात नहीं। दुनिया में ऐसा ही होता है। विश्वासघात करने वालों की यहाँ कमी नहीं, जो कुछ हुआ उसके लिये पश्चात्ताप मत करो। शायद ऐसी ही होनी थी।"

नीरजा— "लेकिन दुःख तो मुझे यहाँ के सामाजिक नियमों का है, जहाँ पीड़ित के लिये जीना कठिन कर दिया जाता है। देखो तो उन लोगों ने मुझ पर कितने जुल्म किये, सारा सामान रख लिया। क्या सत्य को झूठा करने का नाम ही विवाह है? क्या विवाह एक दूसरा धोखा है?"

दीपक— "नहीं नीरजा! न विवाह धोखा है, और न सभी मनुष्य बुरे होते हैं। यह भी ध्रुव है कि बुराई करने वाला अपने कर्मों का फल अवश्य भोगता है। आदमी चाहे प्रत्यक्ष में अपने पाप छिपाये रखे पर अप्रत्यक्ष में उसका आत्मा उसे अवश्य धिक्कारता है। जो अपने वचनों से फिर जाता है, वह भी कोई मनुष्य है। खैर, घबराओ नहीं। कल तक मैं कहता था कि तुम्हें प्रदीप को हर दशा में निभाना चाहिये, पर आज मुझे लगता है तुमने वह घर छोड़कर अच्छा किया। जहाँ किसी की कोई कीमत न हो, जहाँ प्यार को तिरस्कार से तोला जाये, जहाँ आदर पर निरादर की कटारें चलती हों, जहाँ श्रद्धा को अपमान दिया जाये, वहाँ नहीं रहना चाहिये।"

नीरजा— "शायद आप मुझे सन्तोष देने के लिये ऐसा कह रहे हैं। कल तक तो आप डाँटते थे, फटकारते थे, कहते थे तुमको वहीं जाना चाहिये। जब मैं किसी भी कीमत पर वहाँ न गई, जब मैंने वहाँ जाने की अपेक्षा आत्म-हत्या अच्छी समझी, तब आपकी आँखों से आँसू निकल पड़े।"

दीपक— "वह मेरी आँख का आँसू नहीं, तुम्हारी आँख का आँसू था। भूल जाओ सब, समझो आज ही हमारा संसार में जन्म हुआ है। आज ही हमने संसार में कदम रखा है। कर्म में इतनी व्यस्त हो जाओ कि बीती हुई घटना को सोचने की फुर्सत तक न रहे। देश पर आपत्ति के बादल मँडरा रहे हैं, विदेशियों ने आक्रमण किया है, घर में दुश्मन भरे बैठे हैं, आज व्यक्तिगत ज़िन्दगी के बारे में सोचने की फुर्सत ही नहीं है।"

नीरजा— "मैं कोमल हूँ तो कठोर भी हूँ। अपने देश के लिये तन, मन, धन न्यौछावर करने को प्रस्तुत हूँ।"

दीपक— "भावुकता में कुछ भी कहना सरल है, किन्तु जब

आपत्तियों के पर्वत टूटते हैं, तो कोई बिरला ही ठहरता है। फिर तुम तो दुःख पर दुःख उठाकर क्षीण हो चुकी हो। सोच लो, देशभक्त की ज़िन्दगी अपनी नहीं होती। जो जनता का होता है उसका व्यक्तिगत जीवन काँटों पर रहता है।

नीरजा— "मेरा व्यक्तिगत जीवन रह ही क्या गया है! मेरी आशायें बदल चुकी हैं, उमंगों ने दूसरा रूप धारण कर लिया है। अपने लिये मुझे कुछ नहीं चाहिये, किन्तु देश से भी बड़ा मेरे लिये कुछ है, वह हैं दीपक! जो मुझे दुख-सुख में प्रकाश देते रहे, जो अपने लिये नहीं मेरे लिये जलते रहे हैं।"

दीपक— "क्या तुम्हें तुम्हारी इच्छायें परेशान नहीं करेंगी? क्या तुम जब दूसरों को हँसता देखोगी तो तुम्हारा हँसने को जी नहीं करेगा? क्या तुम लौकिक सुखों की कामनाओं से दूर रह सकोगी? अच्छी तरह सोच लो नीरजा! यह फूलों का पथ नहीं, काँटों का रास्ता है।"

नीरजा— "मेरा निश्चय अटल होता है दीपक बाबू! नीरजा अब बालक नहीं रही। उसके सर से बसन्त भी गुज़रा और पतझड़ भी। उसने गर्मी, सर्दी और बरसात की हवायें देखी हैं।"

दीपक— "नीरजा को उसके शब्दों से सुनकर समझना यद्यपि उचित नहीं है, दीपक उसे भावनाओं से पहचानता है। मैं तुम्हें देखकर गर्व भी करता हूँ, और तुम पर क्रूर नियति की अनीति देख कभी कभी परेशान भी हो जाता हूँ। हमने जीवन में बहुत सी परीक्षायें दी हैं, दुःख सुख उठाये हैं, ज़िन्दगी से जूझे हैं, समाज से संघर्ष लिये हैं पर अब एक ऐसे दुश्मन से मुकाबला है जिसके कानों तक शब्द की आवाज़ नहीं पहुँचती, जो सिर्फ तलवारों के शब्द सुनता है, जिसे समझाने के लिये तोपों के तुमुल स्वर चाहियें। वह दीपक की रोशनी नहीं, मशीन की आग देखता है। देश में एक आग चाहिये।"

नीरजा— "मुझे बताइये क्या करूँ ?"

दीपक— "तुम स्वयं बताओ कि तुम क्या करना चाहती हो, क्या कर सकती हो !"

नीरजा— "सेना में भरती हो जाऊँ ?"

दीपक— "किस लिये ?"

नीरजा— "ईंट का उत्तर पत्थर से देने के लिये, बन्दूक का जवाब बन्दूक से देने के लिये।"

दीपक— "नीरजा! लड़ाई केवल तलवार से नहीं जीती जाया करती। युद्ध में विजय पाने के लिये शस्त्र-बल से अधिक बुद्धि-बल की ज़रूरत है। दुश्मन की जीत इसलिये होती है कि वह रणनीति में कुशल है, उसका हर सैनिक लड़ाई के नक्शे से परिचित है। और हम नहीं जानते कि वह कैसे लड़ता है।"

नीरजा— "यदि फौज में भरती हो जाऊँ तो इसका पता मैं लगा सकती हूँ कि दुश्मन कैसे लड़ता है।"

दीपक— "जितनी आसानी से तुमने कह दिया, कार्य उतना सरल नहीं है।"

नीरजा— "जो कार्य शुरू करने से पहले ही कठिनाई का विचार करते हैं वे तो पहले ही कदम पर हार मान लेते हैं। मैं सच कहती हूँ कि मुझे अब कोई दुःख नहीं। यह अवश्य चाहती हूँ कि ज़िन्दगी जिस देश की मिट्टी में खेल कर बनी है वह उसके काम में आ जाये।"

दीपक— "जान पड़ता है कि ईश्वर तुम्हारी कोई बड़ी परीक्षा लेना चाहता है। चलो, मैं और तुम दोनों ही करने या मरने चलते हैं, या तो इस आग में जल जायेंगे या धरती पर मानवता की महक उड़ती अनुभव करेंगे।"

ज़िन्दगी में न जाने कितने मोड़ आते हैं। हर पथ आग का पथ होता है। पर कहा नहीं जा सकता कि मानव की ज़िन्दगी का कौनसा रास्ता सबसे उज्ज्वल होता है। इतना ही कहा जा सकता है कि जितने कष्टों के काँटों में जिनके जीवन के सुमन खिलते हैं उनको उतना ही गौरव, उतना ही अधिक सौरभ प्राप्त होता है। सुबह होती है, दोपहर आती है और शाम भी बीत जाती है। ज़िन्दगी के क्षण भी ऐसे ही धूप-छाँह में चलते ढलते रहते हैं। हवा की तरह बचपन बीत जाता है, जवानी खत्म हो जाती है, बुढ़ापा चला जाता है। इसी तरह सुबह से शाम, शाम से सुबह होती रहती है।

देश की सीमाओं पर आग दहक रही थी। दुश्मन तेज़ी से आगे बढ़ता चला जा रहा था। नीरजा और दीपक के मन में भी देश-प्रेम की ज्वाला धधक रही थी। एक दिन दोनों ही सेनाध्यक्ष के पास जा पहुँचे।

सेनाध्यक्ष बहुत व्यस्त थे। उनके माथे पर चिन्ता की रेखायें थीं किन्तु नरवस नहीं थे। दोनों को देखते ही बोले— "हाँ, कहिये।"

दीपक से पहले नीरजा ने कहा— "मेरे देश पर भीषण संकट है, दुश्मन ने आक्रमण किया है। मैं सेना में भरती होकर देशसेवा किया चाहती हूँ।"

सेनाध्यक्ष ने नीरजा को ऊपर से नीचे तक देखा। उस पतली दुबली सुन्दर नवयुवती का उत्साह देख वह प्रसन्न हुआ। पर अपने किसी भी भाव को उसने चेहरे पर न आने दिया। लापरवाही से कहा— "सेना में बहुत मज़बूत आदमी की ज़रूरत है। तुम वहाँ क्या करोगी?"

नीरजा— "मैं शरीर से नहीं, बुद्धि से लड़ने के लिये सेना में भरती होना चाहती हूँ। मुझे आप दुश्मन की रणनीति जानने के लिये रख लीजिये।"

सेनाध्यक्ष ने नीरजा की ओर ग़ौर से देखा, फिर बोला— "यदि मैं तुम्हें रख भी लूँ तो तुम इस काम को कैसे पूरा करोगी ?"

नीरजा— "मुझे उन दुश्मन घायल अफसरों के बीच छोड़ दीजिये जिनको हमारी सेना ने गिरफ्तार कर लिया है। जो हमारे अस्पतालों में पड़े है, उन युद्ध में घायल शत्रुओं की सेवा का काम चाहती हूँ मैं।"

सेनाध्यक्ष मुस्कराये और कुछ भी परीक्षा लिये बिना ही उन्होंने नीरजा की बात मान ली। फिर दीपक की तरफ़ देखते हुए बोले— "क्या आप भी सेना में भरती होना चाहते हैं ?"

दीपक— "नहीं, मैं शब्दों से देश की सेवा करना चाहता हूँ। तलवार को वह रक्त देना चाहता हूँ जिससे हिंसा की हार हो जाये। देश की रक्षा के लिये जन जन में वह भाव भरने को आकुल हूँ, जिससे प्रत्येक अपना तन मन धन देश के चरणों में अर्पित कर दे।"

सेनाध्यक्ष— "समझा, तुम कलाकार जान पड़ते हो।"

नीरजा— "हाँ, ये कवि हैं, इनकी आवाज़ में अद्‌भुत शक्ति है।"

सेनाध्यक्ष— "किन्तु कलाकार ! यह वह दुश्मन नहीं है जो शब्द की भाषा समझता हो। इस शैतान को सिर्फ तलवार की भाषा समझ में आती है। यह सिर्फ वह शब्द सुनता है जो इसकी गर्दन पर हुए वार से निकलता है।"

दीपक— "ठीक है, दुश्मन चाहे शब्द की भाषा न समझता हो लेकिन मेरा देश शब्द की पुकार पर जान देने को तैयार हो सकता है। मैं गा गा कर देश को एक नहीं, लाख लाख नीरजा दूँगा, कोटि कोटि सेनानी दूँगा, युद्ध के मैदान में जो सैनिक लड़ता है उसके लिये रोटी दूँगा, कपड़ा दूँगा, बन्दूकें दूँगा, सड़कें दूँगा। मैं गाऊँगा, कारखानों की मशीनों के साथ, नदियों पर बँधते हुए बाँधों की ध्वनि में, पहाड़ों को

चीर कर बनती हुई सड़कों के किनारे पर। और अपने देश के लिये लड़ते हुए सैनिकों की उन बन्दूकों के साथ जो दुश्मनों की छाती पर मौत बन कर बरस रही होंगी।"

सेनाध्यक्ष— "यदि ऐसा है तो गाओ। आगे बढ़ते हुए सैनिक के श्वासों के गीत बन कर गली गली में फूट पड़ो। मोर्चे पर लड़ने वाले सिपाही को बल दो। वे सब साधन उपलब्ध करो जिनकी लड़ाई के लिये ज़रूरत है।"

दीपक— "सीमा पर जो जवान लड़ता है उसके पीछे कर्मयोगियों की एक बड़ी पंक्ति की आवश्यकता रहती है। मोर्चे पर लड़ने वाले एक सैनिक के साथ सौ सौ सिपाहियों की ज़रूरत है। जब तक शत्रुओं को खदेड़ कर हमारा देश सुरक्षित नहीं हो जायेगा, तब तक दीपक को शान्ति नहीं मिलेगी, तब तक उसका स्वर शंखध्वनि सा दिशा दिशा में गूंजता रहेगा।"

सेनाध्यक्ष— "विजय के लिये तुम्हारी इच्छा और प्रयत्न से मैं गद्-गद् हो गया। तुम गाओ, हमारे सैनिकों के साहस के लिये गाओ। घायल जवानों के धीरज के लिये गाओ। युद्ध में शहीद हुए वीरों के परिवारों में प्राण बन कर गाओ। देखना गान के स्वर धीमे न पड़ने पायें। जब जब भी तलवारों की झन्कार मन्द होने लगे तब तब ही तुम उनमें बिजली बन कर कौंधते रहना।"

और फिर नीरजा की तरफ देखते हुए कहा— "हाँ, तो तुम्हें तुम्हारी इच्छानुसार घायल शत्रुओं के अस्पताल में भेजे देते हैं। होशियार! भेद लेकर आना। तुम्हें मातृभूमि की शपथ है, अपने देश का तनिक भी रहस्य न देना।"

नीरजा और दीपक ने एक ही साथ कहा— "हम जान दे देंगे, आन नहीं देंगे।"

२१

अस्पताल में कलजुग के दोनों हाथ काट दिये गये। एक टाँग घुटने के नीचे से काट दी गई। उसका एक तरफ का गाल झुलस कर स्याह पड़ गया था। सारी आकृति इतनी बदल चुकी थी कि उसे पहचानना तो दूर रहा, उसे देखना भी मुश्किल था।

सेनाध्यक्ष के साथ मेजर उसे देखने आये। ऑपरेशन करने वाली डॉक्टर उनके साथ थी। पर कलजुग अभी होश में नहीं थे। डाक्टर ने कलजुग की तरफ देखते हुए सेनाध्यक्ष से कहा— "यह जवान बेजोड़ बहादुर है। इतने दिन सैनिक अस्पताल में काम करते हुए मैंने ऐसा लोहे का इन्सान दूसरा नहीं देखा। ऑपरेशन करते वक्त जब मैंने क्लोरोफार्म देने की चेष्टा की तो बोला, जो कुछ काटना है वैसे ही काट लो, मैं चूं तक नहीं करूँगा। फिर भी हमने बेहोश तो किया, पर जब तक यह होश में रहा इसने चूं तक नहीं की। बदन में घाव ही घाव थे, पर इसे जैसे कोई तकलीफ ही नहीं थी।"

डाक्टर की हाँ में हाँ मिलाते हुए मेजर ने आश्चर्य से कहा— "डाक्टर सच कहती हैं। अपनी जिन्दगी में मैंने सेना में ऐसा दिलेर जवान कोई नहीं पाया। जिस मोर्चे को इसने जीता है, यदि वह न जीता होता तो आज न हम होते, न हमारा देश। धन्य है वीरवर कलजुग! अकेले ने वह काम किया है कि दुश्मन के छक्के छूट चुके हैं। कलजुग के हथगोलों की मार खाकर जितने आये थे सब राख हो गये।

जो कोई बचकर भाग भी निकला उसने फिर इधर मुड़ कर नहीं देखा। हम तो आक्रमण से बेखबर थे। यह आश्चर्य की बात है कि सीमा पर तैनात कलजुग ने दुश्मन के वहाँ होने का पता कैसे लगाया और फिर आग्रह करके कुल दस जवानों को साथ ले उस रास्ते से पहाड़ पर चढ़ गया, जिस रास्ते से हवा का जाना भी असम्भव है। उस चिकने, सीधे, बर्फीले पहाड़ पर चढ़ना कलजुग का ही काम था। इधर खाई, उधर नदी, नीचे पत्थर, ऊपर दुश्मन! वाह! कलजुग ने कमाल किया है।"

सेनाध्यक्ष ने कलजुग को प्रशंसा करते हुए देखा। कलजुग के सारे अंग भंग हो चुके थे। उसकी तरफ देखकर सेनाध्यक्ष की आँखें छलछला आईं।

उन्होंने कहा— "भारत के वीर सैनिकों के इतिहास में कलजुग का चरित्र अमर है। इस वीर को महावीर चक्र भेंट किया जायेगा। और इसको आजीवन लेफ्टीनेंट के रैंक की पेन्शन मिलती रहेगी। पुरस्कार-स्वरूप कलजुग को दस हज़ार रुपये और दिये जायें।"

यह सब कहा जा रहा था पर कलजुग कुछ नहीं सुन रहा था। वह बेहोश था। डाक्टर की तरफ देखकर सेनाध्यक्ष ने पूछा— "कलजुग कब तक होश में आ जायेंगे डाक्टर!"

डाक्टर— "कह नहीं सकती, बराबर प्रयत्न कर रही हूँ, फिर भी होश में आने के कोई आसार नहीं हैं।"

सेनाध्यक्ष ने रुँधे कण्ठ से कहा— "पर यह होश में आ तो जायेगा?"

डाक्टर— "हो सकता है न भी आये।"

सेनाध्यक्ष— "इसके परिवार में से कोई आया।"

डाक्टर— "नहीं, अभी तक कोई नहीं आया।"

सेनाध्यक्ष ने मेजर की ओर देखते हुए कहा— "इसके घर खबर तो भेज दी है न ?"

मेजर ने रुमाल से अपनी आँख का आँसू पोंछते हुए कहा— "जो पता इसने लिखवाया था उस पर तो खबर भेज दी है।"

सेनाध्यक्ष— "क्या पता लिखवाया था इसने ?"

मेजर— "सूरजकुंड, मेरठ, उत्तर प्रदेश।"

सेनाध्यक्ष ने चौंककर कहा— "मैं तो मेरठ में कर्नल रह चुका हूँ। सूरजकुंड भी गया था, वहाँ तो केवल श्मशान है।"

मेजर— "हाँ, कलजुग कहा तो करता था मेरा घर श्मशान में है।"

सेनाध्यक्ष— "तो वहाँ किसी को भेजकर पता करवाना।"

और फिर डाक्टर से कहा— "कलजुग जैसे ही होश में आये, यह जो कुछ कहे इसका बयान लिख लेना। मेजर रणेन्द्र ! जब तक कलजुग होश में न आये तुम भी यहीं ठहरना। कलजुग के होश में आने पर उसकी इच्छा जान लेना और उसको दिया हुआ पुरस्कार उसे बता देना।"

सेनाध्यक्ष चले गये। डाक्टर कलजुग को होश में लाने का प्रयत्न करने लगी। काफी रात हो गई पर कलजुग होश में न आया। डाक्टर ने मेजर से कहा— "आप बराबर के कमरे में आराम करिये। पेशेन्ट जब होश में आयेगा मैं आपको बुला लूँगी।"

मेजर चले गये। पर डाक्टर की आँखों में नींद नहीं थी, जान पड़ता था उसने सारी जिन्दगी न सोने का अभ्यास कर लिया था, एकटक मरीज़ की ओर देखती हुई होश में लाने का प्रयत्न करती रही। बहुत देर बाद मरीज ने पलकें फड़फड़ाईं। एक बार ज़रा सी आँखें खुलीं।

वह कुछ बेहोशी सी ही में बोल उठा— "दीपक !" फिर तनिक ज़ोर से कहा— 'दीपक !' और फिर और ज़ोर से कहा— 'दीपक !' तथा फिर हल्के से मुस्कराया, बोला— "दीपक, मैं जा रहा हूँ।"

दीपक का नाम सुनते ही डाक्टर चौंकी, वह चमत्कृत हो कलजुग की तरफ देखती हुई बोली— "घबराओ नहीं, तुम ठीक हो, सुरक्षित हो।"

कलजुग के शरीर में यद्यपि रक्त बिल्कुल नहीं रहा था, फिर भी उसमें साहस था। तनिक चेतना आते ही बोला— "मैं ठीक हूँ, हमेशा ठीक रहा हूँ, घबराया तो ज़िन्दगी में कभी भी नहीं। सदा सुरक्षित ही रहा हूँ। डाक्टर ! तुमने मेरी बड़ी सेवा की है। मैं देख रहा हूँ मैं जब से अस्पताल में आया हूँ तुम रात दिन मुझ में ही लगी रहती हो।"

डाक्टर— "तुमने देश के लिये इतनी बड़ी कुर्बानी की है कि उस पर मेरे जैसी एक नहीं अनेक डाक्टर शहीद हो जायें तो भी कम हैं। तुम होश में तो हो, तुम को कुछ खुशखबरियाँ सुनानी हैं। पर उससे पहले तुम यह बताओ कि दीपक, दीपक किसको पुकार रहे थे ?"

कलजुग— "उसे जिसे मैं अपना दोस्त मानता हूँ। अपना ही नहीं धरती भर का दोस्त मानता हूँ।"

डाक्टर— "कौन है वह, कहाँ रहता है ?"

कलजुग— "वह कवि है। पहले कहीं रहा करता था, अब उसके रहने का कोई ठिकाना नहीं, हर घर उसका घर है और हर आँसू उसका आँसू।"

कलजुग के बयान से डाक्टर उद्विग्न होती जा रही थी। उसकी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। उसने कहा— "कैसी शक्ल है उसकी ?"

कलजुग— "शक्ल कैसी होती हैं, अच्छी शक्ल है। उसकी शक्ल में

सबसे बड़ी बात यह है कि उसका हृदय उसके मुख पर प्रतिबिम्बित रहता है।"

सुनकर डाक्टर घृणा से मुस्कराई और बोली— "मैं जानती हूँ उस पापी को!"

सुनते ही कलजुग को रोष आ गया। उसने डाक्टर पर टूटने के लिये दोनों हाथ उठाने की चेष्टा की पर लाचार हो गया। वह कड़क कर बोला, "यदि मेरे हाथ साबुत होते तो मैं तुम्हारा गला घोंट देता।"

डाक्टर— "यदि तुम्हारे हाथ साबुत होते तो मेरा नहीं, दीपक का ही गला घोंट देते। खैर, छोड़ो ये बातें। तुम्हारी वीरता पर तुम्हें महावीर चक्र मिला है। दस हज़ार रुपये पुरस्कार मिले हैं। तुम्हें आजीवन लेफ्टिनेंट के रैंक की पेन्शन मिलती रहेगी।"

कलजुग— "अपना तो काम पूरा हो चुका। घावों की पीड़ा सहने के लिये कुछ देर जिन्दा हैं। हमें जो कुछ मिला है वह सब हमारे दोस्त दीपक को दे दिया जाये।"

डाक्टर— "ठहरो! बराबर के कमरे में तुम्हारे अफसर मेजर तुम्हारा बयान लेने के लिये आये हुए हैं। मैं उनको बुलाती हूँ।"

कहते हुए डाक्टर ने मेजर को बुलाया। मेजर ने आते ही कहा— "खूब, कलजुग, खूब! तुमने बड़ी वीरता का काम किया। सेनाध्यक्ष ने प्रसन्न होकर तुम्हें महावीर चक्र प्रदान किया है। तुम्हें दस हज़ार रुपये इनाम मिलेंगे। आजीवन लेफ्टिनेंट के रैंक की पेन्शन मिलती रहेगी। और बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है?"

कलजुग— "यह सब मैं सुन चुका हूँ मेजर साहब! मेरी कोई इच्छा नहीं, सिर्फ एक ही इच्छा है कि जो कुछ आपने मुझे दिया है वह सब मेरे दोस्त दीपक को दे दें और यदि हो सके तो मेरी लाश मेरे

निवास सूरजकुंड के श्मशान में ही जलाई जाये। यह क्या, मेजर साहब! आपकी आँखों में आँसू! मुझे हँसी आती है, मनुष्य को रोना कभी नहीं चाहिये। रोने वाला कायर होता है। मैं यह भी नहीं चाहता कि मेरे मरने पर कोई भी रोये। रोने वाला मेरी लाश को हाथ न लगाये।"

रुमाल से आँख पोंछ बयान ले मेजर चले गये। उन्होंने जाकर सेनाध्यक्ष को कलजुग की विल सुना दी। सुन कर सेनाध्यक्ष कल का कोई चित्र सा देखने लगे। उन्होंने कुछ सोचते हुए कहा— "मेजर रणेन्द्र! दीपक मेरे पास भी आये थे, वह कोई अद्भुत कलाकार है। उसके साथ नीरजा नामक कोई एक साहसी नवयुवती भी आई थी। वह हमारी ओर से दुश्मन की रणनीति का पता लगाने के लिये नियुक्त कर दी गई है। और दीपक मोर्चों पर घूम घूम कर युद्ध की घटना का अध्ययन कर काव्य रचना में लगे हैं। वहाँ वे जवानों को काव्य सुना सुनाकर करने या मरने की प्रेरणा भी देते हैं। खैर, ठीक है, कलजुग की विल के अनुसार हम से हस्ताक्षर करा लेना। और तुमको कल उत्तरी सीमा की कमान सम्भालनी है। गुप्तचरों से सूचना मिली है कि दुश्मन इसी सप्ताह में बहुत बड़ी सेना लेकर हमला करने वाला है। सुना है हम पर कोई प्रलय का समुद्र टूटने वाला है। किन्तु कोई बात नहीं, अगस्त्य ऋषि की सन्तान हैं, एक घूँट में सारा समुद्र पी जायेंगे।"

तभी सेनाध्यक्ष के प्राइवेट सेक्रेटरी ने अभिवादन करते हुए प्रवेश किया। आते ही कहा— "अभी अभी एक साधु आया है, आपके दर्शन करना चाहता है। मैंने आपकी व्यस्तता बताई। पर उसने पाँच मिनट आपसे मिलने के लिये अत्यधिक आग्रह करते हुए चाही हैं।"

सेनाध्यक्ष ने मिलने की आज्ञा दे दी। साधु ने अपने दोनों कंधों पर लटके हुए दो बड़े बड़े झोलों के साथ प्रवेश किया। नमस्कार करने के बाद कहा— "मेरे पास कुछ धन है। मैं उसे राष्ट्रीय रक्षा कोष में देना

चाहता हूँ। आशा है आप स्वीकार करने की कृपा करेंगे।"

सेनाध्यक्ष ने साधु को ऊपर से नीचे तक देखते हुए कहा— "धन्यवाद आपका।"

साधु ने अपने दोनों थैले सेनाध्यक्ष के सामने खोल दिये। सेनाध्यक्ष की आँखें चौंधिया गई। सोने, हीरे, जवाहरातों के बहुमूल्य जेवर थे। मेजर रणेन्द्र भी यह कीमती निधि देख आश्चर्य में रह गये। बोले— "एक करोड़ रुपये से कम का माल नहीं जान पड़ता।"

सेनाध्यक्ष ने भी हाँ में हाँ मिलाई और साधु से कहा— "महाराज बड़ी कृपा की आपने देश पर। किन्तु क्या इतना बताने का कष्ट करेंगे, कि सन्यासी के पास इतना धन कहाँ से आया।"

साधु ने उत्तर दिया— "मैं साधु नहीं था, आज ही साधु बना हूँ।"

सेनाध्यक्ष की उत्सुकता और भी बढ़ी, उसने फिर पूछा— "यह एक दम वैराग्य क्यों जागा ?"

साधु ने उत्तर दिया— "मैंने एक पत्र में अपने एक मित्र की कविता पढ़ी, देश पर संकट देखा, लगा यदि किसी का धन उसके देश के काम न आये तो उसका होना न होना एक सा है। बल्कि वह तो देश के पैरों में सोने की ज़ंजीरों की तरह है। इस विचार की समीक्षा करता हुआ मैं अपने उस मित्र के घर आया जिसने देश के चरणों में सब कुछ देने की प्रेरणाप्रद कविता लिखी थी। देखा उसका घर, घर खुला था, पर घर में कोई न था, सिर्फ कलम दवात और कुछ कविताओं की कापियाँ पड़ी थीं। पड़ौसियों से पूछा तो पता चला, जब से देवकी देवी मरी हैं दीपक यहाँ महीने दो महीने में कभी आते हैं और अब तो काफी दिन से नहीं आये। जब गये थे, कह गये थे सोये हुए शेरों को जगाने जा रहा हूँ, देश के बुझे हुए दीपकों में स्नेह भर भर जलाने जाता हूँ।

पड़ौसियों के यह पूछने पर कि कब लौटोगे तो उसने कहा, कुछ पता नहीं। यदि न आऊँ तो यह मेरा अन्तिम नमस्कार मान लेना।"

कहते हुए साधु की आँखों से आँसू निकल पड़े। सेनाध्यक्ष ने धीरज देते हुए कहा— "साधु को रोना नहीं चाहिए।"

साधु ने आँसू पोंछे और कहा— "मुझे जीवन में कभी किसी से मोह नहीं हुआ, सिर्फ दीपक बाबू से मोह था। उनकी रचनायें अवश्य पढ़ता हूँ पर उनका पता नहीं चलता कहाँ हैं।"

सेनाध्यक्ष ने हँसते हुए कहा— "घबराओ नहीं महाराज! हम जानते हैं दीपक कहाँ हैं। वे उत्तरी सीमा पर युद्ध सम्बन्धी घटनाओं को देख देख कर काव्य रचना में लगे हैं।"

साधु— "क्या सच? तो आप मुझ पर इतना उपकार कर दीजिये कि मुझे उनके पास पहुँचा दीजिये। और हाँ, मेरे पास यह एक अंगूठी और है, यह मेरे लिये सब से अधिक प्रिय है। पर मुझे अपने देश से इससे भी अधिक मोह है। इसे भी राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में स्वीकार करें।"

सेनाध्यक्ष ने मेजर को आज्ञा दी— "महाराज को उत्तरी सीमा पर दीपक से मिलवा देना।"

तभी सूचना मिली कि उत्तरी सीमाओं पर दुश्मन ने अनगिनत सेना से हमला कर दिया है। हम उस मोर्चे पर दो दिन से अधिक नहीं लड़ सकते, पीछे हटना पड़ेगा।

सूचना सुनकर मेजर रणेन्द्र ने तुरन्त उस मोर्चे पर जाने की आज्ञा चाही। साथ ही यह भी कहा कि हमको तुरन्त पीछे हट जाना चाहिये। दुश्मन को नीचे के हिस्से में घेर चारों ओर से गोले चलाकर हम उनको रोक सकते हैं।

सेनाध्यक्ष ने सोचते हुए कहा— "आग इतनी धधक चुकी है कि

उसे बुझाने के लिये हमें शायद आकाश से आग बरसानी पड़े। इन खूनी भेड़ियों को समाप्त करने के लिये हमें जहाँ से भी जो मदद मिलेगी, लेंगे। धन्यवाद है अमेरिका और इंगलैंड का जो हमें भारी संख्या में अस्त्र-शस्त्रों की सहायता दे रहे हैं।"

मेजर— "किन्तु पता नहीं उनकी रणनीति क्या है। परसों उस मोर्चे पर वे हमारी सेना को बीच में घेर रास्ता काट कर आगे बढ़ गये।"

सेनाध्यक्ष— "मेजर रणेन्द्र! उनकी रणनीति उनका अपने देश के प्रति प्यार है, उनकी बलिदान की भावना है। वे साम्राज्यवादी अपनी राज्य-वृद्धि के लिये अपने जवानों को आग में झोंकना जानते हैं, और हम अपने देश के प्रति वफादारी का दम तो अधिक भरते हैं, पर स्वार्थ छोड़ने को बहुत कम तैयार होते हैं। हम ज़बान से ज़्यादा लड़ते हैं वे हाथों से ज़्यादा लड़ते हैं। अफसोस कि हमने जो कम्बल, जो वस्त्र, जो सामान मोर्चों पर लड़ने वाले जवानों के लिये भेजा वह उन तक न पहुँच कलकत्ते के बाज़ारों में बिक गया। यह पराक्रमी देश जब भी पराजित हुआ है, अपनों की गद्दारी के फलस्वरूप ही इसने मात खाई है। हम सोना रखकर देश की ज़मीन बेचने को तैयार हो सकते हैं। अब यह बात नहीं चलेगी।"

साधु को सेनाध्यक्ष की यह बात चुभी। उसने कहा— "क्षमा करें, कुछ स्वार्थियों के कारण सभी को लांच्छित कैसे किया जा सकता है। इस देश में तो भामाशाह जैसे भी हुए हैं।"

सेनाध्यक्ष— "सत्य कहते हैं महाराज! आज भी भामाशाह की तो कमी नहीं, किन्तु एक भामाशाह से महाराणा प्रताप अकबर से कितने दिन लड़ पाये! देश की स्वतन्त्रता की रक्षा में सर्वस्व समर्पण की आवश्यकता है।"

तभी युद्ध में गये एक सैनिक की पत्नी ने प्रवेश करते हुए कहा—"यह सुहाग का टीका बन्दूक की गोली खरीदने के लिये स्वीकार करें। मेरे स्वामी युद्धभूमि में दुश्मनों से लड़ रहे हैं। उनकी बन्दूक में गोली की कमी न रह जाये।"

३२

बड़े बड़े निर्माण प्रलय की लहरों में पल भर में लीन हो जाते हैं। जब बाढ़ आती है तो सब कुछ बह जाता है। भूचाल का एक ही झोंका बड़ी बड़ी रचनाओं को धूल-धूसरित कर देता है। ध्वंस की क्रीड़ा बड़ी भीषण होती है। मनुष्य भी कैसा विचित्र है। वह कभी घोर परिश्रम से बड़ी बड़ी अट्टालिकायें और विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाता है और कभी मोर तोर की भावना से सब कुछ मिटा डालता है।

युद्ध मनुष्य की ईर्ष्या भावना का प्रचण्ड रूप है। साम्राज्यवादी इच्छाओं का कुत्सित रूप है। विजय की आकांक्षा का मीठा ज़हर है। युद्ध की भीषण ज्वाला में मानव जाति की सृष्टि जल-भुन कर राख हो जाती है। जब क्रोधानल से धधकता हुआ मनुष्य आक्रमण पर आक्रमण करता है तो न जाने कितने ताजमहल, कितनी चीन की दीवारें, कितने बैल्जियम के किले और कितने धरती के सौन्दर्य नष्ट हो जाते हैं। धरती से पूछो, मानव ने तुझ पर कितने अपराध किये हैं, कितनी बार तुझे श्मशानों में बदला है, कितनी बार तुझे जल-प्लावन में डुबाया है! धरती पर मानव की निर्मिति श्लाघ्य है तो उसकी क्षति भी अक्षम्य है।

शक्ति के मद में अन्धा यह नहीं सोचता कि जुल्म सहने वाला अत्याचार सह सह कर उससे अधिक शक्तिशाली भी बन जाता है। बल का नशा भी कितना मादक होता है। वह और तो और अपनों की भी बलि देता बढ़ता जाता है। हिमालय की ये शुभ्र पंक्तियाँ जिनसे उड़ उड़

कर शीतल पवन सृष्टि में प्राण भरता है। जिस पर भोर की स्वर्णिम किरणें नृत्य करती हैं। संध्या की सतरंगी आभा आनन्द उँडेलती है। जो स्थान ऋषियों की तपस्या का कहा जाता है। स्वर्ग के इस पथ पर आक्रान्ताओं ने युद्ध की अग्नि धधका दी है।

कन्धों पर बन्दूकें, साथ में आग उगलने वाली तोपें, और मन में प्राण लेने की कामना में मदान्ध इन फौजियों को देख, इन पर दया आती है, तरस आता है इन पर। ये जान देने और जान लेने पर तुले हैं। और उधर उन स्त्रियों और बच्चों को देखो जो इनके इस कर्म से अनाथ हो जायेंगे। इनका खून बहेगा और उधर वे माँगों के सिन्दूर पूँछेंगी। आग आग से नहीं बुझा करती। आज कोई एक तमाचा मार सकता है तो कल दूसरा दो तमाचे भी लगा सकता है। युद्ध से प्रश्नों को हल करने वाले क्या नहीं जानते कि यह रास्ता ग़लत है। शान्ति-पूर्ण उपायों से ही समस्याओं का हल सम्भव होता है।

एक तरफ हिमालय के क्षेत्रों में फौजी मार्च हो रहा है, दूसरी ओर दीपक इन पहाड़ों में घूम घूम कर युद्ध के दृश्य देख रहा है। उसके कन्धे पर बन्दूक नहीं थी। उसके पास अपने अतिरिक्त किसी की मदद नहीं थी। वह देखता था, सोचता था और कुछ निष्कर्ष निकालता था। वह तब भी घूमता था जब रात का अँधेरा फौजी पैरों की ध्वनि मन्द कर देता था। लाशों और घायलों से भरे रास्ते में दीपक चला जा रहा था। कुछ दूर जाने के बाद उसने एक पहाड़ी पर बसी जली हुई बस्ती देखी। सब कुछ स्वाहा हो चुका था। एक अधजले घर में से किसी शिशु के रोने की ध्वनि सुनाई दी। दीपक दौड़ कर उस घर में पहुँचा। जली हुई माँ से चिपटा कुछ जला एक बालक तड़प रहा था। दीपक ने उसे उठाया। जैसे ही दीपक ने बालक को उठाया वैसे ही उस जली हुई माँ ने चीख कर कहा— "नहीं नहीं, इसे न मारो। मेरा सतीत्व तो लूट

लिया। सब कुछ समाप्त कर डाला। इस बालक पर दया करो।"

दीपक का कण्ठ भर आया। उसने रुँधे कण्ठ से कहा— "घबराओ नहीं, हम दुश्मन नहीं दोस्त हैं।"

उस जली हुई देह से उत्तर निकला— "नहीं, नहीं, हमारा कोई दोस्त नहीं, सब दुश्मन हैं। मुझे दुनिया में सबसे डर लगता है। वे फौजी कितने भयानक थे, बिल्कुल निर्दयी। मेरे पति को मार कर उनका मांस खा गये।

"मैं भी वहीं जाती हूँ। किसी में ताकत हो तो उन राक्षसों से इन अत्याचारों का बदला ले।" कहते ही उस जली देह का स्वर समाप्त हो गया। और दीपक की गोद से बालक भी निर्जीव होकर उस शव पर गिर पड़ा।

यह भीषण विभीषिका देख दीपक कह उठा— "मैं समझता था मुझ पर ही दुःख टूटे हैं, किन्तु दुनिया में किसी का भी दुःख सबसे बड़ा दुःख नहीं। मनुष्य कितना स्वार्थी है, कितना निर्दयी है, कितना मदान्ध है! इन निरीह नागरिकों पर ये अत्याचार! क्या इसीलिये राज्य-व्यवस्था बनती हैं!"

दीपक उन राख के ढेरों से बाहर निकले। आगे जिधर पग जाता था, उधर ही शव बिछे थे। कुछ आगे बढ़े तो उन्होंने देखा कि कोई घायल अफसर बड़ी दिक्कत से चींटी की तरह रेंगता हुआ आ रहा है। पास आने पर दीपक ने धुंधली सी चाँदनी में देखा कि वह लहू में लथपथ है। उसका एक तरफ़ का गाल और कान नष्ट हो चुका है। नाक प्रायः सारी ही गायब है।

पास पहुँच कर दीपक ने कहा— "मैं आपकी मदद को हाजिर हूँ।"

घायल लेफ्टिनेंट ने उत्तर दिया— "अब किसी की भी मदद मेरी

ज़िन्दगी तो नहीं बचा सकती, लेकिन जब तक तन में श्वास हैं तब तक मौत से भी लड़ना सैनिक का धर्म है। यहाँ से करीब दो सौ गज़ की दूरी पर हमारा फौजी कैम्प है, किसी तरह वहाँ पहुँचना चाहता हूँ। मुझे प्यास बहुत लगी है क्या ज़रा सा पानी पिला सकते हो?"

दीपक ने सामने की ओर बहते हुए एक स्रोत की ओर देखते हुए कहा— "हाँ, क्यों नहीं।"

और फिर लेफ्टिनेंट को अपनी भुजाओं में उठा पानी के उस स्रोत की ओर ले गये। स्रोत के पास लेफ्टिनेंट का सर अपनी जाँघ पर रख दीपक ने स्रोत से अपनी अंजलि में पानी भरा और लेफ्टिनेंट के ओठों से लगाया।

जैसे ही लेफ्टिनेंट पानी पीने को हुआ वैसे ही पीछे से किसी गोरखा सैनिक ने उसे खींच लिया।

दीपक ने आश्चर्य से उसे देखा और यह कहना ही चाहा कि भाई पानी तो पी लेने दो; पर उस सैनिक ने दीपक का मुँह एक हाथ से बंद कर दिया। लेफ्टिनेंट गोरखा सैनिक के इस संकेत को पहचानता था। वह उसी की बटालियन का एक सैनिक था। अपने अफसर की लाश को खोजता फिर रहा था और देखता फिर रहा था दुश्मनों को। उसे जहाँ कोई अकेला दुकेला या कोई अधमरा शत्रु दिखाई देता वहीं वह उसे बन्दूक की किरच से मार देता था।

वह सैनिक लेफ्टिनेंट को अपने कंधे पर उठा अपने शिविर में ले गया। दीपक कुछ क्षणों तक वहीं खड़े सोचते रह गये। वे भी बहुत थक चुके थे। प्यास भी लग रही थी। स्रोत के पास बैठ गये। अंजलि भर कर पानी पीने लगे। पहली ही घूंट भरी थी कि एक गोली आकर धाँय से उनके बाँये हाथ में लगी। एक दूसरी गोली बगल से निकल

गई। और कुछ क्षणों बाद ही दीपक ने देखा कि बन्दूकधारी दुश्मन उन्हें घेरे खड़े हैं।

एक ने दीपक के सीने पर पिस्तौल तानते हुए कहा— "कौन है तू?"

दीपक— "कवि हूँ।"

दुश्मन— "झूठ बोलता है, तुम कोई जासूस जान पड़ता है।"

दीपक— "हम भारतीय झूठ बोलना नहीं जानते।"

दुश्मन— "यहाँ क्या करता था?"

दीपक— "युद्ध के दृश्य देख रहा था, देख रहा था तुम्हारी बन्दूकों की करतूतें।"

दुश्मन— "तुम बिल्कुल झूठा है, तुम्हारे सारे बदन में खून लगा है, तुम्हारे कपड़े खून में भीग रहे हैं। सच सच बताओ, नहीं गोली मार देंगे।"

दीपक— "न हम झूठ बोलते हैं, न मरने से डरते हैं।"

दुश्मन— "तुम्हारे कपड़े खून में कैसे भरे?"

दीपक— "एक घायल फौजी को यहाँ पानी पिलाने लाया था।"

दुश्मन— "कहाँ है फौजी, किधर गया?"

दीपक— "मैं नहीं जानता, एक दूसरा फौजी उसको कंधे पर उठा कर ले गया।"

दुश्मन— "तुम जानता है किधर ले गया उसको?"

दीपक— "मैं नहीं जानता और जानता भी तो तुम्हें नहीं बताता। तुम मेरे देश के दुश्मन हो, देश के ही नहीं मानव जाति के दुश्मन हो, सारी धरती के कातिल हो।"

ज़िन्दगी तो नहीं बचा सकती, लेकिन जब तक तन में श्वास हैं तब तक मौत से भी लड़ना सैनिक का धर्म है। यहाँ से करीब दो सौ गज़ की दूरी पर हमारा फौजी कैम्प है, किसी तरह वहाँ पहुँचना चाहता हूँ। मुझे प्यास बहुत लगी है क्या ज़रा सा पानी पिला सकते हो?"

दीपक ने सामने की ओर बहते हुए एक स्रोत की ओर देखते हुए कहा— "हाँ, क्यों नहीं।"

और फिर लेफ्टिनेंट को अपनी भुजाओं में उठा पानी के उस स्रोत की ओर ले गये। स्रोत के पास लेफ्टिनेंट का सर अपनी जाँघ पर रख दीपक ने स्रोत से अपनी अंजलि में पानी भरा और लेफ्टिनेंट के ओठों से लगाया।

जैसे ही लेफ्टिनेंट पानी पीने को हुआ वैसे ही पीछे से किसी गोरखा सैनिक ने उसे खींच लिया।

दीपक ने आश्चर्य से उसे देखा और यह कहना ही चाहा कि भाई पानी तो पी लेने दो; पर उस सैनिक ने दीपक का मुँह एक हाथ से बंद कर दिया। लेफ्टिनेंट गोरखा सैनिक के इस संकेत को पहचानता था। वह उसी की बटालियन का एक सैनिक था। अपने अफसर की लाश को खोजता फिर रहा था और देखता फिर रहा था दुश्मनों को। उसे जहाँ कोई अकेला दुकेला या कोई अधमरा शत्रु दिखाई देता वहीं वह उसे बन्दूक की किरच से मार देता था।

वह सैनिक लेफ्टिनेंट को अपने कंधे पर उठा अपने शिविर में ले गया। दीपक कुछ क्षणों तक वहीं खड़े सोचते रह गये। वे भी बहुत थक चुके थे। प्यास भी लग रही थी। स्रोत के पास बैठ गये। अंजलि भर कर पानी पीने लगे। पहली ही घूंट भरी थी कि एक गोली आकर धाँय से उनके बाँये हाथ में लगी। एक दूसरी गोली बगल से निकल

गई। और कुछ क्षणों बाद ही दीपक ने देखा कि बन्दूकधारी दुश्मन उन्हें घेरे खड़े हैं।

एक ने दीपक के सीने पर पिस्तौल तानते हुए कहा— "कौन है तू ?"

दीपक— "कवि हूँ।"

दुश्मन— "झूठ बोलता है, तुम कोई जासूस जान पड़ता है।"

दीपक— "हम भारतीय झूठ बोलना नहीं जानते।"

दुश्मन— "यहाँ क्या करता था ?"

दीपक— "युद्ध के दृश्य देख रहा था, देख रहा था तुम्हारी बन्दूकों की करतूतें।"

दुश्मन— "तुम बिल्कुल झूठा है, तुम्हारे सारे बदन में खून लगा है, तुम्हारे कपड़े खून में भीग रहे हैं। सच सच बताओ, नहीं गोली मार देंगे।"

दीपक— "न हम झूठ बोलते हैं, न मरने से डरते हैं।"

दुश्मन— "तुम्हारे कपड़े खून में कैसे भरे ?"

दीपक— "एक घायल फौजी को यहाँ पानी पिलाने लाया था।"

दुश्मन— "कहाँ है फौजी, किधर गया ?"

दीपक— "मैं नहीं जानता, एक दूसरा फौजी उसको कंधे पर उठा कर ले गया।"

दुश्मन— "तुम जानता है किधर ले गया उसको ?"

दीपक— "मैं नहीं जानता और जानता भी तो तुम्हें नहीं बताता। तुम मेरे देश के दुश्मन हो, देश के ही नहीं मानव जाति के दुश्मन हो, सारी धरती के कातिल हो।"

दुश्मन— "तुम कोई पक्का लगता है।"

और फिर दो सैनिकों की ओर देख कर बोला— "इसको बन्दी बना कर ले जाओ। इतना पता लग गया कि यहीं कहीं दुश्मनों का कैम्प है, चलो उस पर छापा मारेंगे। एक काम करो, फौजी वस्त्रों के ऊपर साधुओं के लबादे पहन लो। हिन्दुस्तानी समझेगा, महात्मा आ रहे हैं और बस उन सब को धोखा देकर मार डालेगा।"

दुश्मन के एक सैनिक ने पूर्व दिशा की ओर देखते हुए कहा— "देखिये अभी अभी वहाँ दूर पर किसी ने दियासलाई जलाई थी। वहीं कुछ हिन्दुस्तानी सैनिक पड़े मालूम होते हैं।"

दूसरे सैनिक ने कहा— "हाँ, ठीक कहते हो, पर उधर तो यह बराबर वाला पुल पार करके जाना होगा। अच्छा हुआ दुश्मनों ने हमारे लिये पुल भी बना कर तैयार रखा। हम अपने पड़ाव पर अपनी फौज को इशारा किये देते हैं कि हमारे पीछे पीछे धावा बोलते चले आयें और इस जासूस को यहीं इस चट्टान पर बाँध कर डाल जायें, लौटते हुए ले जायेंगे।"

हुकुम के अनुसार दीपक बाँध दिये गये। दुश्मनों ने साधुओं के कपड़े पहन लिये। इसे कहते हैं, मुँह में राम बगल में छुरी।

साधु वेश में दुश्मन सैनिक पुल की ओर से हमला करने चले। पुल की देखरेख में छिपा सैनिक जब तक ये आधे पुल पर नहीं आ गये तब तक इन्हें साधु ही समझता रहा। जब उसने कौंधी हुई बिजली में इनकी शक्लें देखीं तो पहचाना कि दुश्मन चले आ रहे हैं। पर भारतीय सैनिक ने हिम्मत न हारी। उसने डायनेमो लगाकर पुल उड़ा दिया और साथ ही साथ उस सैनिक के भी छीछड़े उड़ गये। साधुवेशधारी दुश्मनों की हड्डियों का भी पता न रहा।

इतने ही में पीछे से दुश्मनों की कुमुक आ गई। पर पुल उड़ चुका था। दुश्मनों का जल्दी ही आगे बढ़ना आसान न था। वे सोचने लगे कैसे खाई पार करें।

सैनिक अफसर ने आदेश दिया— "आधी बटालियन खाई में कूद पड़े।"

हुकुम होते ही दुश्मन की आधी फौज खाई में कूद पड़ी। खाई इतनी पट गई कि उनकी लाशों पर से बाकी फौज आगे बढ़ सकती थी।

फौज आगे बढ़ने लगी। उधर बँधे हुए दीपक ने दुश्मन की यह सारी कार्रवाई देखी। वह अपने देश की बड़ी भारी सैनिक हानि की कल्पना से काँप उठा। पर क्या करता, न उसके पास फौज थी, न हथियार; बल्कि बँधा पड़ा था। किन्तु कहते हैं कि हथियार वही है जो समय पर सूझ जाये। औसान ही सबसे बड़ा शस्त्र है।

नीरव निशीथ के निबिड़ तम में दीपक ने ज़ोर ज़ोर से गाना शुरू किया। "सावधान! पुल पार कर लिया है दुश्मन ने, सावधान!!"

रात की आवाज़ कहीं से कहीं जाती है और फिर जहाँ घोर सन्नाटा हो वहाँ की आवाज़ तो पत्थर को फोड़ कर निकलती है। दीपक की आवाज़ मेजर रणेन्द्र के कानों तक पहुँची, वे उसकी आवाज़ पहचानते भी थे, इतने ही में मरणासन्न लेफ्टीनेंट को कन्धे पर लादे गोरखा सैनिक भी शिविर में पहुँच गया। उसने भी दुश्मन की स्थिति का पता बता दिया।

रणेन्द्र ने सैनिकों की एक बड़ी टुकड़ी के साथ दूसरी ओर से दुश्मन को रोकने के लिये मौन मार्च किया। यह सिर्फ रणेन्द्र ही जानते थे कि उन्होंने ही दियासलाई जला कर दुश्मन को एक निश्चित स्थान पर आने का अवसर दिया है। यदि गोरखा सैनिक और दीपक की आवाज़ इन

तक न पहुँचती तो भी ये दुश्मनों को एक निश्चित स्थान पर भून कर दम लेते।

दुश्मन बेफिक्री से आगे बढ़े जा रहे थे, उनके मन में भारतीय सैनिकों को हताहत करने का भारी उत्साह था। उनको दूसरों की मौत की खबर थी, अपनी मौत से बेखबर थे।

तभी रणेन्द्र ने एक पहाड़ी पर लगे अपनी तोपों के मोर्चे को आदेश दिया— "फायर!"

दनादन गोले और गोलियाँ चल पड़ीं। यकबयक अपने ऊपर आग की वर्षा से दुश्मन घबरा गये। बात की बात में ही वे भी सावधान हो मुकाबले के लिये डट गये और जब तक इन्होंने मुकाबला किया तब तक सहायता के लिये दुश्मनों की एक बहुत बड़ी फौज वहाँ आ पहुँची। लड़ते लड़ते दोनों ओर का गोला बारूद खत्म हो गया। किरच और खुखरियों से लड़ाई शुरू हो गई। भारतीय वीरों की वीरता यहाँ देखने योग्य थी, एक एक सैनिक दस दस को मार कर मरता था। पर हाय रे युद्ध! तेरी भूख भी कितनी भयंकर होती है! कुछ क्षणों पहले जो अपनी नाक पर मक्खी नहीं बैठने देते थे, जिनके पैरों से धरा थर्राती थी, जिनकी बन्दूक के नीचे धरती का धन रहता था, अब उनको होश तक नहीं था। कहीं बन्दूक पड़ी थी और कहीं वर्दी। मौत भी कितनी सशक्त होती है, मारने वालों को भी मार डालती है। विजय की चाह रक्त पी पी कर पूरी होती है। जय के लिये लड़ाइयाँ होती हैं। एक धरती है, एक आकाश है। धरा पर आकाश की छाया में रहने वाले सभी प्राणी भंगुर हैं, फिर किस लिये संग्राम, किस लिये रक्तपात! वाह रे मनुष्य! तेरी सभ्यता भी किस तरह रक्त-स्नान करती है।

मेजर रणेन्द्र भी बहुत चौकस थे। उन्होंने जिस ओर से गोलाबारी

की थी, उसके दायें और बायें से भी अपनी फौज को बढ़ने का आदेश दिया था। दुश्मनों में से एक भी ज़िन्दा बचकर जाने न पाया।

और फिर विजय के साथ साथ घायल और बँधे हुए दीपक को उठा अपने शिविर में आ गये।

२३

प्रधान सेनापति को वायरलैस से सूचना मिली— मेरी लाश वहाँ पहुँचेगी, उसमें तुम्हें कुछ मिलेगा, जलाने से पहले तुम उसे अच्छी तरह जाँच लेना।

वायरलैस के अनुसार सेनापति ने आवश्यक आदेश दे दिये। और फिर मेजर रणेन्द्र को बुलाकर कहा— "दीपक का क्या हाल है?"

मेजर— "सूचना मिली है कि अभी तक होश में नहीं हैं। ऑपरेशन हो चुका है। उनके शरीर में खून प्रायः समाप्त है। दशा चिन्ताजनक है।"

सेनापति— "तो उनको कलजुग की विल भी अभी तक नहीं सुनाई गई होगी?"

रणेन्द्र— "नहीं।"

सेनापति— "वे दानी साधु महाराज उनसे मिले?"

रणेन्द्र— "नहीं, डाक्टरों ने किसी को भी उनके पास जाने से मना कर दिया है।"

सेनापति— "दीपक का हमारी विजय में बहुत बड़ा हिस्सा है, उनके गीतों से फौज में आवश्यकता से अधिक भर्ती होती चली जा रही है। हर हिन्दुस्तानी को उनके गान सुन सुन कर कुछ ऐसा जनून होता है कि तन मन धन कुर्बान कर डालते हैं। दीपक की वाणी ने देश में

हुत बड़ा वातावरण बनाया। और मोर्चों पर सैनिकों का उत्साह बढ़ा कर उन्होंने तलवार से भी बड़ा काम किया। कहा नहीं जा सकता कि कलम बड़ी है या तलवार। उस दिन दुश्मन जब रात में पुल की ओर से हमला करने बढ़े तो दीपक ने कितनी दूर से गाकर तुम्हें सतर्क किया। यह अद्भुत वीर कर्म है। हम उनको वीर चक्र से विभूषित करने के साथ साथ 'राष्ट्रगायक' कहकर पुकारेंगे। देश और संसार ऐसी ही वाणी पर टिका करते हैं। देखो रणेन्द्र! चाहे कुछ भी चला जाये पर दीपक की रक्षा होनी चाहिये। दीपक का जीवन राष्ट्र का जीवन है। दीपक हमारे देश का दीपक है।"

रणेन्द्र ने आँख का आँसू पोंछते हुए कहा— "पर दीपक तो बुझा चाहता है, उनका जीवन पूरे खतरे में है।"

सेनापति— "अन्तिम साँस तक आशा रखो।"

अभिवादन कर रणेन्द्र चले गये। वे सीधे फौजी अस्पताल पहुँचे। मुख्य सर्जन से मिले। सेनापति का आदेश बताया।

सर्जन ने कहा— "आक्सीजन दिया जा रहा है। मुझे जीने की बिल्कुल उम्मीद नहीं है फिर भी आखरी से आखरी उपाय तक करूँगा। तुरन्त ही सर्जनों और डाक्टरों का एक बोर्ड बुलाता हूँ।"

दस मिनट बाद डाक्टरों का एक बोर्ड बैठा। मुख्य सर्जन ने सेनापति का आदेश और दीपक की दशा का वर्णन किया और साथ ही यह भी कहा कि पेशेन्ट को खून चढ़ाने की बहुत आवश्यकता है। पर दुःख है कि उसके रक्त से किसी का रक्त नहीं मिलता। जो भी रक्त मिलाया जाता है वही प्रतिक्रिया का रूप ले लेता है। मेरा ख्याल है कि कल सुबह तक उनका बचना कठिन है। फिर भी आप सब देखें और जो भी उपाय हो सकता हो करें।

डाक्टरों का दल दीपक की परीक्षा करने गया। दीपक को आक्सीजन दिया जा रहा था। आँखें अधखुली थीं। एक कुत्ता उसके पैरों की तरफ़ बैठा था। मुख्य डाक्टर ने कहा— "इस कुत्ते को बाहर निकालो।"

नर्स ने विनम्रता से उत्तर दिया— "यह इनका साथ नहीं छोड़ता। बार बार निकालती हूँ फिर आ जाता है।"

तभी रणेन्द्र ने कहा— "हाँ, यह इनके साथ ही रहता है। जब हम इनको घायल दशा में उठा कर लाये थे तब भी यह इनके साथ ही साथ था।"

एक एक करके जब सब डाक्टरों ने रोगी की परीक्षा कर ली, तो मुख्य डाक्टर ने कहा— "तुम भी देखो डाक्टर उर्मिल! तुमने तो इस युद्ध में कितने ही कामयाब ऑपरेशन किये हैं।"

उर्मिल आगे आई। उसने जो रोगी को ध्यान से देखा तो चक्कर आने लगा। फिर भी वह इस समय डाक्टर थी; उसने स्वयं को सँभाला। भली प्रकार देखने के बाद मुख्य डाक्टर से बोली— "तनिक मेरा रक्त इनसे मिलाकर देखिये, शायद कोई नतीजा निकल सके।"

मुख्य सर्जन ने डाक्टर उर्मिल के यह कहने पर उनके विचारों की प्रशंसा करते हुए कहा— "डाक्टर उर्मिल! तुम में सेवा भाव कूट कूट कर भरा है। अपने वेतन में से जीविका चलाने मात्र लेकर शेष देश सेवा के लिये दान करके भी तुम कुछ और दान करने की भावना रखती हो, इससे मैं बहुत खुश हूँ।"

और फिर तुरन्त मुख्य डाक्टर ने डाक्टर उर्मिल के रक्त की परीक्षा की। परीक्षा के बाद डाक्टर के चेहरे पर हर्ष था। उन्होंने कहा—

"अब दीपक को बचाया जा सकता है। डाक्टर उर्मिल ! तुम्हारा रक्त दीपक के रक्त से मेल खाता है। शायद टूटी की बूटी मिल गई।"

डाक्टर उर्मिल ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह प्रसन्न थी, शान्त थी। मुख्य सर्जन ने ही कहा— "दीपक को काफी रक्त चढ़ाया जायेगा। उचित यही कि आपको यहीं इनके बराबर में ही एक बिस्तर पर लिटा दिया जाये।"

मन ही मन में उर्मिल न जाने क्या क्या सोचती हुई रक्तदान के लिये लेट गई। उसने एक बार दीपक को ऊपर से नीचे तक देखा और फिर पुरानी स्मृतियों में डूब गई।

डाक्टर ने उर्मिल के शरीर का रक्त दीपक के शरीर में चढ़ाना शुरू कर दिया। धीरे धीरे दीपक के चेहरे पर सुर्खी आती जा रही थी और उर्मिल के चेहरे पर पीलापन। उर्मिल बराबर दीपक के चेहरे को देख रही थी। थोड़ी देर बाद दीपक ने आँखें खोलीं। उसने अपने आसपास खड़े चिकित्सकों को देखा और देखा रक्तदान करने वाली उर्मिल को।

उर्मिल की ओर निर्निमेष देखते हुए दीपक ने कहा— "आप, आप कौन हैं ? शायद मैंने आपको कहीं देखा है।"

डाक्टर उर्मिल मौन थी, पर मुख्य सर्जन ने दीपक को देखकर कहा— "ये हमारे अस्पताल की सर्जन डाक्टर उर्मिल हैं। इनके ही रक्तदान से हम आपके प्राण बचा सके हैं।"

उर्मिल नाम सुनते ही दीपक के सामने एक चलचित्र सा घूम गया। उसे बदली हुई उर्मिल को पहचानने में देर न लगी। भावातिरेक में वह उठ बैठा, पलंग से नीचे उतर उर्मिल के पैरों की तरफ खड़ा हो उर्मिल की आँखों में आँखें गड़ाता हुआ बोला— "उर्मिल ! डाक्टर उर्मिल नहीं, देवी उर्मिल ! अपराधी पर तुम्हारा इतना बड़ा अनुग्रह ! तुमने

अपना सर्वस्व समर्पित करके भी सन्तोष न माना। अपना रक्त दे मुझे फिर जीने को मजबूर कर दिया।"

और फिर दीपक उसके पलंग पर ही बैठ गये। उनमें शक्ति नहीं थी लड़खड़ाने लगे। उर्मिल भी अपनी सारी ताकत दीपक को दे चुकी थी। फिर भी उसने साहस कर कहा— "किसी मरीज की जान बचाना डाक्टर का धर्म है, मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। और उस कर्त्तव्य का पालन भी आज तक करती चली आ रही हूँ। उर्मिल की आँखों और हृदय में एक ही चित्र रहा है, अपराधी आप नहीं मैं हूँ। मैं नहीं जानती थी कि देश का एक जागरूक कलाकार मेरे हृदय में बैठा है। आपने राष्ट्र के लिये गा गा कर और उस पर तन, मन, धन बलिदान करके मुझे बहुत सुख दिया है। इतना और बता दो कि मैं आपको पूर्ण सुख कैसे दे सकती हूँ।"

दीपक— "देश सेवा करके, और वह तुम कर रही हो।"

मुख्य सर्जन, मेजर आदि नाटक के दृश्य की पृष्ठभूमि तो नहीं समझ पाये। पर इतना जान गये कि ये दोनों पूर्वपरिचित हैं और एक दूसरे के बहुत अधिक निकट हैं। डाक्टर उर्मिल का और दीपक का सभी पर इतना प्रभाव था कि इन संवादों में किसी ने आपत्ति नहीं की।

तभी एक नर्स दौड़ी हुई आई। उसने बाहर से ही चिल्लाकर कहा— "डाक्टर, डाक्टर! कलजुग मर गया।"

दीपक ने उर्मिल के पास से उठने की चेष्टा करते हुए कहा— "क्या कलजुग मर गया!"

और तभी कुत्ता एक बार ज़ोर से रोया, दीपक ने कुत्ते को पुचकारा। पर वह तो अपने मालिक कलजुग का मरना सुनते ही मर गया।

दीपक कुछ अजीब से मूड में हो गये। उन्होंने उर्मिल की तरफ देखते हुए कहा— "उर्मिल! कलजुग बहुत अच्छा था, बड़ा बहादुर था।"

किन्तु उर्मिल कुछ नहीं सुन रही थी, उसकी आँखें खुली हुई थीं। अधरों पर तनिक सी मुस्कान थी। दीपक ने घबराकर कहा— "डाक्टर, डाक्टर! देखो तो उर्मिल को।"

मुख्य सर्जन ने नब्ज़ देखी, हार्ट देखा और कहा— "खत्म हो गई। इसने सारा खून तुम्हारी जान बचाने के लिये दे दिया।"

दीपक ने उर्मिल के मुँह पर पल्ला ढँकते हुए कहा— "न जाने कितने ऐसे शहीद खाक में मिलकर गुलाब के फूलों में खिले रहते हैं।"

२४

धरती ही जानती है कि उसकी गोद में जो फूल खिल रहे हैं वे किनकी कुर्बानियों के प्रतीक हैं। इतिहास में कुछ के नाम आ जाते हैं। और अधिक की कहानियाँ मिट्टी में मिली रहती हैं। काश मिट्टी बोलती होती तो बताती कि वह किन किन के जीवन की कहानी है। न जाने कितने बेजोड़ शहीद धूलि में सोये पड़े हैं। हो सकता है कुछ की ज़िन्द-गियाँ खिले हुए फूलों में हों, कुछ जगमगाते दीपकों में दिखाई देती हों, कुछ चमकीले तारों में हों, और इनमें भी चाहे हों या न हों किन्तु कलाकार के स्मृति-पटल पर तो बलिदानों की कहानियाँ अंकित होती ही जाती हैं।

उर्मिल के रक्तदान से प्राण पाकर अस्पताल की एक आराम कुर्सी पर बैठे दीपक कुछ कहानियाँ लिख रहे थे, उनकी कहानियाँ जो उनके जीवन में आ आकर चले गये थे। उनके चरित्र जो व्यक्ति और देश के लिये शहीद होकर प्रकाशमान दीप बन चुके थे।

यद्यपि दीपक के लिये जीवन भार बन चुका था, फिर भी वे उनके गीत गाने में लगे थे, जो देशरक्षा के मोर्चों पर अपने प्राणों की आहुतियाँ दे गये थे। लिखते लिखते वे हिचकियाँ बाँध कर रो भी पड़ते थे, उनका धीरज टूट जाता था, कलम हाथ से छूट पड़ती थी और फिर मौन हो आकाश की ओर देखने लगते थे। एक लम्बी साँस लेते, अपने जीवन पर विहंगम दृष्टि डालते, आत्मसमीक्षा करते, सोचते— "एक अद्‌भुत संसार है यह, कैसा अनोखा जीवन है, एक विचित्र रंगमंच है यह।

जैसे नाटक के मंच पर पात्र अपना अपना अभिनय कर के चले जाते हैं, वैसे ही कितने आये और चले गये। कुछ की कहानियाँ भूल गये, कुछ की याद हैं, कुछ साथी जीवन रहते ही बिछुड़ गये। अजीब नौका नदी संयोग है! जब याद करता हूँ कि देवकी देवी कितना प्यार करती थीं। जब सोचता हूँ कि कलजुग कितना अनोखा मित्र था। जब ध्यान करता हूँ परमहंस के उज्ज्वल चरित्र का, उनके संतोष का, उनके त्याग का, उनके विवेक का, उनके गुणों का, तो अतीत की वे पवित्र विभूतियाँ साकार हो उठती हैं। इन सबकी स्मृतियों को कहाँ सजाऊँ, इनके स्मारक कैसे बनाऊँ, पता नहीं अब वहाँ कोई जाता भी होगा या नहीं, घर में धूल अँट गई होगी। कुछ कुछ ठीक हो चला हूँ और ठीक हो जाऊँगा, इतने नीरजा भी आ जायेगी। तीन महीने के लिये ड्यूटी पर गई है, एक सप्ताह बाकी है, फिर दोनों वहाँ चलेंगे। और भी बहुत से मित्र हैं उनसे मिलेंगे। अमोलक बाबू से मिलने को भी जी चाहता है। बस अब वे ही एक दुःख सुख के साथी बचे हैं। उनसे ही अपने मन की कही जा सकती है। वे ठीक ही कहते थे, धन इकट्ठा करना चाहिये। आज धन होता तो देवकी देवी, कलजुग और परमहंस के ताजमहल जैसे आश्चर्यजनक स्मारक खड़े कर देता। लेकिन ईंट पत्थरों के स्मारक न खड़े कर सका तो न सही काव्यों में तो उनके स्मारक सजा ही रहा हूँ। न जानें मन में टीस सी क्यों उठती है? हँसने की कोशिश करता हूँ, पर आँसू निकल पड़ते हैं। संसार का क्रम हमारी इच्छा से नहीं, किसी अनन्त शक्ति की इच्छा से चलता है, उसी के हाथ में लाभ है, उसी के हाथ में हानि, वही अपयश देता है वही यश, वह जब चाहता है मरण दे देता है और जब तक चाहता है जीवन बनाये रखता है। मनुष्य कुछ नहीं कर सकता वह किसी का संकेत मात्र है। कहीं से यंत्र हिलता है और मशीन चलने लगती है। इसीलिये कैसा दुःख, कैसा सुख, सब विडम्बना है।

आनन्द, जीवन आनन्द के लिये है। न पाने पर हर्ष, न खोने पर रंज।

उपदेश अपने या दूसरे को देना सरल है, पर पालन कोई बिरला ही कर पाता है। दीपक अपने आप को कितना समझा रहे थे पर उन की आँखों से अविरल अश्रुधारा बही जाती थी। अकेलापन भी कितना कठोर होता है। मन को समझाना भी कितना मुश्किल होता है। अतीत को भूलना भी काँटों में खिलना है। दीपक ने कुछ ज़िन्दगियों के रेखाचित्र अंकित किये, और तभी मेजर रणेन्द्र के साथ एक साधु ने प्रवेश किया। इन साधु महाराज को देखते ही दीपक एकदम उठे और और उनसे चिपट रोते हुए बोले— "अमोलक बाबू, तुम कहाँ थे इतने दिन से? तुम तो मुझे एकदम भूल गये। एक मुद्दत से खबर ही न ली, यह भी न सोचा कि देवकी देवी के बाद तुम्हारे दोस्त की क्या दशा हुई होगी।"

बम्बई के एक बड़े सेठ से साधु चोला धारण करने वाले अमोलक बाबू ने शान्ति से कहा— "मुझे तुम्हारी याद थी तो ढूँढता हुआ यहाँ तक आ पहुँचा! पर तुमने क्या कभी यह भी सोचा कि तुम्हारे अमोलक की क्या दशा है। शिकायत तो बहुत करता पर मेजर साहब से यह जानकर कि तुमने देश के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया है, सारी शिकायतें भूल गया। और तुम्हारे प्रेरणाप्रद आग-भरे गान पढ़ पढ़ कर मैंने भी अपना सारा धन देश के चरणों में अर्पित कर दिया।"

दीपक— "तो क्या संसार छोड़ कर सन्यासी हो गये?"

अमोलक— "हाँ, तपस्या के लिये पहाड़ पर जा रहा हूँ।"

दीपक— "अकस्मात् यह कैसे? फिर आपकी तो बहुत बड़ी इच्छा थी। तुम कहा करते थे किसी से तुम मौन स्नेह करते हो। उससे तुम्हारी विवाह करने की इच्छा थी न?"

अमोलक— "थी, पर अब नहीं है।"

दीपक— "क्यों?"

अमोलक— "क्योंकि प्यार की वह अंगूठी भी देश के चरणों में अर्पित कर दी है।"

दीपक— "ऐसा क्या दुःख पहुँचा जो सब कुछ छोड़ सन्यासी बन बैठे।"

अमोलक— "दीपक! सभी को सब कुछ छोड़ना तो पड़ता ही है। यदि फिर समय रहते छोड़ दे तो फिर मरने में दुःख नहीं होता। मोह से बड़ा दुःख होता है। मुझे किसी से मोह था वह पराई हो गई। उस की स्मृति की अंगूठी मेरी उँगली में पड़ी थी। मैंने देखा मुझ से और मेरे प्यार से मेरा देश बड़ा है। अतः प्रेम की वह धरोहर मैंने देश के चरणों में चढ़ा दी। मेरे सुख से मेरे देश की जय बड़ी है। मेरे धन से मेरे देश की आन महान है। तुम धन्य हो दीपक! तुमने देश के गीत गाये। मुझे गर्व है कि तुम मेरे दोस्त हो।"

दीपक— "तुमने भी जीवन में दूसरों को सुख दिया, सुख उठाया नहीं।"

अमोलक— "मैंने कोई दुःख नहीं माना, हर हाल में खुश हूँ।"

मेजर रणेन्द्र मौन दोनों मित्रों की बात सुन रहे थे। तभी उनके लिये टेलीफोन आया। फोन प्रधान सेनापति का था। उन्होंने कहा— "अस्पताल में एक लड़की का शव भेज रहे हैं, मैं भी आ रहा हूँ। मुख्य सर्जन से कहना कि इस शव की बिल्कुल एकान्त में परीक्षा करनी है।"

मेजर फोन पर बातें कर दीपक से बोले— "आप दोनों यहीं ठहरें, मैं यहाँ अस्पताल में ही एक जरूरी काम से ऑपरेशन थियेटर में जा रहा हूँ।"

दीपक और अमोलक बातें करते हुए दुःख सुख की आलोचना करने लगे। एक ने दूसरे को अपनी कहानियाँ सुनानी शुरू कर दीं। दोनों अपने अपने अनुभव बताने लगे। मानो एक लम्बी कहानी शुरू हो गई। कभी दीपक कहते— "संसार निस्सार है, यहाँ सब धूल के फूल हैं।"

कभी अमोलक कहते— "संसार सरस भी है और नीरस भी। यह दुनियाँ बालू मिली चाँदी है। रेत में से चाँदी निकालने में समुद्र-मंथन तो करना ही पड़ता है। बात यह है कि संसार में आकर हम यह भूल जाते हैं कि यहाँ जो कुछ भी मिलता है वह बहुत कुछ खोकर मिलता है। मनुष्य पाने के लिये दुखी तो होता रहता है किन्तु खोना नहीं चाहता। ज़िन्दगी एक तपस्या बनी रहे तो सफलता और समृद्धि बनी रहती है। और दुःख भी बीत गये, सुखों की भी चाह नहीं रही। अब तो सिर्फ ईश्वर को पाने के लिये स्वयं खो जाने की इच्छा बाकी है। और हाँ, नीरजा को नहीं देखा। वह खुश है न ? कहाँ है आजकल ?"

दीपक— "अमोलक बाबू ! दुःख सुख मानने के तत्व हैं। कुछ ऐसा लगा कि यहाँ सब भाग्य से मिलते हैं। नीरजा शान्त है, उसने सुख की कभी कामना ही नहीं की, दुःखों से वह घबराती नहीं। आजकल देश-सेवा में लगी हुई है, तीन महीने हो चुके युद्ध में घायल हुए दुश्मनों की सेवा करने गई हुई है। थोड़ा समय बाकी है, आ जायेगी। फिर मैं, आप और नीरजा घर चलेंगे। घर छोड़े बहुत दिन हो गये। जब आया था तो दरवाजा खुला छोड़ कर चला आया था। यह ध्यान ही नहीं रहा कि घर में कोई नहीं है पीछे से दरवाजा कौन बन्द करेगा, और वैसे दरवाजा खुला रहे तो चिन्ता भी क्या है। यहाँ अपना तो कुछ है ही नहीं, जो कुछ है धरा की धरोहर है। आज भी धरती की, कल भी धरती की। वैसे मुझे अब किसी से मोह भी नहीं रहा है। बस नीरजा की चिन्ता है, उससे मोह है। तुम वनों में जाकर क्या करोगे ? अरे, तीनों घर चलेंगे।

सारे झंझट छोड़ कर देश में उत्साह भरने वाले गान रचेंगे। शहीदों की कहानियाँ लिखेंगे। सौन्दर्य और सुरभि के संवाद सुनायेंगे। यह भी एक प्रकार की तपस्या ही है। मैं लिखूँगा, तुम सुनना, नीरजा हम दोनों को प्रसन्न देखकर आनन्द मानेगी। एक अद्‌भुत शान्ति लोक होगा वह!"

अमोलक— "जिन काँटों की झाड़ियों को छोड़ कर ईश्वर से साक्षात् करने के लिये उमड़ पड़ा हूँ, उन काँटों की बाड़ में फिर मत उलझाओ दीपक! मैंने खूब देख ली दुनिया! धन के ढेर लगा लिये, लेकिन सब व्यर्थ लगा। कोई किसी का नहीं, सिर्फ स्वार्थ है स्वार्थ! बहुत उम्र खो दी, बाकी उस अनन्त के चरणों में अर्पित हो जाने दो, जो भूत, भविष्यत और वर्तमान में सर्वत्र है।"

वाक्य पूरा करने के बाद अमोलक बाबू ने जो दीपक की ओर देखा तो उन्हें लगा कि दीपक कुछ कहने की चेष्टा कर रहे हैं लेकिन उनका बोल नहीं निकल रहा है। सहसा उनके चेहरे का रंग बदलने सा लगा है। अमोलक ने घबरा कर कहा— "दीपक! दीपक!!"

दीपक ने धीरे से उत्तर दिया— "हाँ।"

अमोलक ने देखा कि दीपक एकदम निढाल हो गये हैं। वे दौड़कर डाक्टर को बुलाने गये।

डाक्टर के कमरे में पता चला कि वे ऑपरेशन थियेटर में हैं। अमोलक उधर ही दौड़े।

२५

ऑपरेशन थियेटर की मेज़ पर एक सुन्दर महिला का शव लिटाया हुआ था। यद्यपि इस लाश से कई दिन पहले प्राण बिदा हो चुके थे, फिर भी इसमें एक तेज था। देह औषधियों और सुगन्धित पदार्थों से सुरक्षित थी। मेजर रणेन्द्र तथा कुछ और सैनिक अफ़सर इस शव के पास खड़े उत्सुकता से देख रहे थे। अन्य डाक्टरों के साथ मुख्य सर्जन शव की परीक्षा कर रहे थे।

शव की परीक्षा बड़ी सतर्कता और सम्मान से की जा रही थी। डाक्टर लाश को तनिक भी विकृत न होने देने का पूरा प्रयत्न कर रहे थे। जब सर्जन ने गले के नीचे की नली से लेकर उदर तक के भाग को चीरा तो उन्हें उसमें एक बारीक किन्तु मज़बूत न गलने वाला काग़ज मिला। इसके साथ एक छोटा सा पत्र संलग्न था।

डाक्टर ने बड़ी सावधानी से यह लिपटा हुआ काग़ज़ निकाला। मेजर रणेन्द्र ने काग़ज़ को उत्सुकता से देखते हुए कहा— "यह तो दुश्मन की युद्ध नीति का चित्र है। हमारी जीत के लिये एक बड़ी नियामत है।"

और फिर अन्य मिलिट्री आफिसरों के साथ मेजर साहब वह चित्र खोलकर देखने लगे। पहले उन्होंने पत्र पढ़ा, लिखा था— "मैं जानती हूँ कि कुछ समय बाद मेरी हत्या कर दी जायेगी। लेकिन मुझे प्रसन्नता है कि मैंने अपने देश के दुश्मन से उसकी रण नीति का चित्र प्राप्त कर

लिया, मेरी यह विजय मेरी एक बड़ी हार भी है। जिससे मैंने यह नक्शा प्राप्त किया है मैं उस पर और वह मुझ पर अपना मन हार चुके थे। धोखे ने वास्तविकता का रूप ले लिया था। सुख है कि मुझे गोली मारने वाले ने मेरी अन्तिम इच्छा पूरी कर दी और मेरी लाश मेरे देश को दे दी और उसने वचन दिया कि मैं तुम्हारी लाश तुम्हारे देश को दे दूँगा। मरने में मुझे एक ही अशान्ति हुई है और वह है दीपक बाबू का ध्यान। मेरी आत्मा उनके साथ है, देह उनको दे दिया जाये।"

मेजर रणेन्द्र ने आँख से आँसू पोंछा और शव को सैनिक अभिवादन किया। विल के अनुसार मेजर रणेन्द्र दीपक बाबू के पास जाने के लिये बाहर निकले, उन्हें देखते ही अमोलक बाबा ने कहा— "डाक्टर को साथ लेकर जल्दी चलिये। दीपक बाबू की तबियत एकदम खराब हो गई है।"

मुख्य सर्जन और डाक्टर भी मेजर के साथ निकले थे। उनकी तरफ़ देखते हुए मेजर आगे बढ़े और बात की बात में दीपक के सामने पहुँच गये। दीपक निढाल थे, किन्तु उनकी ज्ञानेन्द्रियाँ मूर्च्छित नहीं थीं। उनकी आँखें कुछ कुछ गीली थीं। जैसे उन्हें कुछ बीते हुए चित्र दिखाई दे रहे हों। उन्होंने अमोलक बाबू की तरफ़ देखा, मेजर रणेन्द्र की ओर देखा।

रणेन्द्र दीपक को श्रद्धा से देख रहे थे। उनका कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा था मानो उनकी वीरता ने करुण काव्य का रूप ले लिया हो। वे समझते थे कि दीपक को नीरजा की विल सुनकर कहीं बहुत गहरी चोट न पहुँचे। पर दीपक ने ही कहा— "मेजर साहब! मेरा नीरजा से मिलने को जी चाहता है। कुछ दिन के लिये उसे छुट्टी दिला कर यहाँ बुला दीजिये।"

मेजर की आँख से एक आँसू निकला और बोला— "अच्छा,

तुम्हारी इच्छानुसार तुम्हें नीरजा से अभी मिलाये देता हूँ।"

दीपक ने अत्यधिक आकुल होकर कहा— "क्या सच, आपका बड़ा उपकार होगा मेजर साहब!"

कहते हुए दीपक खाट से उठकर खड़े हो गये। मेजर ने दीपक को हाथ का सहारा दिया और कहा— "चलो, तुम्हें नीरजा के पास लिये चलता हूँ।"

मेजर रणेन्द्र के साथ दीपक एक ज़िन्दा लाश की तरह चल पड़े। उनके दूसरी ओर अमोलक बाबू थे। साथ ही मुख्य सर्जन तथा डाक्टर आदि भी उदास मुद्रा से चल रहे थे। सबके साथ दीपक ऑपरेशन थियेटर के निकट आये तो दीपक ने मुस्कराकर कहा— "मेजर साहब! आप तो मुझे ऑपरेशन थियेटर में ले चल रहे हैं। कहीं मेरी कोई चीरा फाड़ी तो नहीं करनी है।"

मेजर ने कोई उत्तर नहीं दिया। ऑपरेशन थियेटर में चुपचाप आगे बढ़ गये। मेज़ पर सोई हुई नीरजा की तरफ देखते हुए रणेन्द्र ने कहा— "देखो दीपक बाबू! तुम्हारी प्रतीक्षा करते करते नीरजा की आँख लग गई। कैसी शान्ति से सो रही है बिचारी।"

तथा फिर तलवार की धार को भी अपने वक्ष से कुण्ठित कर देने वाले मेजर रणेन्द्र फूट पड़े।

दीपक हक्का बक्का सा मेजर के कथन को सुन रहा था, उनको फूटते देख उसने कहा— "यह क्या मेजर साहब, आप रो क्यों पड़े?"

फिर तुरन्त लपक कर नीरजा के पास पहुँच उसके मुँह को हिलाता हुआ बोला— "उठ! नीरजा उठ!!"

लेकिन दूसरे ही पल वह सब कुछ समझ "नीरजा, नीरजा" कहता हुआ फूट पड़ा। शव से चिपट चिपट कर कहने लगा— "तुम भी क्यों

चली गईं। शायद संसार से तंग आकर देवकी देवी की गोद में चली गई हो। पर जाने से पहले मुझसे बोलकर तो जातीं।"

इस तरह दीपक ऐसे रोने लगे कि उनको धीरज देना कठिन हो गया। अमोलक ने उनको सीने से लगाते हुए कहा— "मृत्यु ध्रुव है दीपक! जिसका जन्म हुआ उसकी मृत्यु निश्चित है।"

रणेन्द्र ने कहा— "तुम्हें गर्व करना चाहिये दीपक! नीरजा देश पर शहीद हुई है। उसने देश के दुश्मनों से उनकी रणनीति का चित्र लाकर दिया है। नीरजा का जीवन धन्य है। उसका बलिदान अमर है।"

दीपक ने रोते हुए हिचकियों को रोक रोक कर कहा— "ठीक कहते हैं, आप सब, अच्छा ही हुआ कि नीरजा चिर-निद्रा में शान्ति से सो गई। बहुत बहुत धन्यवाद मेजर साहब! आपने नीरजा के अन्तिम दर्शन करा दिये। अमोलक बाबू! तुमने मेरे साथ पूरी पूरी मित्रता निभाई है। दुःख है कि मैं तुम्हारे किसी भी काम न आ सका।"

अमोलक ने धीरज से कहा— "मुझे किसी से कोई काम न कभी रहा है, न आगे रहेगा। ज़िन्दगी से घबरा कर संसार से भाग खड़ा हुआ हूँ। इसलिये कि एक दुनिया देख ली, दूसरी दुनिया भी देख लूँ। संसार में रहकर देख चुका, संसार से अलग रहकर देखने के लिये जीवित हूँ।"

दीपक पर अमोलक बाबू के धीरज और गम्भीरता का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उसने उसी तरह हिचकियाँ भरते हुए कहा— "अमोलक बाबू! मैं जब घर से चला था तो घर खुला छोड़ आया था। उसमें और तो कुछ नहीं है, कुछ पांडुलिपियाँ हैं वहाँ, कुछ अधूरी कहानियाँ पड़ी हैं, कुछ गीत इधर उधर लिखे पड़े होंगे और कुछ चित्र होंगे।

अमोलक बाबू के दिये हुए अक्षरों में कोई अन्तर न था। जैसे आँखों के पानी और ओस के आँसुओं में कोई भेद ही न रह गया हो।

कमल के फूलों पर तैरते हुए ओस के आँसुओं की लिपि यात्रियों ने ध्यान से पढ़ी, लिखा था— "डालियों पर खिलते हुए फूल सभी देखते हैं किन्तु मूल्य तो मिट्टी में मिले उन बीजों का है जो उपवन की शोभा के लिये शहीद हो जाते हैं। दीपक पर जलने वाले ऐसे शलभ भी होते हैं जिनका दाह कोई नहीं देखता। कुछ ऐसे बलिदान भी होते हैं, जिन पर सिर्फ ओस के आँसू ही चढ़ते हैं।"